ज्ञानावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

मोहनीय कर्म

कर्मग्रंथ (भाग-1)

(कर्म विज्ञान)

विवेचनकार : पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आयुष्य कर्म

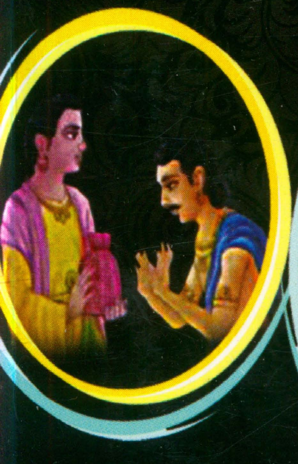

अंतराय कर्म

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर
2. सामायिक सूत्र विवेचना
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना
4. आलोचना सूत्र विवेचना
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना
6. कर्मन् की गत न्यारी
7. आनन्दघन चौबीसी विवेचना
8. मानवता तब महक उठेगी
9. मानवता के दीप जलाएं
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो
12. युवानो ! जागो
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे
16. मृत्यु की मंगल यात्रा
17. जीवन की मंगल यात्रा
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी
21. The Light of Humanity
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी
23. युवा चेतना
24. तब आंसू भी मोती बन जाते है
25. शीतल नहीं छाया रे.(गुजराती)
26. युवा संदेश
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2
29. श्रावक जीवन-दर्शन
30. जीवन निर्माण
31. The Message for the Youth
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक
33. आनन्द की शोध
34. आग और पानी-भाग-1
35. आग और पानी-भाग-2
36. शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)
37. सवाल आपके जवाब हमारे
38. जैन विज्ञान
39. आहार विज्ञान
40. How to live true life ?
41. भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)
42. आओ ! प्रतिक्रमण करे (चौथी आवृत्ति)
43. प्रिय कहानियाँ
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव
45. आओ ! श्रावक बने
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी
47. जैनाचार विशेषांक
48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका
49. कर्म को नहीं शर्म
50. मनोहर कहानियाँ
51. मृत्यु-महोत्सव
52. Chaitya-Vandan Sootra
53. सफलता की सीढ़ियाँ
54. श्रमणाचार विशेषांक
55. विविध-देववंदन (चतुर्थ आवृत्ति)
56. नवपद प्रवचन
57. ऐतिहासिक कहानियाँ
58. तेजस्वी सितारें
59. सन्नारी विशेषांक
60. मिच्छामि दुक्कडम
61. Panch Pratikraman Sootra
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)

63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)
64. अमृत की बुंदे
65. श्रीपाल मयणा
66. शंका और समाधान भाग-1
67. प्रवचनधारा
68. धरती तीरथ'री
69. क्षमापना
70. भगवान महावीर
71. आओ ! पौषध करें
72. प्रवचन मोती
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह
74. श्रावक कर्तव्य-1
75. श्रावक कर्तव्य-2
76. कर्म नचाए नाच
77. माता-पिता
78. प्रवचन रत्न
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर
82. आहार : क्यों और कैसे ?
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन
84. प्रभु दर्शन सुख संपदा
85. भाव श्रावक
86. महान ज्योतिर्धर
87. संतोषी नर-सदा सुखी
88. आओ ! पूजा पढाएँ !
89. शत्रुंजय की गौरव गाथा
90. चिंतन-मोती
91. प्रेरक-कहानियाँ
92. आई वडीलांचे उपकार
93. महासतियों का जीवन संदेश
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन
95. Duties towards Parents
96. चौदह गुणस्थान
97. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन
98. मधुर कहानियाँ
99. पारस प्यारो लागे
100. बीसवीं सदी के महान् योगी
101. अमर-वाणी
102. कर्म विज्ञान
103. प्रवचन के बिखरे फूल
104. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन
105. आदिनाथ-शांतिनाथ चरित्र
106. ब्रह्मचर्य
107. भाव सामायिक
108. राग म्हणजे आग (मराठी)
109. आओ ! उपधान-पौषध करें !
110. प्रभो ! मन-मंदिर पधारो
111. सरस कहानियाँ
112. महावीर वाणी
113. सद्‌गुरु-उपासना
114. चिंतन रत्न
115. जैन पर्व-प्रवचन
116. नींव के पत्थर
117. विखुरलेले प्रवचन मोती
118. शंका-समाधान भाग-2
119. श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी
120. भाव-चैत्यवंदन
121. Youth will shine then
122. नव तत्त्व-विवेचन
123. जीव विचार विवेचन
124. भव आलोचना
125. विविध-पूजाएँ
126. गुणवान् बनों
127. तीन-भाष्य
128. विविध-तपमाला
129. महान् चरित्र
130. आओ ! भावयात्रा करें
131. मंगल-स्मरण
132. भाव प्रतिक्रमण-1
133. भाव प्रतिक्रमण-2

134. श्रीपाल-रास और जीवन
135. दंड़क-विवेचन
136. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें
137. सुखी जीवन की चाबियाँ
138. पांच प्रवचन
139. सज्झायों का स्वाध्याय
140. वैराग्य शतक
141. गुणानुवाद
142. सरल कहानियाँ
143. सुख की खोज
144. आओ संस्कृत सीखें भाग-1
145. आओ संस्कृत सीखें भाग-2
146. आध्यात्मिक पत्र
147. शंका-समाधान (भाग-3)
148. जीवन शणगार प्रवचन
149. प्रातः स्मरणीय महापुरुष (भाग-1)
150. प्रातः स्मरणीय महापुरुष (भाग-2)
151. प्रातः स्मरणीय महासतियाँ (भाग-1)
152. प्रातः स्मरणीय महासतियाँ (भाग-2)
153. ध्यान साधना
154. श्रावक आचार दर्शक
155. अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)
156. इन्द्रिय पराजय शतक
157. जैन-शब्द-कोष
158. नया दिन-नया संदेश
159. तीर्थ यात्रा
160. महामंत्र की साधना
161. अजातशत्रु अणगार
162. प्रेरक प्रसंग
163. The way of Metaphysical Life
164. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1
165. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2
166. आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2
167. Pearls of Preaching
168. नवकार चिंतन
169. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1
170. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2
171. परम-तत्व की साधना भाग-1
172. रत्न-संदेश
172. रत्न-संदेश-भाग-1
173. गागर में सागर
174. रत्न-संदेश-भाग-2
175. My Parents
176. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1
177. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2
178. परम तत्त्व की साधना भाग-2
179. परम तत्त्व की साधना भाग-3
180. बाली चातुर्मास विशेषांक
181. उपधान स्मृति विशेषांक
182. नवपद आराधना
183. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1
184. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल
185. आई चे वात्सल्य
186. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2
187. जैन संघ-व्यवस्था
188. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1
189. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2
190. संस्मरण
191. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)
192. विवेकी बनों !
193. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3
194. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)
195. समाधि-मृत्यु
196. कर्मग्रंथ भाग-2
197. कर्मग्रंथ भाग-3
198. आदर्श कहानियाँ
199. प्रवचन-वर्षा
200. अमृत रस का प्याला
201. महान् योगी पुरुष
202. बारह-चक्रवर्ती
203. प्रेरक-प्रवचन
204. पाँचवाँ-कर्मग्रंथ
205. छठा-कर्मग्रंथ
206. Celibacy
207. मंत्राधिराज प्रवचन सार

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित—

कर्मग्रंथ भाग-1

(कर्म विज्ञान)

(पहला कर्मग्रंथ-हिन्दी विवेचन)

विवेचनकार व संपादक

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक

स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. के

शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर**

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न

मरुधररत्न प्रभावक प्रवचनकार एवं हिन्दी साहित्यकार

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

102

प्रकाशक

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेम्बर्स,

507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार,

सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईन्स (E), मुम्बई-400 002.

Tel. 022-4002 0120, Mobile : 9892069330

आवृत्ति : तृतीय • मूल्य : 100/- रुपये • प्रतियां-1500
विमोचन स्थल : आर.एस्. पुरम्, कोयम्बत्तुर • दि. 31-7-2019

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - **3000/-** रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.*** द्वारा लिखित उपलब्ध **10** पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी,
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद,
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजन्सीज
मुंबई, M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **Tel. 022-2203 45 29**

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

गुरुवंदना

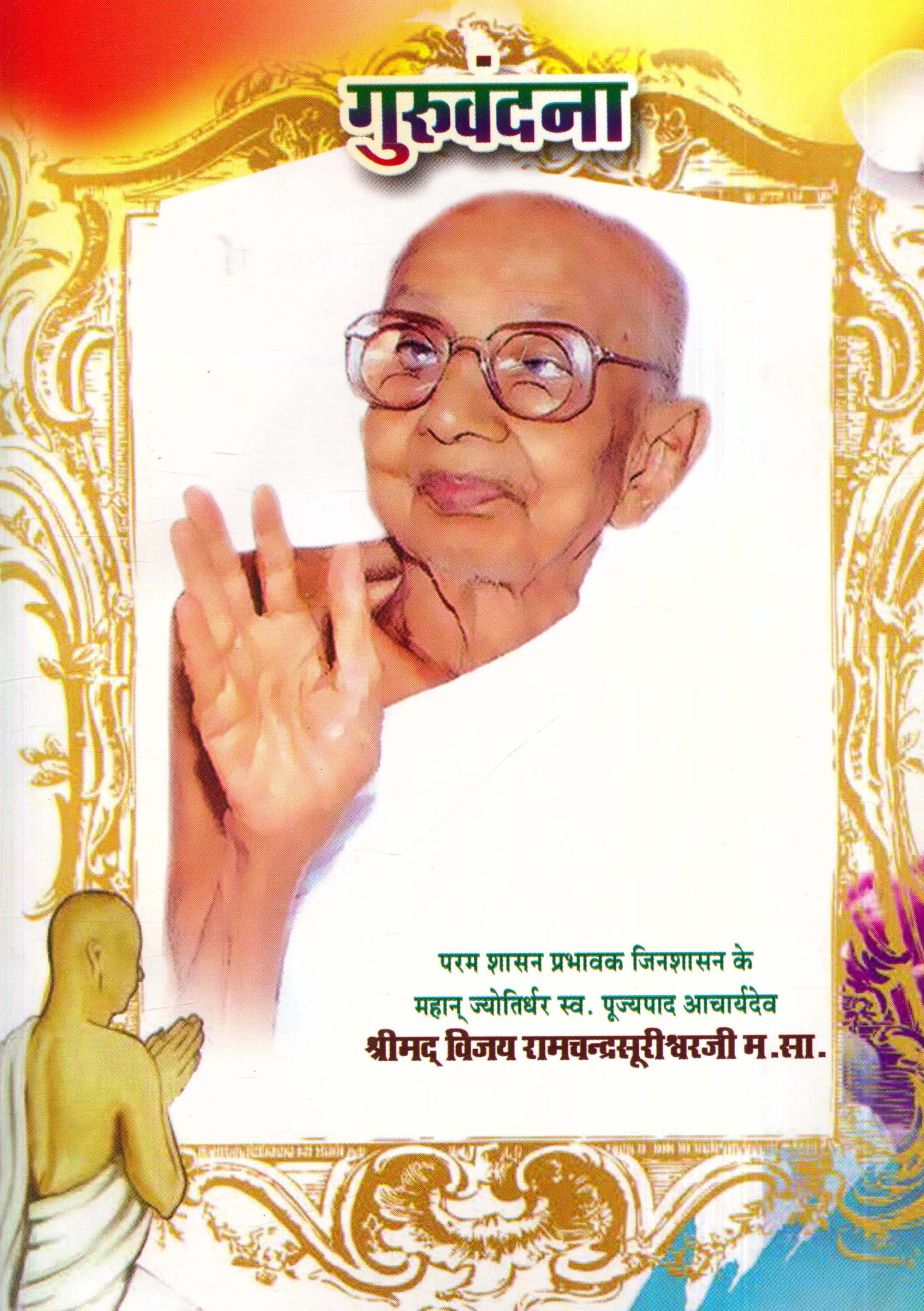

परम शासन प्रभावक जिनशासन के
महान् ज्योतिर्धर स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

गुरुवंदना

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
तस्मै
श्री गुरवे नमः

नमामि सव्व जिणाणं खमामि सव्व जीवाणं

भद्रंकर परिवार

प्रकाशन सहयोगी

1. अ.सौ. पुष्पाबाई भवरलालजी श्रीश्रीमाल-बाली बेंगलोर
2. वक्तावरीबाई देवराजजी चौहान-बाली-बेंगलोर
3. अ.सौ. चंद्रादेवी पारसमलजी पुनमिया-बाली-बेंगलोर
4. सरसोबाई हरकचंदजी कोठारी-बाली-मुंबई
5. पुष्पराजजी राजकुमारजी कोठारी आउवा-बेंगलोर
6. घेवरचंदजी शंकरलालजी साकरिया-सांडेराव, बेंगलोर
7. श्रीमती शांतादेवी वनेचंदजी श्रीश्रीमाल सांचोडी-पूना
8. श्रीमती पिश्ताबाई मांगीलालजी बडोल्ला-मारवाड़ जं.-बेंगलोर
9. अ.सौ. उगमकंवर जेठमलजी निब्जिया-पाली-जालोर-बेंगलोर
10. श्रीमती लीलाबाई तेजराजजी बोहरा-लापोद-बेंगलोर
11. भरत चुन्निलालजी छाजेड़-महालक्ष्मी जे. बोरीवली, मुंबई
12. रायचंदजी कानजी-जामनगर सेंतालूस सुरत
13. शांताबाई लालचंदजी ढालावत-रोहा-बाली
14. अ.सौ. चंद्राबेन अनिलकुमारजी बरलोटा ब्यावर-तिरुवन्ना मलाई (T.N.)
15. पानीबाई नेनमलजी तिलावत-पालड़ी
16. सद्गृहस्थ
17. सद्गृहस्थ
18. सद्गृहस्थ
19. बदामीबाई राजमलजी पुनमिया-सांडेराव-बेंगलोर
20. मोहनीबाई देवराजजी-चैन्नाइ घाणेराव

प्रकाशक की कलम से...

दीक्षा के दानवीर, महाराष्ट्र देशोद्धारक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा** के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महायोगी, नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, चिंतक एवं अनुप्रेक्षक **पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपा पात्र चरम शिष्यरत्न मरुधररत्न गोडवाड़ के गौरव, बाली नगर की शान, चोपडा कुल दीपक **पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा विवेचित प्रथम कर्म ग्रंथ हिन्दी विवेचन की तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है।

अपने संयम जीवन के प्रारंभिक काल से ही पूज्यश्री के अन्तर्मन में जैन धर्म संबंधी हिन्दी साहित्य के सर्जन में काफी रुचि थी, उनकी अन्तरंग रुचि को देखते हुए स्व. अध्यात्मयोगी पूज्यपाद गुरुदेवीश्री ने उन्हें साहित्य-सर्जन के लिए प्रेरणा दी थी। 'गुरुकृपा' के बल से ही वे अपूर्व साहित्य सर्जन में सक्षम बने हैं।

अठारह वर्ष की युवावय में उनकी भागवती दीक्षा उनकी जन्मभूमि बाली (राज.) में वि.सं.2033 माघ शुक्ला त्रणेदशी दि. 2-2-1977 के शुभ दिन वर्धमान तपोनिधि **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री हर्षविजयजी गणिवर्य** के कर कमलों से संपन्न हुई थी और वे अध्यात्मयोगी **पू.पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्य **मु.श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद नियमित एकाशन तप के साथ में उनकी ज्ञान-ध्यान की साधना आगे बढती गई।

'गुरुकृपा' के बल से उनकी प्रवचन शक्ति भी खिलती गई तो उसके साथ उनकी लेखन शक्ति भी आगे बढती गई, इसके फलस्वरुप ही वे आज तक 207 पुस्तकों का आलेखन संपादन कर सके हैं।

वि.सं. 2038 वैशाख सुदी-14 के शुभदिन अपने प्राण प्यारे गुरुदेव की दूसरी वार्षिक पुण्यतिथि के शुभ दिन **पू.मु.श्री रत्नसेनविजयजी म. ने 'वात्सल्य के महासागर'** नाम की पहली हिन्दी पुस्तक का आलेखन किया था। योगानुयोग उस समय **पू.मु.श्री जिनसेनविजयजी म.**ने वर्धमान तप की

100 वीं ओली पूर्ण की थी ।

वि.सं.2060 में मुंबई में दीपक ज्योति टॉवर-कालाचौकी में चातुर्मास किया था । उस चातुर्मास में उनके प्रथम शिष्य **मु.श्री उदयरत्नविजयजी म.** ने वर्धमान तप की 100 ओली पूर्ण की थी, उस समय **पू. गणिवर्य श्री रत्नसेनविजयजी म.** ने अपनी 100 वीं पुस्तक **'बीसवीं सदी के महान् योगी'** का आलेखन किया था ।

गणि में से पंन्यास पदारुढ हुए पूज्यश्री को कोकण शत्रुंजय थोना में वि.सं.2067 गु.पोष वदी-1, दि. 20-1-2011 के शुभदिन आचार्य पद प्रदान किया गया, तब से वे **पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से प्रख्यात हुए ।

पूज्यश्री आचार्य पदारुढ का नौवां वर्ष चल रहा है । आचार्य पदारुढ होने के बाद पूज्यश्री ने दो चातुर्मास अपनी जन्मभूमि बाली एवं बडी दीक्षा भूमि घाणेराव (राज.) में किए । दो चातुर्मास गुजरात प्रांत में शत्रुंजय महातीर्थ-पालीताणा में किए । दो चातुर्मास महाराष्ट्र में भायंदर व नासिक में किए ।

दो चातुर्मास कर्णाटक प्रांत की राजधानी बेंगलोर व मैसूर में किए ।

इस प्रकार चार राज्यों में हजारों किमी. का विहार कर अनेक नगरों में अनेकविध धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करवाकर पूज्यश्री ने दक्षिण भारत के तामिलनाडू प्रांत में दि. 13 मार्च 2019 के शुभ दिन प्रवेश किया है ।

तामिलनाडु प्रांत में उनका सर्व प्रथम चातुर्मास कोयम्बत्तुर की धन्यधरा पर होने जा रहा है ।

वि.सं. 2075 तथा ई.सन् 2019 के वर्ष में चातुर्मास प्रारंभ के बाद अषाढ वद-14 दि. 31-7-2019 के शुभ दिन पूज्यश्री द्वारा आलेखित कर्मग्रंथ भाग-1 की तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन हो रहा है ।

पूज्यश्री की भाषा अत्यंत ही सरल व सुबोध होने से हिन्दी भाषी क्षेत्र में उनके साहित्य का अच्छा प्रचार-प्रसार हो रहा है । प्रभु से यही प्रार्थना है कि पूज्यश्री चिरायु बने और उनके वरद हस्तों से जिनशासन की सुंदर आराधनाएं संपन्न होती रहे ।

निवेदक

दिव्य संदेश प्रकाशक ट्रस्ट, मुंबई

लेखक की कलम से...

ग्रंथकार परिचय

प्रस्तुत **'कर्मग्रंथ'** के रचयिता **पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म.सा.** है ।

भगवान महावीर प्रभु की 44 वीं पाट-परंपरा में **आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** हुए थे । जिन्होंने 12 वर्ष तक निरंतर आयंबिल की तपश्चर्या की थी । उनके इस तप से प्रभावित होकर मेवाड के महाराणा जैत्रसिंह ने उन्हें **'तपा'** का तथा अनेक वादियों पर विजय प्राप्त करने के कारण **'हीरला'** का बिरुद प्रदान किया था । **पू.आ. श्री जगच्चन्द्रसूरिजी म.** को प्राप्त **'तपा'** बिरुद के कारण निर्ग्रंथगच्छ का नाम **तपागच्छ** हो गया । जो आज भी चालू है ।

पू. आचार्य श्री जगच्चन्द्रसूरिजी म. की धर्मवाणी का श्रवण कर उनके सांसारिक ज्येष्ठ बंधु वरदेव के पुत्र देवसिंह ने दीक्षा अंगीकार की और वे मुनि देवेन्द्र बने ।

मुनिश्रीने स्व-पर दर्शन का गहन अध्ययन किया जिसके फल स्वरुप उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया और वे **देवेन्द्रसूरिजी म.** के नाम से प्रख्यात हुए ।

आचार्य पदारुढ होने के बाद उन्होंने मालवा देश में विहार विचरण कर खुब सुंदर शासन प्रभावना की थी ।

एक बार उज्जैन में जिनभद्र शेठ के पुत्र वीरधवल के पाणिग्रहण का महोत्सव चल रहा था । भाग्य योग्य से **पू.आ.श्री देवेन्द्रसूरिजी म.** भी वहां पधारे, उनके उपदेश श्रवण से वीरधवल अत्यंत ही प्रभावित हुआ और वह दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गया । लग्न मंडप दीक्षा मंडप में बदल गया । वि.सं. 1302 में वीरधवल ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । वीरधवल मुनि ने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया । वि.सं. 1322 में उन्हें सूरि पद प्रदान किया गया । और वे विद्यानंदसूरि कहलाए ।

पू.आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म. जैन धर्म के प्रकांड विद्वान् थे । **पू.आ.श्री शांतिसूरिजी म.** विरचित **'धर्मरत्नप्रकरणम्'** ग्रंथ पर उन्होंने बृहदवृत्ति टीका भी रची है ।

साथ में सुदंसणा चरियं, सिद्ध पंचाशिका सूत्र और उसकी टीका, चैत्यवंदन आदि तीन भाष्य, (वृंदारुवृत्ति) के साथ साथ सटीक नवीन पांच कर्मग्रंथों की भी रचना की थी ।

वि.सं. 1327 में मालवादेश में उनका अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म हुआ था ।

प्रस्तुत 'कर्म विपाक' नाम के प्रथम कर्म ग्रंथ में आठ कर्म के स्वरुप, उनके बंध के हेतु, उनके बंध की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति आदि का सुंदरशैली से वर्णन किया है ।

कर्म ग्रंथ संबंधी हिन्दी भाषा में बहुत ही अल्प साहित्य प्रकाशित हुआ है । पूर्व प्रकाशित हिन्दी-गुजराती प्रकाशनों को नजर समक्ष रखकर यह विवेचन तैयार किया है । इसमें जो कुछ शुभ है वह मेरे परम उपकारी गुरुदेव निःस्पृह शिरोमणि अध्यात्मयोगी वात्सल्य के महासागर पूज्यपाद **पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** श्री की कृपा दृष्टि एवं मेरे हितचिंतक समतानिधि ज्ञानदाता परम उपकारी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी म.सा.** के शुभ-आशीर्वाद का ही फल है ।

प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से संयम-साधना मार्ग में मार्गदर्शन करनेवाले सभी उपकारी पूज्यों के प्रति कृतज्ञताभाव व्यक्त करता हूँ ।

छद्मस्थता वश कर्म विज्ञान के आलेखन में कहीं भी क्षति रह गई हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् ।

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद परम उपकारी
गुरुदेव पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य कृपाकांक्षी
आचार्य रत्नसेनसूरि

हिन्दी साहित्यकार मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू. आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारित के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पू. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	Chaitya Vandan Sootra	2052	अंग्रेजी हिन्दी में मूल सूत्र	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. के पत्रों का हिन्दी अनुवाद	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन कीर्ति स्थंभ	घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर-1	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073		

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादों सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-58
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

- **अभ्यास** : प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.
- **भाषा बोध** : हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि
- **प्रथम प्रवचन प्रारंभ** : फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)
- **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ** : बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक आदि

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय-गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : ''वात्सल्य के महासागर''** संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** (194)

◆ **संस्कृत साहित्य संपादन-सह संपादन :** सिद्ध हैमशब्दानुशासनम्-बृहद्वृत्ति लघु न्यास सह, पांडवचरित्र आदि

◆ **अन्य संपादन :** भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा का इतिहास-भाग 1-2-3

◆ **अनुवाद संपादन :** विजयानंदसूरिजी कृत `नवतत्त्व'।

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी,**
मुनि केवलरत्नविजयजी, मुनि कीर्तिरत्नविजयजी, मुनि प्रशांतरत्नविजयजी, मुनि शालिभद्रविजयजी, मुनि स्थूलभद्रविजयजी, मुनि यशोभद्रविजयजी

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, नासिक ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा.

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ट संख्या
1.	जगत् कर्त्ता कौन ?	17
2.	आत्मा कर्म का कर्त्ता है और कर्म का भोक्ता है ।	19
3.	अद्‌भुत व आश्चर्यजनक जगत्	20
4.	कर्म की सिद्धि	33
5.	जैन धर्म के अकाट्य सिद्धांत	37
6.	देहभिन्न आत्मा	43
7.	कर्म विज्ञान	52
8.	कर्म-विपाक (मंगलाचरण और विषय निर्देश)	57
9.	जीव और कर्म का संबंध	67
10.	पाँच-ज्ञान	72
11.	मतिज्ञान के अवांतर भेद	76
12.	मतिज्ञान के शेषभेद व श्रुतज्ञान	78
13.	श्रुतज्ञान के 14 भेद	83
14.	श्रुतज्ञान के 20 भेद	87
15.	श्रुतज्ञान	90
16.	श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म	100
17.	रोहक की चतुराई	102
18.	बारहवां अंग-दृष्टिवाद	105
19.	अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान-केवलज्ञान	110
20.	दूसरा दर्शनावरणीय कर्म	119
21.	निद्रा-पंचक	121
22.	वेदनीय कर्म	124
23.	मोहनीय कर्म	127
24.	उपशम सम्यक्त्व	130
25.	सम्यक्त्व के भेद	135
26.	चारित्र-मोहनीय	137
27.	पाँचवाँ आयुष्य कर्म	148
28.	नाम कर्म	155
29.	कतिपय संज्ञाएँ	159
30.	गोत्र व अंतराय कर्म	190
31.	ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय बंध के हेतुः	193
32.	वेदनीय कर्म बंध के कारण	195
33.	दर्शनमोहनीय बंध के हेतु	198
34.	देव आयुष्य-नामकर्म के हेतु	203
35.	गोत्र कर्म बंध हेतु	205
36.	अंतराय कर्म के हेतु	207

1 जगत् कर्त्ता कौन ?

विश्व के अन्य अनेक दर्शनकारों की यह मान्यता है कि इस विश्व का सर्जन किसी परमात्मा ने किया है ।

हिन्दू लोगों की यह मान्यता है कि ब्रह्मा ने इस सृष्टि का सर्जन किया है, विष्णु इस सृष्टि का पालन करते है और महेश इस सृष्टि का विनाश करते है ।

जब कि जैन दर्शन की यह मान्यता है कि यह सृष्टि अनादि काल से है, इस सृष्टि पर जीवों का अस्तित्व भी अनादि काल से है । किसी भी परमात्मा विशेष ने इस सृष्टि का सर्जन नहीं किया है ।

इस संसार में जीव (आत्मा) भी अनादिकाल से है अर्थात् किसी भी परमात्मा ने किसी जीव विशेष को उत्पन्न नहीं किया है ।

'किसी बालक का जन्म हुआ' अथवा **'अमुकभाई की मृत्यु हो गई'** यह हम व्यवहार से कहते हैं, परंतु वास्तव में आत्मा का न तो जन्म होता है और न ही मृत्यु ! कर्मबद्ध संसारी अवस्था में जब आत्मा एक देह का त्याग कर दूसरे देह को धारण करती है तो जिस देह का त्याग करती है, उस अपेक्षा से हम मृत्यु कहते हैं और जिस देह को धारण करती है, उसी को हम जन्म कहते हैं । अर्थात् 'जन्म' और 'मृत्यु' का शाब्दिक व्यवहार देह से जुड़ा हुआ है, न कि आत्मा से ।

आत्मा का न जन्म है और न ही मृत्यु ।

आत्मा अनादि है, इसका अर्थ है, आत्मा का कोई 'प्रथम भव' नहीं है । अनादि काल से इस संसार में आत्मा का अस्तित्व है और अनंत-काल तक संसार में आत्मा का अस्तित्व रहेगा ।

आत्मा के अनादिकालीन अस्तित्व की भाँति चौदह राजलोक प्रमाण इस विराट् विश्व का अस्तित्व भी अनादि काल से है । किसी ईश्वर विशेष को इस जगत् का कर्ता मानने पर हमारे सामने अनेक प्रश्न खडे होते हैं, जिनका निराकरण संभव नहीं है । जैसे-

1) इस जगत् के निर्माण के पीछे ईश्वर का क्या प्रयोजन है ?

यदि निष्प्रयोजन ही ईश्वर इस विश्व का सर्जन करे तो मूर्खता ही सिद्ध होती है, क्योंकि समझदार व्यक्ति बिना किसी प्रयोजन कुछ भी प्रवृत्ति नहीं करता है ।

2) यदि ईश्वर सशरीरी है तो उसके शरीर का निर्माण किसने किया ?

3) ईश्वर यदि अशरीरी (निराकार) है तो स्वयं निराकार होते हुए साकार विश्व की रचना कैसे की ?

4) ईश्वर को हम दयालु मानते हैं तो वह दयालु ईश्वर इस विश्व में हिंसक, क्रूर, निर्दय, चोर, परस्त्री-लंपट जैसे खराब व्यक्तियों को क्यों पैदा करता है ?

5) इस संसार में गुनहगार व्यक्ति को सजा होती है तो यह सजा करनेवाला कौन ? यदि सजा करनेवाला ईश्वर है तो उस सर्व शक्तिमान् ईश्वर ने गुनहगार को गुनाह करने से क्यों नहीं रोका ? यदि गुनाह करने की प्रेरणा भी वो ही ईश्वर देता हो तो उस ईश्वर को न्यायाधीश (न्यायप्रिय) कैसे कहा जाएगा ?

6) यदि वह ईश्वर जीवों को अपने-अपने कर्म के अनुसार सजा करता हो तो **'सजा करने में ईश्वर की स्वतंत्रता कहाँ रही ?'** कर्म के अनुसार सजा करने पर तो 'कर्म की ही प्रधानता रहेगी-ईश्वर की नहीं । **इससे यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही लाभ या हानि होगी ।'**

7) इस संसार में कई लोग सुखी हैं, कई लोग दुःखी हैं तो दयालु ऐसा ईश्वर जीवों को दुःख क्यों देता है ? दयालु ईश्वर का तो यह कर्तव्य है कि वह सबको सुखी बनाए, कभी भी किसी को दुःखी न बनाए ।

8) ईश्वर ने जब सृष्टि का सर्जन किया तब शुद्ध आत्माओं को पैदा किया या अशुद्ध आत्माओं को ?

यदि शुद्ध आत्माओं को पैदा किया तो वे आत्माएँ अशुद्ध कैसे बनीं ? सर्व शक्तिमान् ईश्वर ने उन आत्माओं को अशुद्ध बनने से क्यों नहीं रोका ?

यदि ईश्वर ने अशुद्ध आत्माओं को पैदा किया तो उन आत्माओं में यह अशुद्धि कहाँ से आई ?

आत्मा में बिना कारण ही अशुद्धि आ जाय तब तो उनके पुनः शुद्ध होने का सवाल ही नहीं रहेगा और कार्य-कारण की व्यवस्था ही लुप्त हो जाएगी ।

9) ईश्वर ने जगत् को पैदा किया तो उस ईश्वर को किसने पैदा किया ?

इन सब प्रश्नों का अंतिम निष्कर्ष यही है कि यह विश्व अनादिकाल से है । इस संसार में जीव का अस्तित्व भी अनादि काल से है और इस संसार में आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है ।

2 आत्मा कर्म का कर्त्ता है और कर्म का भोक्ता है

कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है । कार्य उत्पन्न हुआ हो तो उसका कोई कारण होना ही चाहिए । इस जगत् में कोई प्राणी सुखी है, कोई दुःखी है, इन सब का कारण उस जीव का पूर्वोपार्जित कर्म ही मानना चाहिए ।

अपने अपने शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार इस जगत् में जीवात्मा को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है ।

भोजन अन्य व्यक्ति करे और तृप्ति अन्य किसी को हो, यह हो नहीं सकता ।

बीमार दूसरा व्यक्ति हो और तीसरा ही व्यक्ति दवाई लेता हो तो वह व्यक्ति रोगमुक्त कैसे हो सकता है ?

बस, इस प्रकार इस जगत् में शुभ अथवा अशुभ कर्म कोई और व्यक्ति करे और उस शुभ-अशुभ कर्म की सजा या इनाम अन्य किसी व्यक्ति को मिले, यह कदापि संभव नहीं है ।

*जगत् की विचित्रता में मुख्य कारण **कर्म** ही समझना चाहिए ।*

इस संसार में जिस प्रकार आत्मा का अस्तित्व अनादिकाल से है, उसी प्रकार आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है ।

मिथ्यात्व, अविरति आदि कर्मबंध के हेतुओं के आसेवन के कारण अनादि काल से आत्मा का कर्म-संयोग है ।

कर्म का बंध, व्यक्ति की अपेक्षा, आदि वाला है किंतु प्रवाह की अपेक्षा अनादि है ।

इससे सिद्ध होता है कि आत्मा ही कर्म की कर्त्ता है और आत्मा ही उस कर्म की भोक्ता है ।

3 अद्भुत व आश्चर्यजनक जगत्

(यह लेख किसी अज्ञात लेखक की पुस्तक से लिया है ।)

कुछ व्यक्तियों की यह मान्यता है कि **''जो हम अपनी आँखों से देखते हैं, अपने कानों से सुनते हैं तथा अपनी अन्य इन्द्रियों से अनुभव करते हैं, केवल वही सत्य व वास्तविक है, इसके विपरीत अभौतिक व अतीन्द्रिय शक्तियों तथा आत्मा के अस्तित्व व पुनर्जन्म आदि की बातें कपोल कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं । ऐसी बातों पर विश्वास करना अन्धविश्वास ही माना जायेगा ।''** परन्तु तथ्य तो यह है कि ऐसा समझना इन व्यक्तियों का भ्रम ही है । वास्तविकता तो यह है कि हमारी इन्द्रियों की शक्ति बहुत ही सीमित है । अपनी इन्द्रियों के माध्यम से हम जितना ग्रहण कर पाते हैं वह तो ज्ञान के विशाल भण्डार में समुद्र की तुलना में सुई की नोक पर लगे जल के बिंदु समान भी नहीं है ।

आज तो वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते है कि प्रकृति की अनेक घटनाएँ हमारी कल्पना से भी अधिक विलक्षण और आश्चर्यजनक हैं । ये वैज्ञानिक यह भी स्वीकार करते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी प्रकृति के अनेक रहस्यों का स्पष्टीकरण करने में अभी तक समर्थ नहीं है ।

हम मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति को ही लेते हैं । मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति तो बहुत ही सीमित होती है । कुछ पशु-पक्षियों की इन्द्रियाँ तो मनुष्य की इन्द्रियों से बहुत ही अधिक संवेदनशील और तीक्ष्ण होती हैं । तथ्य तो यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य ने वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्नति की है वह प्रकृति से दूर होता गया है और उसकी इन्द्रियों की क्षमता कम होती गयी जबकि पशु-पक्षी अब भी प्रकृति के बहुत अधिक निकट हैं । इस सम्बन्ध में हम कुछ उदाहरण देते हैं-

आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जब लिखने की परम्परा नहीं थी उस समय मनुष्य की स्मरण-शक्ति बहुत तेज होती थी । वह प्रत्येक बात को याद रखता था, क्योंकि उसके पास स्मरणशक्ति के अतिरिक्त याद रखने

का और कोई साधन नहीं था । अब से लगभग दो हजार वर्ष पहले तक स्मरण रखने की ही परम्परा थी । परन्तु जब से लिखने का रिवाज चला तब से मनुष्य ने अपनी स्मरण-शक्ति से काम लेना छोड़ दिया । उसे जो भी बात याद रखनी होती थी, वह पहले पत्थरों पर, फिर ताड़पत्रों पर, फिर कपडों पर और अन्त में कागज पर लिखकर रखने लगा । ऐसा करने से उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण होती गयी । इसी प्रकार तब तक छपाई की मशीनें नहीं बनीं थीं मनुष्य बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे । परंतु जब से पुस्तकें छपने लगीं, सुन्दर लेखन की कला समाप्त-सी हो गयी ।

पशु-पक्षी प्रकृति के बहुत अधिक निकट हैं इसलिए इनकी इन्द्रियाँ मनुष्य की इन्द्रियों से अधिक तीक्ष्ण और संवेदनशील होती हैं । इस संबन्ध में हम कुछ उदाहरण देते हैं ।

1) जो पशु-पक्षी जंगलों में रहते हैं वे शायद ही कभी बीमार पड़ते हों ।

2) रेगिस्तान में जब आँधी आने वाली होती है तो ऊँट चलते-चलते रुक जाते हैं, उस समय वे बिल्कुल भी आगे नहीं बढ़ते । उनकी ऐसी दशा को देखकर काफ़ले वाले मुसाफिर आंधी आने का अनुमान लगा लेते हैं और अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लेते हैं ।

3) जब गरमी के मौसम में गरमी कम पड़नी होती है तो पक्षी वृक्ष के उस भाग में घोंसले बनाते हैं, जिधर धूप अधिक पड़ती हो ।

4) बरसात आने से पहले ही चींटियां अपने अण्डों को सुरक्षित स्थान पर ले जाती हैं । चींटियों को इस प्रकार अपने अण्डों को ले जाते हुए देखकर अनेक व्यक्ति यह अनुमान लगा लेते हैं कि निकट भविष्य में ही वर्षा होने वाली है ।

5) आँधी आने से पहले ही भेड़ें किसी टीले की ओट में हो जाती हैं । पक्षी पृथ्वी के अधिक निकट उड़ने लगते हैं । बत्तखें व जल-मुर्गियाँ उड़ना ही बन्द कर देती हैं ।

6) कुछ ऐसी घटनाएँ भी प्रकाश में आयी हैं कि पशुओं को किसी स्थान पर बमबारी होने से पहले ही वहाँ होने वाली बरबादी का अनुमान हो

गया और वे उस स्थान से दूर चले गये तथा अन्य प्राणियों को भी इस तथ्य का आभास कराने का प्रयत्न करने लगे। किसी जंगल में आकाशीय बिजली द्वारा आग लगने से पहले ही बंदर वह स्थान छोड़कर जाने लगते हैं।

7) बहुत से ऐसे पक्षी होते हैं जो अपनी मातृभूमि में बर्फ पड़ने से पहले ही हजारों मील उड़कर अन्यान्य सुरक्षित स्थानों में चले जाते हैं और मौसम अनुकूल होने तक फिर अपने देश में वापिस पहुँच जाते हैं।

8) जब किसी स्थान पर भूचाल आने वाला होता है तो कुछ पशु-पक्षियों को इसका आभास पहले से ही हो जाता है, वे असामान्य व्यवहार करने लगते हैं और उस स्थान से दूर भाग जाने का प्रयत्न करने लगते हैं।

9) सरकस के पशुओं के प्रसिद्ध रूसी प्रशिक्षक श्री ब्लादिमिर दुरोव अपने पशुओं से मूक वार्तालाप करते थे। वे अपने पशुओं का सिर अपने हाथों के बीच थाम लेते थे, फिर जो भी कार्य अपने पशुओं से लेना चाहते थे उस क्रिया का मानचित्र अपने दिमाग में बनाते जाते थे। पूरा मानचित्र बन जाने पर वे पशुओं को छोड़ देते थे और वह पशु बिल्कुल उसी प्रकार वह कार्य सम्पन्न करता था। वैज्ञानिकों ने इस तथ्य की कई बार परीक्षा की और उसे बिल्कुल ठीक पाया।

10) आस्ट्रेलिया के विश्व-विख्यात पक्षी- के वैज्ञानिक डा. सुर्वेल ग्रेगरी ने अनेक वर्षों के अध्ययन के पश्चात् बतलाया है कि कुछ पक्षी भी महाजनों के समान लेन-देन करते हैं। वे अन्य पक्षियों को अन्न के दाने, कीड़े आदि कर्ज देते हैं और फिर किश्तों में या एक मुश्त में ही अपना कर्ज वसूल करते हैं। प्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ डा. सलीम अली ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है।

11) एक नर-तितली अपनी मादा-तितली की गंध एक मील दूर से ही पा जाती है।

12) कुत्ते की सूंघने की शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वह किसी मार्ग से बारह घन्टे पहले गुजरे हुए व्यक्ति को भी सूंघ-सूंघ कर ढूंढ निकालता है। कुत्तों की इसी शक्ति का उपयोग पुलिस भी करती रहती है।

13) चमगादड़ जब घने अन्धकार में उड़ता है तो अपने मार्ग में आनेवाली तनिक-सी बाधा को भी दूर से ही जान जाता है और उससे बचकर

निकल जाता है । वैज्ञानिकों ने एक कमरे में बहुत बारीक तार को टेढ़ा मेढ़ा जाल बनाकर उस कमरे में चमगादड़ों को उड़ाया । चमगादड़ तारों को बिना छुए और एक दूसरे से बिना टकराये उस कमरे में उड़ते रहे । कहा जाता है कि चमगादड़ों की इसी शक्ति के आधार पर वैज्ञानिकों ने ``राडार'' का आविष्कार किया है ।

जो व्यक्ति केवल अपनी इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुए ज्ञान को ही सत्य मानते हैं, क्या वे ऊपर दिये हुए तथ्यों को झुठला सकेंगे ?

मनुष्यों की इन्द्रियों की शक्ति कितनी सीमित होती है इस सम्बन्ध में हम कुछ और उदाहरण देते हैं-

1) नंगी आँखों से एक व्यक्ति लगभग तीन हजार तारे देख सकता है । परन्तु यदि हम दूरवीक्षण यन्त्र (Telescope) से देखें तो हमें आकाश में लाखों तारे दृष्टिगोचर होंगे । और अब तो अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस विराट् विश्व में खरबों तारे हैं जो हमसे लाखों प्रकाश वर्ष दूर तक फैले हुए हैं ।

(प्रकाश एक सैकण्ड में लगभग 1,86,000 मील तक जा सकता है । इस प्रकार प्रकाश एक घन्टे में 1,86,000 x 60 x 60 मील दूर जा सकता है । एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूर जाता है, उसे एक प्रकाश वर्ष कहते हैं ।)

2) वैज्ञानिक कहते हैं कि एक साधारण व्यक्ति की देखने व सुनने की शक्ति बहुत ही सीमित होती है, हमारे कान 16 से 32000 कम्पन युक्त (Frequency) तरंगें ही ग्रहण कर सकते हैं । इससे अधिक या कम कम्पन की तरंगें हम सुन नहीं सकते । हमारी पृथ्वी के चारों ओर हजारों रेडियो-स्टेशनों से प्रसारित होने वाली तरंगें फैली रहती हैं । परन्तु हम उनको ग्रहण नहीं कर पाते । हमारे रेडियो अपने विशेष यन्त्रों के द्वारा उन तरंगों को ग्रहण कर ऐसी तरंगों में बदल देते हैं जिनको हम ग्रहण कर सकते हैं ।

इसी प्रकार हमारी आँखों की देखने की शक्ति भी बहुत सीमित है । नंगी आँखों से हम जितना देख पाते हैं, दूरवीक्षण व सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्रों की सहायता से हम उससे हजारों गुणा देख लेते हैं । चारों ओर टेलीविजन स्टेशनों द्वारा प्रसारित तरंगें फैली हुई हैं परन्तु हम उन्हें देख नहीं पाते ।

टेलीविजन के यन्त्र उन तरंगों को ग्रहण करके उन्हें देखने योग्य चित्रों में बदल देते हैं, तभी हम टेलीविजन पर कार्यक्रम देख पाते हैं ।

एक्स-किरणें (X-Rays) हमारी त्वचा के भीतर देख लेती हैं, परन्तु हमारी आँखों में यह शक्ति नहीं है।

इन्फ्रारेड किरणों (Infrared Rays) को हमारी आँखें देख नहीं पातीं परन्तु हमारी त्वचा उनकी गर्मी अनुभव करती है ।

यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यही है कि यह विश्व और इसके क्रिया-कलाप केवल इतने ही नहीं हैं, जितने हम अपनी इन्द्रियों से ग्रहण कर पाते हैं तथा जितना आधुनिक विज्ञान ने हमको बतला दिया है । इसके विपरीत यह विश्व बहुत ही अधिक विशाल और विलक्षण है और इसके अनेक क्रियाकलाप ऐसे हैं, जिनका रहस्य वैज्ञानिक भी अभी तक समझ नहीं पाये हैं ।

हम यहाँ पर इन्द्रियातीत ज्ञान व शक्ति के कुछ उदाहरण देते हैं–

◆ कई योगी योग-साधना के द्वारा अपने हृदय की शुद्धि व मन की एकाग्रता बढ़ा कर अतीन्द्रिय-शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं और अपनी इच्छानुसार इन शक्तियों का उपयोग करते हैं । जिस प्रकार हम टार्च का प्रकाश जहाँ चाहें वहाँ फेंक सकते हैं, उसी प्रकार योगी भी अपनी इस अतीन्द्रिय शक्ति की टार्च की किरणें अपने इच्छित स्थल एवं काल पर फेंककर हजारों मील दूर की तथा भूत व भविष्य की घटनाओं को बहुत सरलता से जान लेते हैं । कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी सामान्य व्यक्ति को भी भविष्य में घटने वाली किसी घटना का पूर्वाभास हो जाता है ।

1) 6 अगस्त 1945 के दिन प्रातः नींद से जागते ही एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा ``तीन महीनों में बेयओऩ (Bayonne) में बड़े धमाके के साथ दो-तीन लाख गैलन पैट्रोल जल उठेगा और अनेक व्यक्तियों के जीवन को भी खतरा हो जायेगा । परन्तु यदि समुचित सावधानी रखी जाये, तो यह दुर्घटना टल सकती है ।'' इससे पहले उस व्यक्ति ने कभी बेयोन का नाम भी नहीं सुना था । अपने पुत्र से उसे ज्ञात हुआ कि बेयोन नगर न्यूजर्सी (अमरीका) में है और वहाँ स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी का तेल-शोधक कारखाना

है । इस कारखाने के प्रबन्धकों को भी इस पूर्वाभास की सूचना दी गयी । मालूम नहीं उन्होंने सावधानी बरती या नहीं, परन्तु 6 नवम्बर को यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई ।

2) ऐसी भी अनेक घटनाएँ प्रकाश में आई हैं जब किन्हीं व्यक्तियों ने किसी अज्ञात भय के कारण किसी विशेष रेल तथा वायुयान से यात्रा करने से इन्कार कर दिया और अपनी रिजर्व सीटें वैसे ही छोड़ दीं । आश्चर्य की बात तो यह है कि वे रेलें व वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गये ।

3) पूना में श्री एम.बी. मीटकर नाम के एक सज्जन थे जो जीवन बीमा निगम में एक अधिकारी थे । वे अपनी मित्र-मंडली में बापू साहब मीटकर के नाम से प्रसिद्ध थे । वे सैकड़ों मील दूर घट रही घटनाओं का ब्योरे वार वर्णन कर देते थे । **``ऐसोसियेटेड प्रेस ऑफ अमरीका''** के श्री एस.जी. सतुरामन और **``नेशनल हेरल्ड''** के श्री रामराव जैसे अनेक गणमान्य सज्जनों ने उनकी इस शक्ति की परीक्षा ली थी । उनका बतलाया हुआ वर्णन सदैव ठीक निकला ।

4) लन्दन में एक भारतीय की श्री राफेल हर्स्ट नामक एक अंग्रेज पत्रकार से मित्रता हो गयी । उस भारतीय ने उस अंग्रेज पत्रकार को बतलाया ``एक दिन आप भारत जाओगे और सच्चे योगियों की खोज में सारा देश घूमोगे । अन्ततः आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी ।'' अंग्रेज पत्रकार के पूछने पर उस भारतीय सज्जन ने बतलाया, ``मुझे इस बात की अन्तःस्फुरणा हुई थी । यह अन्तःस्फुरणा की शक्ति कैसे प्राप्त की जाये यह मुझे मेरे गुरु ने सिखलाया है । अब मैं अपनी अन्तः स्फुरणा पर पूरा भरोसा रखकर कार्य करता हूँ ।'' समय बीतने पर यह बात सच निकली । उन श्री राफ़ेल हर्स्ट ने अपनी भारत-यात्रा का रोचक वर्णन डॉ. पाल ब्रन्टन (Dr. Paul Brunton) के उपनाम से "A search in Secret India" नामक पुस्तक में किया है ।

5) अमरीका के उत्तरी न्यूजर्सी नगर में एक प्रौढ़ महिला, जिनका नाम डोरोथी एलिसन है, उनको बचपन से ही ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वे खोये हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में बतला देती हैं कि वह व्यक्ति इस समय कहाँ होगा ? बतलाने से पहले उनको थोड़ी देर के लिए एकाग्रचित्त होना पड़ता है, फिर उनको ऐसा आभास होने लगता है जैसे वे उस स्थान की धुंधली सी

झलक देख रही हैं । उन्होंने अनेक बार खोये हुए व्यक्तियों का अता-पता बतलाकर पुलिस की सहायता भी की । उनके बतलाये हुए पते शत-प्रतिशत तो नहीं परन्तु अधिकांश में ठीक निकलते हैं । नवम्बर 1975 में एक व्यक्ति की अठारह वर्षीय पुत्री गायब हो गयी थी । वह व्यक्ति सहायता के लिए उनके पास आया । उन्होंने थोड़ी देर एकाग्रचित्त होने के बाद कहा, ``आपकी कन्या सुरक्षित है । वह एक गंदे मकान में है । उस मकान का दरवाजा लाल रंग का है । उस मकान का नम्बर 106, 186 या 168 है । जिस व्यक्ति के साथ लड़की गयी है उसके नाम में दो आर (R) हैं उस व्यक्ति का नाम हैरी भी हो सकता है । लड़की का पता 21 जनवरी 1976 से पहले ही चल जायेगा । परन्तु आप उससे 21 जनवरी 1976 को ही मिल सकोगे । लड़की इस समय गर्भवती है । समय आने पर सब बातें ठीक निकलीं । ऐसी सहायता के बदले में वे महिला किसी से कुछ भी स्वीकार नहीं करतीं ।

(6) अमरीका में श्री टैड नामक एक अद्‌भुत व्यक्ति थे । सन् 1955 तक वे एक साधारण व्यक्ति के समान ही एक होटल में कार्य करते थे । एक दिन उनको इस प्रकार की अनुभूति हुई कि जब वे अकेले में बैठ कर किसी वस्तु के सम्बन्ध में सोचते हैं, तब उस वस्तु का हू-ब-हू मानचित्र उनकी आँखों के सामने आ जाता है । कई बार उनको ऐसी अनुभूति हुई कि वे दरवाजे व खिड़कियों से होते हुए किसी दूर के प्रदेश में जाते हैं और फिर अपने द्वारा सोचे गये किसी विशेष स्थान को देखकर वे कुछ ही क्षणों में वापिस आ जाते हैं । इस प्रकार वे अपने होटल में बैठे-बैठे ही दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रा का आनन्द ले लेते हैं । वैज्ञानिकों ने उनकी इस अद्‌भुत शक्ति पर अनेक प्रयोग किये और उनकी इस क्षमता को सदैव ही ठीक पाया । उनको सम्मोहन विद्या सीखने का शौक था और एक बार वे इस विद्या का अभ्यास करने के लिए एक सप्ताह तक एक कमरे में बन्द रहे । परन्तु उनके मित्रों ने उस सप्ताह के दौरान भी उन्हें बाहर घूमते हुए देखा । कई बार वैज्ञानिकों ने उनको कमरे में बन्द करके सम्मोहित किया और सम्मोहन की अवस्था में उनसे किसी विशेष स्थान का वर्णन करने के लिए कहा । वे कुछ समय पश्चात् ही उस स्थान का बिल्कुल ठीक-ठीक विस्तारपूर्वक वर्णन कर देते थे । इसके साथ-साथ उनके मस्तिष्क के चारों ओर पोलर्ड के शक्तिशाली

कैमरे रखकर फोटो खींचे जाते तो फोटो में उस विशेष स्थान से बहुत कुछ मिलती-जुलती आकृति आ जाती, जिस स्थान का वर्णन करने के लिए उनसे कहा जाता था।

8) कानपुर में उपेन्द्र जी नामक एक सज्जन हैं। अभ्यास के द्वारा उनके नेत्रों में ऐसी शक्ति आ गयी है कि वे अपनी दृष्टि गड़ाकर धातु तक को पिघला देते हैं। इस क्रिया को त्राटक कहते हैं।

9) श्री बलजीत सिंह जब्बल नामक युवक ने अपने दृष्टिपात के द्वारा सितम्बर 1980 में एक दिये को जला दिया था। एक दिये में एक सूखी बत्ती रख दी गयी, उस दिये में तेल या घी कुछ भी नहीं था, श्री बलजीत सिंह दिये को देखते रहे और कुछ ही क्षणों में वह बत्ती जलने लगी। उन्होंने लन्दन में भी इस प्रकार का प्रदर्शन किया था।

10) इजरायल के निवासी श्री यूरी गेलर, बिना छुए केवल अपने दृष्टिपात के द्वारा कीलें, चाबी आदि लोहे की वस्तुओं को मोड़ देते हैं। वे भी बिना शरीर के दूसरे स्थानों की यात्रा कर आते हैं। एक बार उन्होंने छह हजार मील दूर न्यूयार्क में बन्द कैमरे के केस को अपने यहाँ मंगवा लिया था। वे छिपाकर रक्खी हुई वस्तुओं के छिपाने का स्थान भी बतला देते हैं और उन छिपाकर रक्खी वस्तुओं की अनुकृति भी बना देते हैं।

11) रूस के लेनिनग्राड नगर में एक महिला थी जिनका नाम नाइनेल कुलागिना था। उनमें भी अद्भुत शक्ति थी। वे ध्यान के द्वारा, बिना छुए ही, वस्तुओं को सरका देती थीं। वे कुतुबनुमा की सुई को अपनी इच्छा के अनुसार घुमा देती थीं। वे बिना देखे ही ऊन के गोलों में से अपनी पसन्द का रंग निकाल लेती थी। वे अपनी इच्छा-शक्ति से मेंढकों के दिल की धड़कन बन्द कर देती थीं। एक बार एक मनोवैज्ञानिक ने चुनौती दी कि वे उसके दिल की धड़कनों में गड़बड़ी करके दिखलाएँ। उन महिला के ध्यान लगाने के दो-तीन मिनट बाद ही उस वैज्ञानिक के दिल की दशा खराब होने लगी। कहीं उनकी जान पर न बन जाए इसलिए वह प्रयोग बन्द कर देना पड़ा। इन प्रदर्शनों की फिल्में भी बनी हैं।

रूस में ही मास्को में रहने वाली एक अन्य महिला विनोग्रादोवा भी इसी प्रकार ध्यान लगा कर वस्तुओं को अपनी ओर खींच लेती हैं।

12) चीन में वेह रूपांग नाम का एक बारह वर्ष का बालक है । उसको ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वह ईंटों की दीवारों के पार भी देख सकता है । वह किसी भी रोगी को देखकर यह बतला देता है कि उस रोगी के शरीर के अन्दरूनी अंगों में क्या गड़बड़ी है । वह जमीन को देखकर बतला देता है कि उसके नीचे भूमिगत पानी है या नहीं ? यह बालक अपनी माता के आन्तरिक विचारों को भी पढ़ लेता है । वह अपनी आँखों की सहायता के बिना, कानों के द्वारा पुस्तक पढ़ सकता है अर्थात् पुस्तक उसके कान के पास रख दी जाती है और वह पुस्तक को पढ़ने लगता है ।

13) कुआलालम्पुर में ``**किम**'' नामक एक दस वर्ष की लड़की है । वह बालिका अपने कानों से देख लेती है । उसके कान के पास पत्र-पत्रिकाएँ रख दी जाती हैं और वह उनको मुख से सुना देती है ।

चमत्कारिक उपचार

सन 1977 के लगभग अमरीका में एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम एडगर केसी (Edger Caycee) रक्खा गया । इक्कीस वर्ष की अवस्था में वह अत्यंत बीमार पड़ा । पर्याप्त उपचार करने के पश्चात् वह उस बीमारी से तो अच्छा हो गया, परन्तु उसके बोलने की शक्ति जाती रही और वह गूंगा हो गया ।

एक बार हिप्नोटिज्म जानने वाले एक व्यक्ति ने उसे `ट्रांस' की अवस्था में डालकर-सम्मोहित करके-उससे बुलवाया । परन्तु ट्रांस से जागने के पश्चात् वह फिर पहले के समान गूंगा ही रहा । वह हिप्नोटिज्म जाननेवाला तो चला गया, परन्तु एक अन्य व्यक्ति ने, जो हिप्नोटिज्म का अभ्यास कर रहा था, सोचा, ``कैसी ट्रॉंस की अवस्था में बोल सकता है । हमें उसको ट्रांस की अवस्था में डालकर उसी से उसके बोलने के कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिए ।'' उस व्यक्ति ने केसी पर प्रयोग किये । केसी ने स्कूल में केवल नवीं कक्षा तक ही अध्ययन किया था, परन्तु ट्रांस की अवस्था में उसने एक डॉक्टर के समान ही डॉक्टरी भाषा में रोग का कारण, उसका निदान और फिर रोग का उपचार बतला दिये । उसी के अनुसार उपचार करने पर केसी बिल्कुल ठीक हो गया, और वह फिर से बोलने लगा । वह हिप्नोटिस्ट स्वयं भी लम्बे समय से पेट के दर्द से पीड़ित था । उसने केसी को सम्मोहित करके

उससे अपने रोग का निदान और उपचार मालूम किया और फिर उसी के अनुसार उपचार करने पर वह स्वयं भी स्वस्थ हो गया ।' शनैः शनैः यह बात डॉक्टरों तक पहुँची । वे भी अपने उलझन भरे रोगियों का उपचार करने के लिए केसी का मार्गदर्शन लेने लगे । यह भी ज्ञात हुआ कि वह रोगी की अनुपस्थिति में भी रोग का उपचार बतला सकता है । प्रश्न करते समय केवल इतना बतलाना ही पर्याप्त था कि रोगी उस समय कहाँ है ? केसी स्वयं ट्रांस की अवस्था में जाता और फिर प्रश्न करने पर इस प्रकार अधिकारपूर्वक बोलने लगता जैसे कोई विशेषज्ञ डॉक्टर एक्सरे में सारा शरीर देखकर बोल रहा हो । वह रोगी के रोग का कारण और उसके निवारण के उपाय बतलाता । इस प्रकार केसी ने लगभग तीस हजार रोगियों के सम्बन्ध में सूचनाएँ दीं । ये सूचनाएँ आज भी सुरक्षित हैं और डॉक्टर आज भी उनका अध्ययन करते हैं ।

केसी की इस अद्‌भुत शक्ति के सम्बन्ध में ओहियो (अमरीका) के श्री आर्थरलेमर्स नामक एक साधन-सम्पन्न प्रकाशक ने भी सुना । उसने सोचा जिस व्यक्ति के पास ऐसी अतीन्द्रिय शक्ति हो, क्या वह मनुष्यों की अन्य उलझनों तथा मानव जीवन का हेतु क्या है ? जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् जीवन का कोई अस्तित्व है या नहीं-पर प्रकाश नहीं डाल सकता ? श्री आर्थर लेमर्स इसी कार्य के लिए केसी के पास गये और उनको अपनी बात समझाई । केसी इस समस्या पर प्रयोग करने के लिए राजी हो गया और पहले ही प्रयत्न में केसी ने बतलाया कि **अपने पूर्व जन्म में श्री आर्थर लेमर्स एक साधु थे ।** इस प्रकार केसी ने व्यक्तियों के पूर्वजन्म पढ़ने प्रारम्भ कर दिये । केसी पूर्वजन्म की बातें बतलाकर यह भी बतलाता कि उस पूर्वजन्म का वर्तमान जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? जिन व्यक्तियों को केसी ने कभी देखा भी नहीं था, उन व्यक्तियों के स्वभाव, उनकी विशेषताओं, उनके मानसिक विकास इत्यादि के सम्बन्ध में केसी द्वारा बतलायी गयी बातें आश्चर्यजनक रूप से सच निकलतीं । इस प्रकार उसने लगभग दो हजार पाँच सौ व्यक्तियों के पूर्व-जन्म के सम्बन्ध में बतलाया । सन् 1945 में अड़सठ वर्ष की आयु में केसी की मृत्यु हो गयी । केसी के नाम से अमरीका में एक संस्थान भी स्थापित है और उसके सम्बन्ध में कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं ।

◆ दरभंगा के एक होम्योपैथिक डॉक्टर श्री ए.वी. साहनी एक प्रयोग

कर रहे हैं । वे रोगी का एक बाल मंगवा लेते हैं और उस बाल पर उस विशेष रोग की औषधि लगाते हैं । ऐसा करने से रोगी ठीक होने लगता है । इस प्रकार उन्होंने अनेक रोगियों को स्वास्थ्य-लाभ कराया है । उन्होंने इस विषय पर अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है- (Transmission of Homeo Drug from a Distance.)

◆ कनाडा में मोन्ट्रियल नामक नगर में श्री ओसकर एस्टेबनी नामक सज्जन रहते हैं । उनके स्पर्श में अद्भुत चमत्कार है । उनका स्पर्श पाते ही मरणासन्न रोगी स्वास्थ्य-लाभ करने लगते हैं । उनके स्पर्श से टूटी हुई हड्डियाँ जुड़ जाती हैं । मनुष्यों और पशु-पक्षियों की तो बात ही क्या, वनस्पति पर भी उनके स्पर्श का समान प्रभाव होता है । जुलाई के महीने में तीन सप्ताह के लिए वे न्यूयार्क के अल्वेनी इलाके में आ जाते हैं और वहाँ पर रोगियों को अपने स्पर्श से लाभान्वित करते हैं । पहले वे एक सैनिक अधिकारी थे । उस समय वे जिन घोड़ों पर बैठते थे, वे घोड़े न तो थकते थे, न बीमार ही पड़ते थे । उनकी इस शक्ति का अन्य घोड़ों पर भी परीक्षण किया गया तो उन घोड़ों पर भी वह प्रभाव हुआ । यह शक्ति उनको अपने आप ही प्राप्त हो गयी है । अनेक वैज्ञानिकों ने उनकी इस अद्भुत शक्ति की जाँच की है और इसको बिलकुल सत्य पाया है । हाँ, जब कभी वे निराश, परेशान व उदास होते हैं, तो उनका स्पर्श कोई चमत्कार नहीं दिखाता ।

◆ दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक ``हिन्दुस्तान'' के 28 मार्च 1984 के अंक में एक सज्जन का लेख ``आस्था के उपचार'' प्रकाशित हुआ है । उसमें उन्होंने बताया है कि एक गाँव में एक सज्जन पीलिया का उपचार करते हैं । वे बोर जैसे फलों की एक कण्ठी पीलिये के रोगी के गले में डाल देते हैं । जैसे-जैसे दिन बीतते हैं वह कंठी नीचे लटकती जाती है और रोग घटता जाता है । जब वह कंठी नाभि को छूने लगती है, रोग गायब हो जाता है । इस प्रकार उन्होंने रोगियों को ठीक किया है ।

◆ मन्त्रों के द्वारा साँप के काटने का इलाज भी किया जाता है । कुछ तान्त्रिक तो मन्त्रों के द्वारा उस साँप को बुलवाते हैं, जिस साँप ने व्यक्ति को काटा था, फिर वह साँप उस व्यक्ति के शरीर से जहर चूस लेता है और वह मरणासन्न व्यक्ति फिर से स्वस्थ हो जाता है ।

◆ मिस्त्र के पिरामिड में भी अद्भुत शक्ति है । उसमें कोई शव रख दिया जाये तो वह बहुत समय तक खराब नहीं होता । श्रीमती सोफिया टेनब्रो नामक एक अमरीकी महिला बंगलौर में रहती थीं । उन्होंने अपने घर के पिछवाड़े प्लाईवुड का एक पिरामिड बनवाया था । उसमें वे नये-नये प्रयोग करती रहती थीं । उनकी 86 वर्षीय माताजी लकवे से पीड़ित थीं । वे एक सप्ताह तक तीन चार घंटे प्रति दिन उस पिरामिड में बैठीं तो वे भली प्रकार चलने लगीं । कई अन्य रोगियों ने भी उनके पिरामिड में बैठकर स्वास्थ्य-लाभ लिया था । अब वे अमरीका वापिस चली गयी हैं ।

दूरानुभूति (Telepathy)

दूरानुभूति (Telepathy) को लेकर आज अमरीका और यूरोप में ही नहीं सोवियत संघ में भी अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं । श्री एंड्रीजा पुहारिख ने दूरानुभूति पर अनेक प्रयोग किये हैं और उनको "Beyond Telepathy" नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है । उनका कहना है कि यदि हम किसी व्यक्ति को याद करते हैं तो उस व्यक्ति पर भी इसकी प्रतिक्रिया होती है । जितनी अधिक तीव्रता से हम किसी व्यक्ति को याद करेंगे उतनी ही अधिक शक्तिशाली प्रतिक्रिया उस दूसरे व्यक्ति पर होगी ।

इस पुस्तक "Beyond Telepathy" में एक और प्रयोग भी दिया हुआ है । एक प्रयोगशाला में कुछ व्यक्तियों को एकत्र किया । उनमें से हैरी स्टोन नामक एक व्यक्ति की आँखों पर पट्टी बाँध कर प्रयोगशाला के बाहर भेज दिया गया । प्रयोगशाला में उपस्थित व्यक्तियों के सामने एक वस्तु छिपा दी गयी । तब हैरी स्टोन को अन्दर बुलाया गया, उसकी आँखों की पट्टी खोल दी गयी और उससे छिपायी हुई वस्तु को खोजने के लिए कहा गया । हैरी स्टोन ने कुछ क्षणों के लिए सोचा और फिर एक ही प्रयत्न में छिपायी हुई वस्तु को निकाल लिया । इसका कारण यह बताया गया कि प्रयोगशाला में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति दूरानुभूति के माध्यम से वस्तु के स्थान की सूचना हैरी स्टोन तक भेजने का प्रयत्न कर रहा था और वे इसमें सफल भी हुए थे ।

परामनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि माता का अपने बालक से सूक्ष्म भावनात्मक सम्बन्ध होता है । इसको प्रमाणित करने के लिए अनेक प्रयोग किये गये हैं । एक प्रयोग के दौरान कई माताओं को एक बड़े भवन के एक कोने

में बैठा दिया गया और उनके शिशुओं को उनसे इतनी दूर रखा गया कि न तो वे अपने शिशुओं को देख ही पायें और न उनके रोने की आवाज ही सुन पायें । डॉक्टरों को परीक्षण के लिए उन शिशुओं के शरीरों से कुछ रक्त निकालना था और ऐसा करने से शिशुओं को कष्ट होता था और वे रोते भी थे । इस प्रयोग में यह देखा गया कि जिस शिशु का रक्त निकाला जाता, वह बालक रोता था उसी समय उस शिशु की माता को अपने आप ही परेशानी व बेचैनी होने लगती थी ।

भविष्य वाणियाँ

कुछ व्यक्ति भविष्य वाणियाँ भी करते हैं जो आश्चर्यजनक रूप से सच निकलती हैं ।

दिल्ली के संत बाबा चरनदास ने बादशाह मुहम्मदशाह को छह महीने पहले बतला दिया था, ``अरे बादशाह, पश्चिम से एक भयंकर तूफान तेरी तरफ आ रहा है जो अपने साथ प्रलय का संदेश ला रहा है । तेरी दिल्ली में हजारों रुण्ड-मुण्ड धरती पर बिखरेंगे । तेरा जीवन तो बचेगा पर वैभव नहीं ।'' और सचमुच ही छह महीने बाद नादिरशाह की सेना ने दिल्ली का वही हाल किया जैसा कि संत बाबा चरनदास ने बतलाया था ।

◆ कुछ व्यक्ति किसी व्यक्ति के हाथों की लकीरों को देखकर उस व्यक्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हैं । कभी-कभी तो ये भविष्यवाणियाँ शत-प्रति-शत ठीक निकलती हैं । हस्त रेखा विज्ञान पर सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । हमारा तो यह विश्वास है कि हस्त रेखाओं को देखकर भविष्यवाणी करना एक सच्चा विज्ञान हैं ।

कुछ व्यक्ति विभिन्न अंगों जैसे आँखें, पलकें, नाक, होंठ, माथा, ठोड़ी, अंगुलियों आदि की आकृतियाँ देखकर उस व्यक्ति के चाल-चलन व स्वभाव के सम्बन्ध में बतलाते हैं । व्यक्ति की चाल-ढाल व खाने-पीने के ढंग को देखकर भी उसके स्वभाव व चालचलन का आभास मिल जाता है ।

कुछ व्यक्ति किसी व्यक्ति की हस्तरेखा को देखकर ही उस व्यक्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर देते हैं ।

(दिल्ली से प्रकाशित...पुस्तक में से)

4 कर्म की सिद्धि

इस जगत् में रहे हुए जीवों में जो भिन्नताएँ दिखाई देती हैं, उनका मुख्य कारण कर्म ही है । एक आदमी धनवान् दिखाई देता है और दूसरा गरीब । एक सशक्त स्वस्थ दिखाई देता है और दूसरा रोगी । एक राजा है तो दूसरा भिखारी । एक बहुत बड़ा बुद्धिशाली है तो दूसरा महामूर्ख ।

एक 100 वर्ष तक जीता हैं तो दूसरा 5 वर्ष में ही मर जाता है ।

एक को सर्वत्र मान-सम्मान और यश मिलता है तो दूसरे को सर्वत्र अपमान और तिरस्कार । इस प्रकार जगत् में जो विभिन्नताएँ विचित्रताएँ देखने को मिलती हैं, उन सबका मुख्य कारण कर्म ही है ।

जगत् में **'कार्य-कारण भाव'** का नियम है अर्थात् जगत् में कोई भी कार्य पैदा होता है, उसका कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है । बिना कारण कोई कार्य पैदा नहीं होता है ।

एक ही पिता के दो पुत्र-एक धनवान् और दूसरा गरीब होता है । इसका कारण उनके पूर्वभव के कर्म ही हैं ।

एक ही माँ से पैदा हुए...दोनों पुत्र समान शिक्षण पाए होने पर भी जो भेद पड़ता है, उसका कारण कर्म ही है ।

पुण्य कर्म के उदय से जीव को सुख की प्राप्ति होती है । पाप कर्म के उदय से जीव को दु:ख की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न : वर्तमान में एक जीव पाप-कर्म, चोरी आदि करता दिखाई देता है, फिर भी वह सुखी दिखाई देता है और एक आदमी खूब धर्म करता दिखाई देता है, फिर भी वह दु:खी होता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर : आत्मा अपने जीवन में जिस सुख-दु:ख का अनुभव करती है, वह मात्र इसी जन्म के पुण्य-पाप कर्म का फल नहीं है । गत जन्म के पुण्य कर्म का उदय हो तो उसके फलस्वरूप इस जीवन में पाप करने पर भी सुख

की प्राप्ति हो सकती है और गत जन्म के पाप कर्म का उदय हो तो इस जन्म में पुण्य करने पर भी दु:ख का अनुभव हो सकता है ।

जैसे पहले दिन खाने में गलती की हो तो दूसरे दिन भी उसकी पीडा हो सकती है । बस, इसी प्रकार गत भव के पुण्य-पाप की सजा इस जीवन में हो सकती है ।

प्रश्न : क्या ईश्वर सुख दु:ख देनेवाले नहीं हैं ?

उत्तर : यदि संसारी जीवों के सुख-दु:ख के कर्ता के रूप में ईश्वर को मान लिया जाय तो प्रश्न यह खड़ा होगा कि ईश्वर तो दयालु हैं, वह संसार में किसी जीव को दु:खी क्यों बनाएगा ?

ईश्वर ही सुख-दु:ख देता हो तो वह सबको सुखी क्यों नहीं करता !

यदि ईश्वर भी जीवों के अपने अपने कर्म के अनुसार सुख-दु:ख देता हो तो आखिर तो यही सिद्ध हुआ न कि जीव को अपने ही कर्म के अनुसार सुख-दु:ख मिलते हैं, तो फिर सुख-दु:ख देने में ईश्वर को बीच में लाने की जरूरत ही क्या ? यदि जीवात्मा को अपने-अपने कर्म के अनुसार सुख-दु:ख देता हो तो वह सर्व शक्तिमान् ईश्वर जीवों को दुष्कर्म करने से ही क्यों नहीं रोकता है ?

पहले जीवों को दुष्कर्म करने दे और फिर उन्हें सजा करे । इससे तो बेहतर है कि उन्हें दुष्कर्म करने से ही रोक दे ।

इससे सिद्ध होता है कि जीवात्मा को सुख-दु:ख की प्राप्ति अपने किए हुए कर्मों के अनुसार होती है ।

प्रश्न : आत्मा पर लगे कर्म दिखते नहीं हैं फिर उन्हें कैसे माना जाय ?

उत्तर : अपने चर्म चक्षुओं द्वारा आत्मा पर लगे हुए कर्मों को देख नहीं पाते हैं, परंतु केवलज्ञानी परमात्मा तो आत्मा पर लगे कर्म परमाणुओं को प्रत्यक्ष देख पाते हैं । अत: हमारे लिए चर्म चक्षु से कर्म को देखना संभव नहीं है, परंतु वीतराग परमात्मा को तो प्रत्यक्ष है ।

अपनी आँख में देखने की शक्ति मर्यादित है ।

1) अति निकट रही वस्तु को भी आँख नहीं देख पाती है । काजल आंख में ही लगा है परंतु आँख नहीं देख पाती है ।

2) अति दूर रही वस्तु भी दिखाई नहीं देती है । 1-2 कि.मी. दूर खडा व्यक्ति हमें कहाँ दिखता है ?

3) बहुत छोटी वस्तु भी दिखाई नहीं देती है ।

4) मन कहीं अन्यत्र भटक रहा हो तो भी ख्याल नहीं रहता है । मंदिर में दर्शन करके आए व्यक्ति को पूछा कि **'प्रभुजी को मुकुट था या नहीं ? वह जवाब देता है....यह तो मुझे पता नहीं ।'** इसका अर्थ है प्रभु के दर्शन किए परंतु मन वहाँ नहीं था ।

5) थोड़ी सी दूरी पर रहे कान भी हमें दिखाई नहीं देते हैं । आँख और कान के बीच थोड़ा सा अंतर है, फिर भी आँख को कान दिखते नहीं हैं ।

6) आँख कमजोर हो तो भी नहीं दिखता है । कई लोग चश्मा लगाए बिना कुछ भी नहीं पढ़ पाते हैं ।

7) ढकी हुई वस्तु (जैसे टोकरी में रहे आम) भी दिखाई नहीं देती है ।

8) सूर्य के तेज में आकाश में रहे तारे दिखाई नहीं देते हैं ।

9) मूंग के ढेर में गेहूँ के 2-4 दाने हों तो दिखाई नहीं देते हैं ।

10) प्रक्रिया किए बिना दिखाई नहीं देता है जैसे दूध में रहा घी ।

11) दूध में पानी मिला हुआ हो तो भी पानी अलग से दिखाई नहीं देता है ।

इसी प्रकार कर्म का अस्तित्व होने पर भी वे कर्म परमाणु आँख से दिखाई नहीं देते हैं ।

कई बार कार्य को देखकर भी उसके कारण का अनुमान किया जाता है ।

जैसे नदी में आई बाढ़ को देखकर अनुमान करते हैं कि आगे ज्यादा वर्षा हुई है ।

बस, इसी प्रकार वर्तमान जीवन में आनेवाले सुख-दुःख के आधार पर अनुमान करते हैं कि पूर्व भव में पुण्य कर्म या पाप कर्म किया होगा ।

किसी भी कार्य की उत्पत्ति में दो प्रकार के कारण होते हैं 1) उपादान कारण और 2) निमित्त कारण ।

जो कारण स्वयं कार्य रूप में परिणत होते हैं; उन्हें उपादान कारण कहा जाता है । जैसे-लकड़ी में से टेबल बनता है तो लकड़ी टेबल का उपादान कारण है ।

2) जो कारण कार्य की उत्पत्ति के बाद स्वयं दूर हो जाय, उसे निमित्त कारण कहा जाता है ।

जैसे-मिट्टी में से घड़ा बनाने के बाद कुंभार उस मिट्टी से अलग हो जाता है ।

राग-द्वेष के अध्यवसायों द्वारा आत्मा शुभ-अशुभ कर्म का बँध करती है और उस कर्म के उदय से आत्मा सुख-दुःख प्राप्त करती है ।

अतः सुख दुःख की प्राप्ति में आत्मा के अध्यवसाय अर्थात् भावकर्म, उपादान कारण है और उन अध्यवसायों से जिन कर्म परमाणुओं का बंध होता है, वे द्रव्य कर्म है ।

कर्म का बंध, शरीर को नहीं, बल्कि आत्मा को ही होता है, इसी कारण एक गति से दूसरी गति में जाने के बाद भी वे कर्म आत्मा के साथ चलते हैं ।

दोष का पक्षपात

दोष से भी दोष का पक्षपात ज्यादा भयंकर है । दोष-सेवन के बाद जिसके दिल में तीव्र पश्चात्ताप का भाव पैदा हो जाता है, वह भी भव सागर से पार उतर जाता है ।
दोष का त्याग न कर सके तो कम से कम
दोष का पक्षपात तो कदापि नहीं होना चाहिए ।

5 जैन धर्म के अकाट्य सिद्धांत

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्माओं ने केवलज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरूप को जानकर, जगत् के जीवों के हित के लिए जगत् के यथार्थ स्वरूप का निरूपण किया है। वे परमात्मा वीतराग होने के कारण उन्हें किसी प्रकार का कदाग्रह नहीं था और सर्वज्ञ होने के कारण उन्होंने जो कुछ कहा, वह सत्य ही कहा है।

वर्षो पूर्व सर्वज्ञ-कथित जिनवचनों को संदेह की नजर से देखा जाता था, आज वैज्ञानिक शोधों के आधार पर उन्हीं सत्यों को सहर्ष स्वीकार किया जा रहा है।

नैयायिक दर्शन **'शब्द'** को आकाश का गुण मानता है और विज्ञान **'शब्द'** ध्वनि को शक्ति रूप मानता था, परंतु जैन दर्शन शब्द को **'पुद्गल'** स्वरूप ही कहता था। आज रेडियो, टेलीफोन, टेपरिकार्डर आदि शोधों से जैन दर्शन में निर्दिष्ट यह बात स्वतः सिद्ध हो गई है।

भिद्यमान अणुओं के ध्वनिरूप परिणाम को शब्द कहा जाता है। ध्वनि के ये पुद्गल-स्कंध इतने अधिक सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें आँखों से देखा नहीं जा सकता है, परंतु उसके कार्य से उसके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।

शब्द रूप पुद्गल स्कंधों को दूसरे पदार्थ पर संस्कारित भी कर सकते हैं, इसी कारण ग्रामोफोन द्वारा उन संस्कारित शब्दों को वापस सुन सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्यकारी इन्द्रिय है। निर्वृत्ति-इन्द्रिय में प्रविष्ट शब्द को ही हम सुन सकते है। श्रोत्रेन्द्रिय की ग्राह्य शक्ति 12 योजन की है। 12 योजन से अधिक दूरी पर रहे शब्द पुद्गल तथा स्वभाव से ही मंद परिणाम वाले हो जाते हैं, इस कारण वे शब्द, ज्ञान को उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय की भी अपनी मर्यादित शक्ति है, इस कारण 12 योजन से अधिक

दूरी से आए शब्द को हम सुन नहीं सकते हैं । हाँ ! साधन के माध्यम से दूर रहे शब्दों को भी सुना जा सकता है ।

'शब्द पुद्‌गल स्वरूप हैं, अतः जोर से बोले गए शब्द कुछ ही समय में 14 राजलोक में फैल सकते हैं ।

जिस प्रकार समुद्र में उठती एक तरंग, नई तरंग को पैदा करती है, उसी प्रकार शब्द के पुद्‌गल भी दूसरे पुद्‌गलों को वासित करते जाते हैं ।

इन्द्र की आज्ञा से हरिणैगमेषी देव सुघोषा घंट बजाता है और उस सुघोषा घंट के शब्द असंख्य योजन दूर रहे अन्य-अन्य देवलोक में रहे घंट में उतर जाते हैं और वे घंट भी स्वयं बजने लग जाते हैं । उस घंट की ध्वनि के आधार पर परमात्मा के जन्म आदि कल्याणक की सूचना वहाँ रहे देवी-देवताओं को मिल जाती है ।

इससे यह स्पष्ट है कि दूर रहे शब्दों को भी यंत्र द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय-ग्राह्य बनाया जा सकता है ।

विज्ञान के अनुसार शब्द की गति 1 सेकंड में 1100 फूट है, फिर भी रेडियो द्वारा दूर रहे शब्द को तत्काल सुन सकते हैं, उसका कारण यह बताते हैं कि रेडियो स्टेशन पर से ध्वनि तरंगों को विद्युत् चुंबकीय तरंगों में रूपांतरित किया जाता है, इस कारण उसकी गति 1 सेकंड में 1,86,000 मील की हो जाती है, अतः वे शब्द तत्क्षण चारों ओर फैल जाते हैं तथा रेडियो आदि द्वारा वह विद्युत्-प्रवाह पुनः शब्द तरंगों में रूपांतरित हो जाने से वे शब्द हमें तत्क्षण सुनाई पड़ते हैं ।

जैन दर्शन के अनुसार चौदह राजलोक में भाषा वर्गणा के पुद्‌गल रहे हुए हैं । जब कोई बोलना चाहता है, तब (पर्याप्त नाम कर्म के उदय से भाषा पर्याप्ति द्वारा) आत्म-शक्ति द्वारा भाषा वर्गणा के पुद्‌गलों को ग्रहणकर उन्हें भाषा रूप में परिणत करता है, फिर उन शब्दों को बोलता है ।

यद्यपि शब्द के पुद्‌गलों में भी रूप, रस, गंध आदि होते हैं, परंतु वे इतने अधिक सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर पाती हैं । फिर भी

उन शब्दों के स्पर्श का अनुभव तो होता ही है । परंतु उसके स्पर्श का स्पष्ट बोध श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ही होता है ।

अति जोर की ध्वनि से कान के पर्दे फट जाते हैं, सिरदर्द होने लगता है ।

श्रोत्रेन्द्रिय रहित प्राणियों को भी शब्द के स्पर्श का अनुभव होता है ।

◆ तीड पक्षी के कान नहीं होने पर भी (चउरिन्द्रिय पक्षी) ढोल के तीव्र शब्दों से अपने शरीर पर हो रहे प्रहार का अनुभव करता है । इस कारण खेत में रहे तीड़ों को ध्वनि द्वारा दूर किया जाता था ।

◆ जैन इतिहास में कालिकाचार्य की बहिन सरस्वती साध्वी का अपहरण करनेवाले गर्दभिल्ल राजा के पास रही गर्दभी विद्या की बात आती है । उस विद्या के बल से गधे के मुख की ध्वनि सुनने वाला तत्काल मर जाता था ।

आज वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा ध्वनि द्वारा शत्रुसेना के संहार के प्रयोग, सिद्ध किए जा रहे हैं ।

अमेरिका में यह प्रयोग किया गया कि ध्वनिकारक किरणों से पशुओं के स्नायुओं के टुकड़े किए जा सकते हैं और शरीर में 140 तापमान पैदा किया जा सकता है ।

अमेरिकन वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है कि 1 सेकंड में 10 लाख कंपन वाली ध्वनि से हीरे के टुकड़े किए जा सकते हैं ।

जिस प्रकार तालाब में पत्थर फेंकने से अनेक तरंगें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार हम जब बोलते हैं, तब हवा में तरंगें पैदा होती हैं । आवाज की ये तरंगें 1 सेकंड में 20 से 20,000 बार तक कंपित हो सकती हैं । इतने कंपन को हमारे कान सुन सकते हैं । इससे अधिक कंपन होने पर वे शब्द हमारे कान के लिए अश्राव्य बन जाते हैं ।

इस अश्राव्य ध्वनि तरंगों से मूत्राशय में रही पथरी को तोड़ा जा सकता है ।

प्रश्न : ध्वनि तरंगे दिखाई नहीं देती हैं तो फिर प्राणियों के शरीर में प्रवेशकर हानिकारक कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर : अणुबम के स्फोट से युरेनियम व प्लुटोनियम धातुओं के अणुओं का स्फोट होने से उसमें से किरणोत्सर्ग होता है, उस किरणोत्सर्ग का शरीर में प्रवेश होने के साथ ही शरीर के कोशों का विसर्जन होने लगता है, जिससे तत्क्षण व्यक्ति की मौत हो जाती है। ध्वनि तरंगों के स्पर्श से भयंकर नुकसान की तरह लाभ भी होता है।

वनस्पति पर ध्वनितरंगों का अच्छा प्रभाव गिरता है। ध्वनि के स्पर्श से वृक्ष फलने-फूलने लगते हैं।

केनेडा में गेहूँ के खेतों में सूर्योदय समय लाउड स्पीकर द्वारा संगीत छेडा गया, उस संगीत से वे पौधे शीघ्र विकसित हुए।

अन्नामलाई युनिवर्सिटी में कुछ वृक्ष-पौधों को प्रतिदिन सुबह-शाम वायोलिन व सितार का संगीत सुनाया गया व कुछ पौधों को ऐसे ही रखा गया। जिन पौधों को संगीत सुनाया गया वे पौधे अधिक विकसित होते दिखाई दिए।

अश्राव्य ध्वनि द्वारा नींबू के वृक्ष के असाध्य रोग को दूर किया गया।

मनुष्य शरीर में रहे कई रोगों को ध्वनि द्वारा दूर किया जा सकता है।

अमेरिका में ई.स. 1950 में अल्ट्रासोनिक ध्वनि द्वारा डॉ. एल्डस ने 3000 दर्दियों का इलाज किया था।

53 वर्षीय एक वृद्धा का हाथ आर्थराइटीस से पीड़ित था, परंतु अल्ट्रासोनिक द्वारा उसके दर्द को मिटा दिया गया।

जैन दर्शन शब्द की भाँति अंधकार को भी पुद्‌गल स्वरूप मानता है। कहा है-

'कृष्णवर्णबहुलः पुद्‌गलपरिणामविशेषः तमः' अर्थात् श्याम रंग की जिसमें बहुलता-प्रधानता है, ऐसे पुद्‌गल के परिणाम विशेष को ही अंधकार कहते हैं।

अंधकार, प्रकाश का प्रतिपक्षी है। अंधकार में वस्तुएँ दिखती नहीं हैं, क्योंकि वे वस्तुएँ अंधकार के पुद्गलों से आच्छादित हो जाती हैं।

सूर्य, अग्नि व दीपक आदि की किरणें जब वस्तु पर गिरती हैं, तब अंधकार के पुद्गल उस वस्तु को ढकने में असमर्थ हो जाते हैं, अतः प्रकाश में वस्तुएँ स्पष्ट दिखती हैं।

विज्ञान भी कहता है-`अंधकार में भी ताप किरणें होती हैं, परंतु वे इतने अधिक सूक्ष्म होते हैं कि हमारी आँखें उन्हें पकड नहीं पाती हैं, जबकि उल्लू व बिल्ली की आँखें व फोटोग्राफी प्लेटस् उन ताप किरणों को पकड़ लेती हैं।

प्रकाश व अंधकार की तरह छाया या प्रतिबिंब भी पुद्गल स्वरूप है। छाया शीतस्पर्शी होती है। गर्मी के दिनों में वृक्ष की छाया के नीचे हमें शीतलता का अनुभव होता है।

जैन दर्शन की मान्यतानुसार बादर परिणामी पुद्गल-स्कंधों में से प्रति समय जल के फव्वारे की तरह आठस्पर्शी पुद्गल स्कंध बाहर निकलते रहते हैं और नए आते रहते हैं। पुद्गलों का चय-अपचय (आवागमन) चालू रहता है। यह आवागमन इतना अधिक सूक्ष्म होता है कि अपनी आँखों द्वारा हम उन्हें देख नहीं सकते हैं।

फिर भी वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा जब वे छाया-पुद्गल पिंडीभूत हो जाते हैं, तब उन्हें अपनी आँखों द्वारा देख सकते हैं। टी.वी. पर आनेवाले चित्रों से यह बात सिद्ध हो जाती है।

प्रत्येक पदार्थ व प्राणी के शरीर में से पुद्गल स्कंध का समूह बहता रहता है, जो विविध गुण धर्मवाला होता है। नीम जैसे कुछ वृक्षों से निकलने वाले पुद्गल स्कंध रोगी व्यक्ति को भी स्वस्थ बना देते हैं, जबकि इमली के वृक्ष में से निकलनेवाला पुद्गल समूह स्वस्थ व्यक्ति को भी रोगी बना देता है।

आयुर्वेद में कुछ रोगों को छूत की बीमारी कहा जाता है। रोगी व्यक्ति के शरीर में से निकलने वाला द्रव्य, स्वस्थ व्यक्ति को भी बीमार कर देता है।

महापुरुषों के शरीर में से बहनेवाला सूक्ष्म द्रव्य हमारे जीवन में भी सत्त्व गुण पैदा करता है ।

चंदन, तुलसी, बड़, पीपल आदि वृक्ष आरोग्य के लिए लाभकारी माने गए हैं, उसका भी मुख्य कारण उन वृक्षों में से निकलनेवाला सूक्ष्म द्रव्य ही है ।

तीर्थंकरों के जन्म, निर्वाण कल्याणक आदि भूमियों की स्पर्शना से हमें आत्म-संतोष का अनुभव होता है उसका भी मुख्य कारण यही है ।

जहाँ जहाँ महापुरुष विचरते हैं, उनके शरीर में से बहती आभा सूक्ष्म रूप में पिंडित हो जाती है । पुद्‌गलों का यह स्वभाव है कि वे एक ही स्थान में अधिकतम असंख्य वर्षो तक उसी स्वरूप में रह सकते हैं । अतः उस स्थान में आनेवाले व्यक्तियों के मन पर उन पुद्‌गलों का अवश्य प्रभाव पड़ता है ।

जैन दर्शन में ब्रह्मचर्य के सूक्ष्म पालन के लिए, स्त्री जहाँ बैठी हो, उस स्थान पर पुरुष को 48 मिनिट तक नहीं बैठने का विधान है, उसके पीछे भी यही रहस्य है ।

आज वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि व्यक्ति के चले जाने के बाद भी व्यक्ति का फोटो लिया जा सकता है ।

डॉक्टर भी एक दर्दी का ऑपरेशन आदि करने के बाद दूसरे दर्दी का स्पर्श करने के पूर्व अपने हाथ आदि धो डालता है, इसका भी यही रहस्य है कि प्रत्येक मानवी के शरीर में से प्रतिक्षण पुद्‌गल स्कंध बहते रहते हैं, जो मानवी पर शुभ-अशुभ असर पहुँचाते हैं ।

मृतदेह के स्पर्श व रजस्वला स्त्री के स्पर्श बाद स्नान करने के पीछे भी यही रहस्य है ।

ईसा की सातवीं शताब्दी में दक्षिणी जैन मुनि 'श्री कुमेन्दुरचित' **'भूवलय'** नाम का ग्रंथ है, वह एक ही ग्रंथ 718 भाषाओं में पढ़ा जा सकता है । उसमें अनेक विद्या, शास्त्र व विज्ञान का समावेश किया गया है ।

6 देहभिन्न आत्मा

वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा महावीर प्रभु ने अपने केवलज्ञान के द्वारा जगत् के स्वरूप का यथार्थ दर्शन कर, सिर्फ जगत् के जीवों के हित के लिए उसका यथार्थ निरूपण किया है ।

जो वीतराग होता है, उसे न तो किसी के प्रति राग होता है, न किसी के प्रति द्वेष । वीतराग होने के नाते उन्हें झूठ बोलने का कोई प्रयोजन भी नहीं है ।

वे वीतराग परमात्मा, सर्वज्ञ भी हैं, वे अपने ज्ञान के द्वारा जगत् के समस्त पदार्थों के समस्त भावों / पर्यायों को जानते हैं ।

ऐसे तीर्थंकर परमात्मा का वचन, उपदेश हमारे लिए श्रद्धा करने योग्य है और पालन करने योग्य है । उनके बताए हुए मार्ग पर चलने से हमारी आत्मा का भी कल्याण हो सकता है ।

तीर्थंकर परमात्मा ने आत्मा के षट्स्थान बतलाए हैं–

1. आत्मा है ।
2. आत्मा परिणामी नित्य है ।
3. आत्मा कर्म की कर्ता है ।
4. आत्मा कर्म की भोक्ता है ।
5. आत्मा का मोक्ष है ।
6. मोक्ष का उपाय है ।

आत्मा का स्वरूप

यह संसार मुख्यतया दो तत्त्वों से बना है-

1) चेतन और 2) जड़ ।

चेतन कहो, आत्मा कहो, जीव कहो, सब एक ही हैं, ये सब आत्मा के पर्यायवाची नाम ही हैं ।

आत्मा देह, इन्द्रिय, मन आदि से भिन्न स्वतंत्र पदार्थ है ।

कई अज्ञानी लोग देह को ही आत्मा मान लेते हैं । परन्तु देह तो भोग्य है और आत्मा भोक्ता है ।

• हम देह के लिए **'मेरा देह'** शब्द का प्रयोग करते है । कोई भी व्यक्ति **'मैं देह'** ऐसा शब्दप्रयोग नहीं करता है ।

'मेरा' शब्द संबंध वाचक है । जब किसी वस्तु के साथ अपना स्वामित्वसंबंध होता है, तब उस वस्तु के लिए **'मेरा / मेरी'** शब्द का प्रयोग करते हैं । मेरा घर, मेरा पंखा, मेरी घड़ी, मेरी पेन ।

'मेरा घर' जब हम इस शब्द का प्रयोग करते हैं, तब यह बात स्पष्ट होती है कि **'मैं'** और **'घर'** दोनों भिन्न हैं । बस, इसी प्रकार जब हम अपने शरीर के लिए **'मेरा शरीर'** शब्द का प्रयोग करते हैं, तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि **'मैं'** और **'शरीर'** भिन्न हैं । शरीर के साथ स्वामित्व का संबंध होने के कारण ही हम **'मेरा शरीर'** शब्द का प्रयोग करते हैं । इससे स्पष्ट है कि **'मैं'** शरीर से भिन्न हूँ और वही **'मैं'** आत्मा है ।

विज्ञान भी इस बात को सिद्ध कर चुका है कि अपना शरीर परिवर्तनशील है । कुछ ही दिनों में अपने शरीर की चमड़ी बदलती रहती है ।

• बाल्यवय को पूर्ण कर जब व्यक्ति युवावस्था प्राप्त करता है, तब उसका शरीर आमूलचूल बदला हुआ होता है, फिर भी आश्चर्य है कि बालवय के शरीर के साथ बनी घटनाएँ हमें युवावस्था में भी याद रहती हैं, इसका कारण कौन ?

इसका कारण आत्मा ही है । एक ही जीवन में अपने शरीर की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, जब कि आत्मा तो वह का वह होती है । इसी कारण बचपन में बनी हुई घटनाएँ हमें यौवनवय में और यौवनवय में बनी हुई घटनाएँ वृद्धावस्था में भी याद रह जाती है । और वह याद रखने वाला जो तत्त्व है-वही आत्मा है ।

• जब हम कहते हैं कि **'अमुक व्यक्ति मर गया'**-वह न खाता है, न पीता है, न रोता है, न जागता है, न बैठता है, न चलता है । उसके शरीर की समस्त क्रियाएँ बंद हो गईं । इसका अर्थ यही है कि उसके देह में से, जो

'**आत्मा**' नामक तत्त्व था, वह चला गया । जब तक उस देह में आत्मा थी, तभी तक वह देह खाता था, पीता था, चलता था' परन्तु उस देह में से आत्मा निकल जाने के बाद वे सब क्रियाएँ बंद हो गईं । इसका अर्थ है कि आत्मा इस देह से भिन्न है और उस आत्मा की शक्ति के कारण ही यह शरीर और ये इन्द्रियाँ काम कर सकती हैं ।

• लोक भाषा में हम कहते हैं कि मैं आँख से देखता हूँ, कान से सुनता हूँ, जीभ से बोलता हूँ, नाक से सूंघता हूँ, परन्तु सचमुच तो हम आँख से नहीं, किंतु आत्मा की शक्ति से ही देख सकते हैं, सुन सकते हैं और सूंघ सकते है । इससे स्पष्ट है कि आत्मा, शरीर से भिन्न है ।

• जब तक मनुष्य जीवित होता है अर्थात् उसके शरीर में आत्मा होती है, तब तक इस शरीर के पास हम बैठ सकते हैं, परंतु जब आत्मा, इस शरीर को छोड़कर चली जाती है, अर्थात् मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, उसके बाद उसके शरीर में दुर्गंध पैदा होने लगती है और उस मुर्दे शरीर के पास कोई बैठने के लिए तैयार नहीं रहता है । इससे स्पष्ट है कि इस शरीर को स्वस्थ, गतिशील और अत्यंत दुर्गंध से रहित रखने में भी आत्मा ही कारण है और वह आत्मा इस शरीर से भिन्न है ।

• जगत् में जो चीज विद्यमान हो उसी का किसी स्थल विशेष की अपेक्षा से निषेध किया जाता है । '**मृत देह में आत्मा नहीं है**' इस प्रकार के वाक्य से सिद्ध होता है कि अन्यत्र आत्मा है ।

• जंगल आदि में सर्प होने पर ही '**घर में साँप नहीं है**' इस प्रकार का निषेध कर सकते हैं । यदि जगत् में सर्प का अस्तित्व ही न हो तो घर आदि में उसका निषेध नहीं किया जाता । गधे के सींग का अभाव सर्वत्र होने से कोई यह नहीं कहता है कि '**मेरे गधे के सींग नहीं हैं ।**'

• अब कोई प्रश्न कर सकता है कि '**आत्मा**' नाम की कोई वस्तु हो तो वह दिखाई क्यों नहीं देती है ?

इसका जवाब यही है कि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ होने से उसे किसी भी इन्द्रिय के द्वारा जाना या देखा नहीं जा सकता है ।

◆ एक बार डॉ. राधाकृष्णन् आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में अध्यात्मवाद

के विषय में प्रवचन कर रहे थे । तभी किसी विद्यार्थी ने प्रश्न किया-Sir, you are often talking about soul, please show me your soul (आप हमेशा आत्मा के विषय में बातें करते रहते हो तो कृपया आप अपनी आत्मा हमें बताएँ)

डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा-Only talented can see soul जो बुद्धिमान् है, वही आत्मा को देख सकता है, जो बुद्धिमान् हो वह आगे आ जाय ।'

उसी समय एक विद्यार्थी टेबल के पास आ गया ।

डॉ. राधाकृष्णन् ने उसे कहा-**तुम अपनी बुद्धि टेबल के बायीं ओर रख दो, मैं अपनी आत्मा टेबल के दायीं ओर रख देता हूँ ।'**

शर्म के मारे वह विद्यार्थी नतमस्तक हो गया ।

हर बुद्धिमान व्यक्ति बुद्धि का अनुभव करता है, फिर भी उसे बाहर बताया नहीं जा सकता । बस, इसी प्रकार इस देह में आत्मा का अस्तित्व होने पर भी उसे बाहर बताया नहीं जा सकता है ।

दुनिया में ऐसी बहुत सी चीजें हैं, बहुत से ऐसे संवेदन हैं, जिन्हें हम अनुभव करते हुए भी वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते हैं ।

◆ मूक व्यक्ति गुलाब-जामुन के स्वाद का मजा ले सकता है परन्तु उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता ।

◆ किसी स्वजन की मृत्यु की पीड़ा से होने वाले आघात का अनुभव होने पर भी उस पीड़ा की अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा नहीं हो सकती है ।

◆ रोड़पति / भिखारी को अचानक करोड़ रुपये मिल जायें तो उसे जिस आनंद का अनुभव होता है, उसे वह शब्दों द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर पाता है ।

◆ काष्ठ में अग्नि, घास में दूध, दूध में घी का अस्तित्व होने पर भी वह हमें दिखाई नहीं देता है, इतने मात्र से उसके अस्तित्व का हम निषेध नहीं कर सकते ।

◆ तार Wire में विद्युत् प्रवाह Electricity बहते हुए भी हम उसे अपनी आँखों से देख नहीं सकते, परंतु इतने मात्र से हम उसके अस्तित्व का अस्वीकार नहीं कर सकते ।

◆ वृक्ष का मूल और बहता हुआ पवन हमें दिखाई नहीं देता है, फिर भी हम उसके अस्तित्व का निषेध नहीं करते ।

◆ दूर से तेजी से आ रही गाडी Motor-Car आदि में ड्राइवर Driver दिखाई नहीं देता है, परंतु इतने मात्र से ड्राइवर का निषेध नहीं किया जाता है।

◆ अत्यंत दूर रही वस्तु को, आँख के अत्यंत समीप रही वस्तु को तथा अत्यंत सूक्ष्म वस्तु को हम अपनी आँख द्वारा नहीं देख पाते हैं, इतने मात्र से उन वस्तुओं के अस्तित्व का इन्कार नहीं कर सकते।

◆ अपना मन विक्षिप्त हो अथवा अन्यत्र हो तो पास में पड़ी रही वस्तु भी हमें दिखाई नहीं देती है, परंतु इतने मात्र से उस वस्तु का निषेध नहीं कर सकते।

आत्मा अरूपी पदार्थ होने से उसे किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण नहीं कर सकते।

◆ आँख रूप को देख सकती है।
◆ कान शब्द को पकड़ सकता है।
◆ नाक गंध को ग्रहण कर सकता है।
◆ जीभ स्वाद को पहचान सकती है।
◆ त्वचा स्पर्श को जान सकती है।

◆ आत्मा का कोई रूप नहीं है।
◆ आत्मा में कोई शब्द नहीं है।
◆ आत्मा में कोई गंध नहीं है।
◆ आत्मा में कोई रस नहीं है।
◆ आत्मा में कोई स्पर्श नहीं है।

आत्मा में शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श का सर्वथा अभाव होने से उसे किसी भी इन्द्रिय के द्वारा जाना / पहिचाना नहीं जा सकता।

जैसे शरीर में होनेवाली सिरदर्द आदि पीड़ा को न तो आँख से देख सकते हैं, न कान से सुन सकते हैं, न नाक से सूँघ सकते हैं, न जीभ से चख सकते हैं और न ही हाथ से स्पर्श कर सकते हैं, फिर भी हम उस पीड़ा का स्वीकार करते ही हैं, उसी प्रकार शरीर में रही आत्मा का किसी भी इन्द्रिय द्वारा ज्ञान नहीं होने पर भी उसे अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है।

आत्मा का स्वरूप और लक्षण

किसी भी वस्तु की पहचान जिससे होती है उसे लक्षण कहते है ।

तत्त्वार्थ सूत्र में आत्मा का लक्षण बताते हुए कहा है- **'उपयोगो लक्षणम्'** अर्थात् उपयोग यह आत्मा का लक्षण है । यह उपयोग दो प्रकार का होता है-

1) सामान्य उपयोग 2) विशेष उपयोग ।

सामान्य उपयोग को दर्शनोपयोग कहते हैं । विशेष उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं ।

- वस्तु का सामान्य-बोध दर्शन कहलाता है ।
- वस्तु का विशेष-बोध, ज्ञान कहलाता है ।

आत्मा में ही ज्ञान शक्ति रही हुई है । जड़ पदार्थ को कभी भी ज्ञान नहीं होता है । प्रेम, स्नेह, राग-द्वेष आदि आत्मा ही कर सकती है । सुख-दु:ख का संवेदन आत्मा में ही होता है-जड़-पदार्थों में नहीं ।

हर आत्मा में कुछ-न-कुछ ज्ञान/संवेदन शक्ति अवश्य होती है । यदि आत्मा में ज्ञान/संवेदन का सर्वथा अभाव हो जाय तो आत्मा और जड़ पदार्थ में कोई अंतर ही प्रतीत नहीं होगा ।

हमारे चित्त का उपयोग / ध्यान जिस ओर होता है, उसके सिवाय के अनेक पदार्थ हमारे सामने होने पर भी हमें उन पदार्थों का बोध नहीं होता है ।

जिस प्रकार टोर्च Torch का प्रकाश एक ही दिशा / क्षेत्र में केन्द्रित होता है, उसके आसपास के क्षेत्र में अंधेरा होता है, उसी प्रकार हमारे चित्त का उपयोग जिस पदार्थ विषयक होता है, उसी का हमें बोध होता है, उसके सिवाय के पदार्थ का हमें ज्ञान नहीं हो पाता है ।

ज्ञान आत्मा का स्वरूप है । जहाँ जहाँ ज्ञान है, वहाँ वहाँ आत्मा है । जहाँ आत्मा है, वहाँ कुछ-न-कुछ ज्ञान होगा ही । प्रत्येक प्राणी चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी या सूक्ष्म कीट-पंतग या वनस्पति, उन सब में कुछ-न-कुछ ज्ञान अवश्य रहा होता है ।

मनुष्य, पशु-पक्षी आदि में तो ज्ञान के संवेदनादि का हमें प्रत्यक्ष

अनुभव है। वनस्पति आदि में भी सुख-दु:ख, स्नेह, द्वेष, वासना आदि के संस्कार होते हैं।

जैन आगमों में वनस्पति के विविध संवेदन / संज्ञाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। आज वे अनेक बातें वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध हो चुकी हैं।

डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि-`तुच्छ से तुच्छ वनस्पति में भी मज्जा तंतु होते हैं। सामान्य प्राणियों की भाँति उन पर भी बाहरी प्रभाव पड़ता है। सर्दी से सिकुड़ना, नशा, जहर आदि का प्रभाव जैसा अन्य प्राणियों पर होता है, ठीक वैसा ही उन पर भी होता है। अन्य प्राणियों की नाड़ियों जैसी धड़कन, रस-रक्त का आरोही-अवरोही प्रवाह, यहाँ तक कि मृत्यु भी वनस्पतियों की होती है।

◆ छुईमुई के पौधे के किसी भी अंग को यदि छुआ जाय तो वह भयभीत हो जाती है और अपनी सुरक्षा के लिए अपनी सारी पत्तियों को सिकोड़ लेती है।

◆ फ्रेंच वैज्ञानिक `कवि' (1828) अपनी **'प्राणी राज्य'** पुस्तक में लिखता है कि-`वनस्पति भी अपनी तरह सचेतन है। वे मिट्टी, हवा और पानी में से हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि तत्त्व लेती हैं और उसे अपने देह में पचाती हैं।

◆ वनस्पति अपनी जड़ों से मिट्टी-पानी का तो आहार ग्रहण करती ही हैं। कई वनस्पतियाँ, वनस्पतियों का भी आहार करती हैं। ये वनस्पतियाँ जिन वृक्षों पर उगती हैं, उनमें जड़ें धँसा कर उनका शोषण कर अपना भोजन बनाती है। अमरबेल इसी प्रकार की वनस्पति है।

◆ कई वनस्पतियाँ कीट-पतंग और मानव का भी आहार ग्रहण कर लेती हैं, उन्हें **'मांसाहारी वनस्पतियाँ'** कहते हैं।

◆ आस्ट्रेलिया के जंगल में ऐसी अनेक वनस्पतियाँ हैं, जो समीप आने वाले पशु व मानव का भी शिकार कर देती हैं।

◆ तस्मानिया के पश्चिमी वनों में **'होरिजिंटल स्क्रब'** नामक वृक्ष है, यह वृक्ष आगंतुक पशु-पक्षी व मनुष्य को अपने क्रूर पंजों का शिकार बना देता है।

◆ उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका आदि में **'युटी कुलेरियड'**

नामक कीट-भक्षी पौधा है । यह स्थिर जल में उगता है । इसकी पत्तियाँ सुई के आकार की होती हैं और पानी पर तैरती हैं । पत्तियों के बीच में गुब्बारे के समान फूले अंग होते हैं । यह पौधा इन्हीं गुब्बारों से कीड़ों को पकड़ता है ।

◆ अफ्रीका महाद्वीप तथा मेडागास्कर द्वीप के सघन जंगलों में कोई मानव-भक्षी वृक्ष भी मिलते हैं, जो मनुष्य और पशु को अपना शिकार बना देते हैं ।

◆ सूडान और वेस्ट इंडीज में एक ऐसा वृक्ष पाया जाता है, जिसमें दिन में अद्‌भुत प्रकार के संगीत के स्वर निकलते हैं और रात्रि में रुदन की आवाज आती है ।

◆ क्वींस और न्यू साऊथ वेल्स में एक ऐसा वृक्ष पाया जाता है जो पास आने वाले व्यक्ति को डंक मारता है । इस वृक्ष को Touch me not भी कहते हैं ।

◆ वनस्पति में भी अपने आहार की शोध के लिए किये गये प्रयत्न देखने को मिलते हैं । बबूल वृक्ष की जड़ें, पानी की शोध में पानी की दिशा में 50-60 फुट दूर चली जाती है ।

◆ श्वेतार्क वनस्पति लोभवाश अपनी जड़ों से धन को ढक देती है ।

आत्मा स्वभाव से निर्मल है

आत्मा अपने मूलभूत स्वभाव की अपेक्षा से तो निर्मल ही है, परन्तु अनादिकाल से उसके ऊपर कर्म का आवरण आया हुआ होने के कारण वह हमें विकृत स्वरूप में नजर आती है और इसी कर्म की विकृति के कारण उसे जन्म-मरण करना पड़ता है । परन्तु सत्प्रयत्नों के द्वारा हम अपनी उस मलिनता को दूर कर सकते हैं और अपने मौलिक शुद्ध-स्वभाव को प्राप्त कर सकते हैं ।

किसी भी वस्तु में जो स्वभाव सत्तागत न हो, वह कभी भी प्रगट नहीं हो सकता । जो गुण या स्वभाव सत्तागत हो, वही प्रगट होता है । उदाहरणतः खान में रहा हुआ सोना अनादि काल से विजातीय मिट्टी आदि तत्त्वों के संसर्ग के कारण एकदम मलिन दिखाई देता है । रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा खान में से निकले मलिन स्वर्ण में पुनः चमक-दमक आ जाती है । इस चमक-दमक

का कारण सोने का मूलभूत स्वभाव ही है । यदि सोने का वह स्वभाव नहीं होता तो हजार प्रयत्नों के बाद भी उसमें वह चमक नहीं आती । बस, इसी प्रकार आत्मा का मूलभूत स्वभाव शुद्ध होने के कारण ही प्रयत्न विशेष के द्वारा उस स्वभाव को प्रगट किया जा सकता है ।

आत्मा परिणामी नित्य है-

परिणामी अर्थात् परिवर्तनशील / बदलने वाला तथा नित्य अर्थात् जो हमेशा रहता हो । आत्मा का अस्तित्व अनादिकाल से है और अनंत काल तक रहने वाला है ।

आत्मा का अनादि-अनंत अस्तित्व होते हुए भी उसके पर्याय बदलते रहते हैं ।

जिस प्रकार सोने के मुकुट को तोड़कर उसका हार बनाने पर मुकुट का नाश होता है और हार की उत्पत्ति होती है, परंतु उन दोनों अवस्थाओं में भी स्वर्ण द्रव्य तो वैसे का वैसा ही बना रहता है । मुकुट को तोड़ने पर मुकुट का नाश होता है-स्वर्ण का नहीं । बस, इसी प्रकार जब आत्मा एक देह का त्याग कर (जिसे हम अपनी भाषा में मृत्यु कहते हैं) अन्य देह को धारण करती है, तब देह का विनाश होता है, आत्मा का नहीं । कर्म की पराधीनता / परतंत्रता के कारण आत्मा को जन्म धारण करना पड़ता है और मृत्यु की वेदना सहन करनी पड़ती है., आत्मा यदि कर्म के बंधन से मुक्त हो जाय तो उसे किसी भी प्रकार की जन्म-मरण की पीड़ा सहन करनी नहीं पड़ेगी । अतः जन्म-मरण की पीड़ा से बचने के लिए कर्म के बंधन को तोड़ने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

जब तक आत्मा कर्म से सर्वथा मुक्त नहीं बनती है, तब तक उसे एक गति से दूसरी गति में, एक देह से दूसरे देह में जन्म धारण करना पड़ता है ।

आज देश-विदेश में जातिस्मरण ज्ञान की अनेक घटनाएँ हमें जानने / पढ़ने को मिलती हैं, जो आत्मा की नित्यता को प्रत्यक्ष सिद्ध करती हैं ।

7

कर्म विज्ञान

इस विराट् विश्व की प्राणि-सृष्टि पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब अनेक विविधताओं और विचित्रताओं के दर्शन होते हैं। अन्य पशुसृष्टि तो दूर रही...मानव-सृष्टि पर भी जब नजर डालते हैं तो कहीं भी समानता नजर नहीं आती है बल्कि सर्वत्र विविधता के दर्शन होते हैं।

ठीक ही कहा है-

इधर एक दूल्हा घोड़े चढ़ा है,
उधर एक जनाजा उठा जा रहा है,
इधर वाह वाह है, उधर ठंडी आहें,
कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है।

इस संसार में एक व्यक्ति सत्ता के सिंहासन पर बैठा हुआ है। उसके एक आदेश के साथ ही अनेक नौकर इकट्ठे हो जाते हैं और उसके आदेश के साथ ही आज्ञापालन होता दिखाई देता है तो दूसरी ओर रास्ते में खड़ा एक भिखारी नजर आता है जो चारों ओर से तिरस्कार का पात्र बना होता है। दो टाइम का पूरा भोजन भी उसके नसीब में नहीं है। दर-दर भटकने पर भी, भीख माँगने पर भी भरपेट भोजन उसे नहीं मिल पा रहा है। अत्यंत दयनीय और करुण स्थिति में मौत की याचना करता हुआ वह अपना समय प्रसार कर रहा है।

• इधर देखो, वे मफतलाल सेठ खड़े हैं, उनके पास धन-संपत्ति की कोई कमी नहीं है। उनके एक ही लड़का है, वह लड़का दिखने में बड़ा सुन्दर है, परंतु उसके पास **'दिमाग'** नाम की कोई चीज नहीं है। उसके पास सोचने-समझने की कुछ भी शक्ति नहीं है। पुत्र होते हुए भी पुत्रहीन की भाँति मफतलाल सेठ की स्थिति है।

• पन्नालाल सेठ को अपने पुत्र से कई आशाएँ थीं...और इसी कारण अपने इकलौते पुत्र की शिक्षा के पीछे पानी की तरह धन बहा दिया था। लड़का पढ़ने में भी बहुत होशियार था...परंतु दुर्भाग्य से वह लड़का एक दिन

बड़े सरोवर में तैरने के लिए कूद पड़ा । पता नहीं क्या हुआ, कुछ घंटों के बाद उसकी लाश ही हाथ लगी । पन्नालाल सेठ के सारे मनोरथ मिट्टी में मिल गए । सिर पर हाथ देकर रोने के सिवाय उनके पास कोई चारा नहीं था ।

• सेठ मोहनलाल ने खूब धूमधाम के साथ अपनी इकलौती बेटी की शादी की । पुत्री के लग्न समारोह में उन्होंने पानी की तरह पैसा बहाया । उनके यही अरमान थे कि मेरी पुत्री ससुराल में सुखी रहेगी । परंतु उनके सारे अरमान दूसरे ही दिन धूल में मिल गए जब उन्होंने सुना कि उनके दामाद कार में अत्यंत घायल हो गए हैं और घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई है । मोहनलाल सेठ के दु:ख का पार न रहा । अपनी पुत्री के वैधव्य की पीड़ा को वे देख न सके और इसी आघात में उन्हें भी Heart Attack आ गया और वे भी इस दुनिया को छोड़कर चल बसे ।

• Heart Attack की तकलीफ होने से रमणलाल सेठ ने बॉय पास सर्जरी कराने का निश्चय किया । सेठ की उम्र 50 वर्ष के लगभग थी । उन्हें पूर्ण आशा थी कि कुशल डॉक्टर के पास उनका यह आपरेशन अवश्य सफल होगा...परंतु दुर्भाग्य से आपरेशन में थोड़ी सी भूल हो गई और रमणलाल सेठ ने सदा के लिए अपनी आँखें मूंद ली ।

• नेपोलियन बोनापार्ट अत्यंत बुद्धिशाली और साहसी था । वह कहता था कि मेरे शब्दकोश में **असंभव** नाम का शब्द नहीं है । Nothing is impossible for me. विश्वविजेता बनने का उसे स्वप्न था, परंतु वोर्टुल के युद्ध में उसे हार खानी पड़ी और सेंट हेलीनो टापू में उसे बेमौत मरना पड़ा ।

• Father की स्पेलिंग Spelling भी जिसे बराबर नहीं आती थी, वही बालक आगे चलकर भारत का **'राष्ट्रपिता' 'महात्मा गांधी'** बन गया ।

• बचपन में जो गणित की जोड़-बाकी भी करने में असमर्थ था-वह बालक आगे बढ़कर विश्व का सुप्रसिद्ध गणितज्ञ आईंस्टाइन बन गया ।

• कांतिलाल ने खून का पसीना कर कड़ी मेहनत के बाद दो लाख रुपये में नया मकान तैयार करवाया था । नए मकान में आवास करने के लिए वह कई स्वप्न संजोए हुए था...परन्तु उस मकान मे प्रवेश करने के पूर्व भूकंप

के झटके से वह नया मकान धराशायी हो गया। कांति के सारे स्वप्न मिट्टी में मिल गए। उसके दु:ख का पार न था, फिर भी जीवन बच जाने का उसे आनंद भी था।

• चिराग सबसे होशियार लड़का था, परंतु उसके देह में भयंकर रोग पैदा हो गया। चिराग को बचाने के लिए पिता ने भरसक प्रयत्न किये। पर बम्बई के बड़े-बड़े डॉक्टर भी चिराग को बचा नहीं पाए और विकसित कली की भाँति खिलती जवानी में ही चिराग का जीवन-दीप सदा के लिए बुझ गया।

उपर्युक्त और इनके जैसी अनेक घटनाओं का विहगावलोकन करने पर एक सीधा-साधा प्रश्न खड़ा होता है-इन समस्त घटनाओं का नियंता कौन है ?

लाख-लाख प्रयत्न करने के बाद भी व्यक्ति निष्फल क्यों हो जाता है ?

शायद कोई कह सकता है-'इन सब घटनाओं का प्रेरक बल ईश्वर नाम का तत्त्व है।'

परंतु विश्व के रंगमंच पर बनने वाली इन विचित्र घटनाओं के प्रेरक बल के रूप में किसी ईश्वर विशेष को मानना युक्तिसंगत नहीं है।

किसी नव विवाहिता कन्या के सौभाग्य सिंदूर को अचानक ही लूटने का काम क्या दयालु ईश्वर कर सकता है ? कदापि नहीं।

जो ईश्वर निरंजन-निराकार-दयालु और सर्वशक्तिमान कहलाता है- वह ईश्वर संसारी जीवों को इस प्रकार की विविध पीड़ाएँ क्यों देगा ?

वास्तव में देखा जाए तो संसार में रहे हुए जीवों की विचित्रताओं का कारण उनका अपना-अपना **'कर्म'** ही है। इस विराट् विश्व में पुद्‌गल-स्कंधों की मुख्य आठ वर्गणाएँ अनंत प्रमाण में रही हुई हैं।

पुद्‌गल द्रव्य की सबसे छोटी इकाई को परमाणु कहते हैं। इस जगत् में स्वतंत्र रूप से 1-1 परमाणु भी अनंत रहे हैं। उसके बाद दो-दो परमाणुओं के संयोग से बने हुए द्व्यणुक, तीन-तीन परमाणुओं के संयोग से बने हुए त्र्यणुक, चार-चार परमाणुओं के संयोग से बने हुए स्कंध भी अनंत हैं। इसी

प्रकार संख्य, असंख्य और अनंत परमाणुओं के संयोग से बने हुए स्कंध भी अनंत हैं ।

पुद्‌गलों की इन वर्गणाओं को औदारिक आदि आठ वर्गणाओं में विभाजित कर सकते हैं । इन सब वर्गणाओं में आठवीं कार्मण वर्गणा है । अनंत-अनंत कार्मण परमाणुओं के संयोग से बने हुए ये कार्मण-स्कंध चक्षु द्वारा देखे नहीं जा सकते हैं ।

जिस प्रकार लोह चुंबक अपने आसपास के क्षेत्र में रहे लोहकणों को अपनी ओर आकर्षित करता है । चुंबक में रही हुई चुंबकीय शक्ति के अनुपात में ही लोहकण आकर्षित होते हैं । यदि चुंबक में चुंबकीय शक्ति अल्प होगी तो वह लोहे के अल्प कणों को अपनी ओर आकर्षित करेगा और चुंबक में चुंबकीय शक्ति अधिक होगी तो वह अधिक प्रमाण में लोहकणों को अपनी ओर आकर्षित करेगा ।

इसी प्रकार इस चौदह राजलोक में सर्वत्र कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल स्कंध रहे हुए हैं । ये कार्मण वर्गणाएँ उसी आत्मा को चोंटती हैं, जो आत्मा राग-द्वेष करती है । जिस आत्मा में राग-द्वेष की स्निग्धता रही हुई है, उसी आत्मा की ओर ये कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल आकर्षित होते हैं ।

आत्मा के साथ जब ये कार्मण वर्गणाएँ चिपकती हैं, तब उनका नाम बदल जाता है । उसके बाद उन्हें **'कर्म'** कहा जाता है । बस, जगत् की समस्त विचित्रताओं का मुख्य आधार यह **'कर्म'** ही है । आत्मा के साथ लगे हुए कर्म जब उदय में आते हैं, तब ये ही कर्म आत्मा को सुख-दु:ख आदि प्रदान करते हैं ।

यद्यपि जैन दर्शन के अनुसार किसी भी घटना के बनने में कर्म के सिवाय काल, स्वभाव, भवितव्यता और पुरुषार्थ को भी कारण माना गया है । फिर भी जगत् की इस विचित्रता में कर्म को प्रधान कारण माना जा सकता है ।

इस जगत् में जितनी अनंतानंत आत्माएँ हैं, उन आत्माओं को मुख्यतया दो विभागों में बाँट सकते हैं-भव्य और अभव्य ।

भव्य आत्मा अर्थात् जिस आत्मा में मोक्षगमन की योग्यता है ।

अभव्य आत्मा अर्थात् जिसमें मोक्षगमन की योग्यता नहीं है ।

भव्य आत्माओं में भी कुछ **'जाति भव्य'** आत्माएँ हैं, जिनमें मोक्ष गमन की योग्यता का सद्भाव होने पर भी निमित्त कारण के अभाव में उन आत्माओं का कभी मोक्ष होने वाला नहीं है ।

जो आत्माएँ भविष्य में कभी भी मोक्ष में जाने वाली हैं, उन आत्माओं का कर्मबंध अनादि-सांत है, जबकि जो आत्माएँ भविष्य में कभी भी मोक्ष में जाने वाली नहीं हैं, उन आत्माओं का कर्मबंध, अनादि-अनंत है ।

आत्मा और कर्म का संयोग इस प्रकार का है कि उसे पुरुषार्थ द्वारा अलग किया जा सकता है ।

जिस प्रकार मलिन स्वर्ण आग में तपाने से एकदम शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार अध्यात्म की उत्कृष्ट साधना के द्वारा आत्मा व कर्म के संयोग को तोड़ा जा सकता है ।

आत्मा जब कर्म के संयोग से सर्वथा मुक्त बनती है, तब वह संसार के परिभ्रमण से सदा के लिए मुक्त बनकर चौदह राजलोक के अग्रभाग पर स्थिर हो जाती है ।

आत्मा स्वयं ज्ञानमय है । सुख यह आत्मा का मूलभूत स्वभाव है । कर्म से मुक्त बनी आत्मा अनंतज्ञान गुण को प्राप्त करती है, इसके साथ ही वह शाश्वत व अक्षय सुख का अनुभव करती है ।

एक बार जब आत्मा कर्म के संयोग से मुक्त बन जाती है, तब वह सदा के लिए संसार के परिभ्रमण से मुक्त हो जाती है, वह आत्मा पुनः कभी भी इस संसार में नहीं आती है ।

संसार और संसार में रही आत्मा की उत्पत्ति मानी जाय तो यही प्रश्न खड़ा होता है कि जब संसार का प्रारंभ हुआ तब आत्मा शुद्ध थी या अशुद्ध ? यदि अशुद्ध आत्मा की उत्पत्ति हुई तो उसकी अशुद्धि का कारण क्या ? क्या उस अशुद्धता के पूर्व वह आत्मा शुद्ध थी ? यदि शुद्ध आत्मा भी पुनः अशुद्ध बन जाती हो तब तो मोक्ष भी निरर्थक सिद्ध हो जाएगा । मोक्ष में गई आत्मा भी पुनः अशुद्ध बन जाएगी ।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार इस जगत् की कोई आदि नहीं है और आत्मा व कर्म का संयोग भी प्रवाह की अपेक्षा अनादि है ।

कर्म-विपाक

(प्रथम-कर्मग्रन्थ)

8 मंगलाचरण और विषय निर्देश

सिरि-वीर-जिणं वंदिय, कम्मविवागं समासओ वुच्छं ।
कीरइ जिएण हेउहिं, जेणं तो भण्णए कम्मं ।।1।।

शब्दार्थ-

सिरि=श्री (लक्ष्मी), **वीरजिणं**=महावीर जिनेश्वर को, **वंदिय**=वंदन करके, **कम्मविवागं**=कर्मफल को, **समासओ**=संक्षेप में, **वुच्छं**=कहूंगा, **कीरइ**=किया जाता है, **जिएण**=जीव द्वारा, **हेउहिं**=हेतुओं से, **जेणं**=जिस कारण, **तो**=उस कारण, **भण्णए**=कहा जाता है, **कम्मं**=कर्म ।

सामान्य अर्थ-

श्री महावीर प्रभु को वंदन करके कर्म-विपाक (नामक ग्रन्थ) को मैं संक्षेप में कहूंगा । जीव द्वारा हेतुओं से जो किया जाता है, उसे कर्म कहते है ।

विशेष अर्थ-

विक्रम की 13-14 वीं शताब्दी में हुए पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म. ने 5 कर्मग्रंथों की रचना की थी, उनमें यह प्रथम कर्म ग्रंथ है, इस कर्मग्रंथ में कर्म के फल का विस्तृत वर्णन होने से इस कर्मग्रंथ का नाम **'कर्म विपाक'** रखा गया है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में श्री वीरप्रभु को नमस्कार करके मंगलाचरण किया गया है । प्रारंभ किए हुए कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण अनिवार्य है ।

मंगलाचरण के रूप में यहाँ **'श्री वीर प्रभु'** को वंदन किया गया है ।

श्री अर्थात् लक्ष्मी । लक्ष्मी दो प्रकार की है 1) अंतरंग लक्ष्मी और 2) बाह्य लक्ष्मी ।

महावीर प्रभु दोनों प्रकार की लक्ष्मी से युक्त है ।

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य आदि आत्मा के स्वाभाविक गुण, आत्मा की अंतरंग लक्ष्मी कहलाते हैं । वीरप्रभु इस अंतरंग लक्ष्मी से युक्त है ।

अशोकवृक्ष, सुर पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामंडल, देव-दुंदुभि और तीन छत्र ये अष्ट महाप्रातिहार्य परमात्मा की बाह्य लक्ष्मी है ।

वीर शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है-**'विशेषेण अनन्तज्ञानादि-आत्मगुणान् ईरयति-प्रापयति वा वीरः'**

अर्थात् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य आदि आत्मा के विशेष गुणों को जो प्राप्त करनेवाले हैं और दूसरों को भी ये आत्मिक गुण प्राप्त कराने वाले हैं, वे वीर कहलाते हैं ।

आत्मा के मूल स्वरूप में बाधक ऐसे राग-द्वेष को जड़-मूल से उखाड़ने वाले **'जिन'** कहलाते हैं ।

प्रश्न : महावीर प्रभु को नमस्कार करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : ग्रंथकार महर्षि प्रस्तुत ग्रंथ में कर्म के विपाकों का वर्णन करना चाहते हैं, भगवान महावीर प्रभु ने अद्भुत पराक्रम द्वारा इन्हीं कर्मों का नाश किया था । इसके साथ ही महावीर प्रभु अंतिम तीर्थंकर होने से और वर्तमान में उन्हीं का शासन होने से आसन्न उपकारी के नाते उन्हें नमस्कार किया गया है ।

जिस व्यक्ति के पास जो शक्ति या पदार्थ होगा, उसे नमस्कार करने से हमें वह शक्ति प्राप्त होती है । महावीर प्रभु के पास अनन्तज्ञान आदि गुण संपत्ति है, अतः उन्हें नमस्कार करने से हमारी आत्मा में सत्तागत रही ज्ञानादि संपत्ति अवश्य प्रगट होगी ।

विषय निर्देशः 'कर्म विपाक'

काजल की डिब्बी में जिस प्रकार काजल के कण ठूंस-ठूंस कर भरे हुए होते हैं, उसी प्रकार चौदह राजलोक में सर्वत्र कार्मण-वर्गणा के पुद्गल ठूंस ठूंस कर भरे हुए हैं । हम जहाँ रहे हुए हैं, उसके चारों ओर भी कार्मण

वर्गणा के पुद्गल रहे हुए हैं ।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप कारणों के सेवन से ये कार्मण-पुद्गल आत्मा की ओर खिंचे चले आते हैं । जिस प्रकार लोह चुंबक के कारण आसपास में रहे लोहकण खिंच कर चले आते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि कारणों का सेवन करने से ये कार्मण वर्गणाएँ आत्मा की ओर स्वतः खिंचकर चली आती हैं ।

मिथ्यात्व आदि हेतुओं के सेवन से आत्मा पर लगे कर्म परमाणुओं में ज्ञानादि गुणों पर आवरण लाने की तथा सुख-दुःख प्रदान करने की शक्ति पैदा होती है ।

जिस प्रकार तपे हुए लोहे के गोले के एक-एक कण के साथ अग्नि एकमेक हो जाती है अथवा दूध में पानी का मिश्रण करने पर दूध और पानी एकमेक हो जाते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि हेतुओं का सेवन करने पर वे कर्म परमाणु आत्मा के साथ एकमेक हो जाते हैं, उसी प्रक्रिया को कर्म का बंध कहा जाता है ।

कर्मबंधन के हेतु

1. मिथ्यात्व-कर्मबंधन के हेतुओं में मिथ्यात्व सबसे अधिक प्रबल हेतु है । जब तक आत्मा में मिथ्यात्व होता है, तभी तक अन्य हेतु प्रबल होते हैं, मिथ्यात्व के मंद होने के साथ अथवा नष्ट होने के साथ अन्य हेतुओं का जोर घट जाता है । पापस्थानकों के जो 18 भेद बतलाए गए हैं, उनमें 18वाँ पाप-स्थानक **'मिथ्यात्व'** सबसे अधिक बलवान है । जब तक आत्मा में मिथ्यात्व जीवित रहता है, तभी तक प्राणातिपात आदि पापों का जोर रहता है, मिथ्यात्व के कमजोर होने के साथ ही सत्रह पापों का जोर एकदम घट जाता है ।

मिथ्यात्व के त्याग के अभाव में सत्रह पापों का किया हुआ त्याग भी अत्याग ही है ।

मिथ्यात्व अर्थात् बुद्धि का विपर्यास ।

जिस प्रकार शराब के नशे में चकचूर व्यक्ति को माता-बहिन-पत्नी तथा अपने-पराए का कोई विवेक नहीं होता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के उदय में व्यक्ति को सत्य-असत्य, हेय-उपादेय का कोई भान या विवेक नहीं

होता है ।

मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा, सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मान बैठती है ।

कर्मबंध की मुख्य जड़ **मिथ्यात्व** ही है, अविरति आदि तो उसकी शाखाएँ हैं । जड़ यदि मजबूत है तो वृक्ष हरा-भरा रहेगा और जड़ यदि कट गई तो वृक्ष को सूखते देर नहीं लगेगी । अभव्य आत्मा में मिथ्यात्व अनादि-अनंत है । वह आत्मा कभी भी सम्यग्दर्शन गुण प्राप्त नहीं कर पाती है ।

आत्मा के जो षट्स्थान बतलाए गए हैं-उनमें अंतिम दो-**मोक्ष है और मोक्ष का उपाय है,** उसे मानने के लिए अभव्य आत्मा कभी तैयार नहीं होती है । उसी प्रकार अचरमावर्त में रही हुई आत्मा को भी मिथ्यात्व का गाढ़ उदय होने के कारण मोक्ष अथवा मोक्षसुख को पाने की लेश भी इच्छा नहीं होती है ।

जिस प्रकार कुशल वैद्य की सलाह लिये बिना स्वेच्छानुसार कोई दवाई ली जाए तो उस दवाई से लाभ होने के बजाय नुकसान ही होता है, उसी प्रकार अरिहंत परमात्मा रूपी भाव वैद्य की आज्ञा की अवेहलना कर स्वच्छंद मति से कुछ भी बाह्य धर्म किया जाए तो कुछ लाभ नहीं होता है ।

अनंतज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा ने अपने केवलज्ञान के आलोक में जगत् के स्वरूप को साक्षात् देखकर जीव आदि तत्त्वों का जो स्पष्ट वर्णन किया है, उसे नहीं मानना, उस पर श्रद्धा नहीं करना और उससे विपरीत श्रद्धा करना इसी का नाम मिथ्यात्व है ।

इस संसार में आत्मा के समस्त दुःखों का मूल मिथ्यात्व है । मिथ्यात्व के कारण ही आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का भान नहीं होता है ।

मिथ्यात्व परम रोग है । इस रोग के कारण आत्मा अपने पूर्ण स्वास्थ्य स्वरूप, सिद्ध-स्वरूप को प्राप्त करने में समर्थ नहीं बन पाती है ।

यह संसार जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक-आधि-व्याधि और उपाधि से भरा हुआ है । इस संसार में लेश भी सुख नहीं है, फिर भी मिथ्यात्व से ग्रस्त बनी आत्मा को इस संसार के प्रति निर्वेद भाव उत्पन्न नहीं होता है । उसे तो संसार के तुच्छ व क्षणिक सुखों का ही तीव्र राग होता है ।

मधु बिंदु के दृष्टांत से बात स्पष्ट हो जाती है कि चारों ओर से दु:ख से घिरी होने पर भी आत्मा मधु बिंदु तुल्य, संसार के तुच्छ सुखों में आसक्त होती है ।

सुदेव में देवबुद्धि, सुगुरु में गुरु बुद्धि और सुधर्म में धर्मबुद्धि ही धर्म है, जबकि राग-द्वेष से युक्त कुदेव में देवबुद्धि, कंचनकामिनी से युक्त कुगुरु में गुरुबुद्धि और जीव-हिंसादि अधर्म में धर्मबुद्धि ही मिथ्यात्व है ।

गाढ़ मिथ्यात्व के अस्तित्व काल में मोक्ष की रुचि पैदा नहीं होती है ।

कुदर्शन का तीव्रराग ही दृष्टिराग है । यह दृष्टि-राग कामराग और स्नेह-राग से भी अधिक भयंकर है ।

इस संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को एक बार भी सम्यग्दर्शन का स्पर्श हो जाए तो वह आत्मा, अर्ध पुदगल परावर्त काल से अधिक, इस संसार में परिभ्रमण नहीं करती है ।

मिथ्यात्व की स्थिति में जीवात्मा को संसार के सुख के प्रति तीव्र राग भाव होता है और संसार के दु:खों के प्रति तीव्र द्वेष भाव होता है ।

मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा के ज्ञान को भी अज्ञान और चारित्र को भी काय-कष्ट कहा गया है । सम्यक्त्व से युक्त अष्ट प्रवचनमाता के ज्ञान वाला भी ज्ञानी कहलाता है ।

मिथ्यात्व के भेद

1. आभिग्रहिक मिथ्यात्व-तत्त्व को नहीं जानते हुए भी अपनी झूठी मान्यता के कदाग्रह को नहीं छोड़े उसे आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

2. अनभिग्रहिक मिथ्यात्व-सभी दर्शनों को समान समझना । इस मिथ्यात्व में अज्ञान होते हुए भी किसी का कदाग्रह नहीं होता है ।

3. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व-सर्वज्ञ कथित बहुत सी बातों पर श्रद्धा रखते हुए भी किन्हीं 1-2 बातों में अविश्वास करना, उसे आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

4. सांशयिक मिथ्यात्व-जिनेश्वर के वचनों में संदेह करना-उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

5. अनाभोगिक मिथ्यात्व-साक्षात् अथवा परंपरा से तत्त्व की अप्राप्ति। यह मिथ्यात्व एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में होता है।

2. अविरति-हिंसादि पापों के त्याग की प्रतिज्ञा के अभाव को अविरति कहते हैं। हिंसादि पापों का आचरण नहीं करने पर भी यदि हिंसादि पापों के त्याग की प्रतिज्ञा नहीं होती है तो उन हिंसादि दोषों का पाप लगता ही है।

प्रतिज्ञा यह बंधन नहीं है किन्तु भव के बंधन में से छुड़ाने वाली सर्वश्रेष्ठ कला है।

व्यवहार में भी यदि कोई मकान-दुकान भाड़े पर ली हो और उस मकान या दुकान का कोई उपयोग न भी करे तो भी उस मकान का किराया चुकाना ही पड़ता है।

घर में इलेक्ट्रिक लाइट का कनेक्शन लिया हो तो प्रतिमास उसका Bill चुकाना ही पड़ता है-भले ही लाइट जलाएँ या न जलाएँ। उसी प्रकार जब तक पाप के त्याग की प्रतिज्ञा नहीं करते हैं, तब तक पाप का बंध चालू ही रहता है। पापत्याग की प्रतिज्ञा के अभाव में पाप करने का चांस Chance बना रहता है, इस कारण कभी भी वह पाप हो जाने की संभावना रहती है।

स्वेच्छापूर्वक पापत्याग की प्रतिज्ञा करने से व्यक्ति पाप के भार से हल्का हो जाता है।

गत जन्मों में आरंभ-समारंभ के जो शस्त्र आदि इकट्ठे किए, उन सबको यदि नहीं वोसिराया जाए तो उन शस्त्रों संबंधी पाप का बंध चालू रहता है।

अविरति का पाप भी अत्यधिक प्रमाण में हो जाता है।

सामान्यतया व्यक्ति के जीवन में पाप की प्रवृत्ति तो अल्प प्रमाण में होती है, परंतु पापत्याग की प्रतिज्ञा नहीं होने से सतत पाप का बंध बना रहता है।

अविरति के पाप से बचने के लिए परमात्मा ने विरति धर्म बतलाया है। विरति का स्वीकार करने से पाप का बंध बहुत कम हो जाता है।

देव व नरक में रहे सम्यग्दृष्टि जीवों में मिथ्यात्व का अभाव होता है, परंतु अविरति के कारण उन्हें भी पापबंध की क्रिया चालू रहती है।

पाप को पाप मानना-यह चौथे गुणस्थानक के जीवों की स्थिति है, जब कि पापों का आंशिक अथवा सर्वथा त्याग करना-पाँचवें व छठे गुणस्थानक की भूमिका है ।

विरति धर्म के स्वीकार के लिए मिथ्यात्व का त्याग अनिवार्य है । मिथ्यात्व के सद्भाव में पापत्याग की प्रतिज्ञा का विशेष महत्त्व नहीं है । इसी कारण अभव्य आत्मा द्रव्य से पापों का त्याग कर दीक्षा भी अंगीकार कर ले तो भी मिथ्यात्व का सद्भाव होने के कारण उसके द्वारा किए गए त्याग का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ।

3. कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चारों कषाय भी कर्मबंध के मुख्य हेतु हैं । क्रोध व मान द्वेष स्वरूप हैं । माया और लोभ राग स्वरूप हैं ।

बँधे हुए कर्म में फल देने की जो तीव्रता पैदा होती है, उसका मुख्य कारण कषाय ही है । कर्मों की दीर्घ स्थिति का आधार भी कषाय ही है ।

• एक गर्भवती हिरनी के शिकार से श्रेणिक महाराजा नरक में चले गए और उन्हें वहाँ 84000 वर्ष तक नरक की भयंकर वेदनाएँ सहन करनी पड़ेंगी, इसके पीछे मुख्य कारण कषाय ही है । तीव्र भाव से जब कोई पाप कर्म किया जाता है, तब उस पाप में फल देने की शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है ।

• दृढ़प्रहारी ने स्त्री हत्या, गो हत्या आदि चार-चार हत्याएँ की थीं, परन्तु उन हत्याओं के बाद उसका हृदय काँप उठा था । उसका दिल पाप के तीव्र पश्चात्ताप से भर आया था । इसी के परिणामस्वरूप चार-चार हत्याएँ करने वाला दृढ़प्रहारी भी उसी भव से मोक्ष चला गया था ।

• नीम के पानी को ज्यों ज्यों उबाला जाएगा, त्यों त्यों उसकी कटुता-कड़वाहट बढ़ती जाएगी, उसी प्रकार जो पाप, तीव्र भाव से किया जाता है, उस पाप की सजा अत्यधिक बढ़ जाती है ।

तीव्र भाव से किया गया अणु जितना पाप भी मेरु जितना हो जाता है और पश्चाताप के प्रभाव से मेरु जितना किया गया पाप भी अणु जितना हो जाता है ।

त्यागी, तपस्वी और संयमी आत्मा भी जब क्रोध आदि कषायों के

अधीन बन जाती है, तब भयंकर से भयंकर पाप कर्मों का बंध कर लेती है।

◆ स्कंदिलाचार्य महान् ज्ञानी और 500 शिष्यों के गुरुपद पर प्रतिष्ठित थे।

पालक मंत्री ने उनको एवं उनके समस्त शिष्यों को घाणी में पील देने का आदेश दिया था।

आचार्य भगवंत ने 499 शिष्यों को अंतिम निर्यामणा कराई और वे सब शुक्ल-ध्यान पर आरूढ़ होकर समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष में चले गए।

अब मात्र उनका एक ही शिष्य बालमुनि बाकी था। उन्हें बाल मुनि पर अत्यंत स्नेह था। अतः उन्होंने पालक मंत्री को कहा, 'बाल मुनि के पहले मुझे घाणी में पील दो, बाल मुनि की पीड़ा मुझसे देखी नहीं जाएगी।'

परंतु पालक मंत्री ने आचार्य भगवंत की इस बात को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और उसने अपनी इच्छानुसार आचार्य भगवंत के देखते बाल मुनि को घाणी में पील दिया। देह से बाल होते हुए भी दृढ़ मनोबली बाल मुनि शुक्ल ध्यान पर आरूढ़ होकर मोक्ष में चले गए।...परंतु अपनी इच्छा का स्वीकार न होने से स्कंदिलाचार्य एकदम आवेश में आ गए और उसी समय उन्होंने निदान कर लिया। वे मरकर देवलोक में पैदा हुए...और वहाँ उत्पन्न होने के बाद तुरंत ही उन्होंने उस नगर में आग लगा दी। राजा व मंत्री भी आग में झुलस कर खत्म हो गये।

क्रोधावेश में उन्होंने हजारों निर्दोष व्यक्तियों को भी मार डाला परिणामस्वरूप उन्होंने भयंकर पाप कर्म का बंधकर अपना दीर्घ संसार खड़ा कर लिया।

• अग्निशर्मा तापस ने अपने जीवन में लाखों वर्ष तक मासक्षमण के पारणे मासक्षमण किए थे, परंतु क्रोधावेश में वह सब कुछ हार गया और क्रोध के फलस्वरूप उसने अपना अनंत संसार खड़ा कर लिया था।

• क्रोध से बँधे हुए पाप कर्म के फलस्वरूप ही तपस्वी महात्मा मरकर चंडकोशिक सर्प बन गए थे।

ऐसे सैकड़ों दृष्टांत इतिहास के पन्नों पर अंकित हैं, अतः क्रोध पिशाच से सदैव दूर रहें।

• क्रोध की भाँति **मान** भी अत्यंत खतरनाक है । उससे भी भयंकर पापकर्म का बंध होता है ।

• हरिकेशी ने पूर्व भव में जाति का अभिमान किया तो उन्हें चांडाल कुल में जन्म लेना पड़ा ।

• विद्या के मद के परिणामस्वरूप स्थूलभद्र महामुनि अर्थ से शेष चार पूर्व का ज्ञान प्राप्त न कर सके ।

• तप के अभिमान के कारण कुरगडुमुनि को तप में भयंकर अंतराय पैदा हुआ ।

• संसार में परिभ्रमण कराने वाले मान से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए ।

• **माया** तो पाप की जननी है ।

• माया के फलस्वरूप मल्लिनाथ प्रभु स्त्री रूप में पैदा हुए थे ।

• मायापूर्वक दीर्घतप करने पर भी रुक्मि साध्वी शुद्धि प्राप्त न कर सकी ।

• **लोभ** सर्वगुणों का नाश करने वाला है ।

लोभ के पाप के कारण मम्मण सेठ मरकर 7 वीं नरक में चला गया ।

अपने निजी स्वार्थ के लिए जब इन कषायों का उपयोग किया जाता है तो वे अप्रशस्त कषाय कहलाते हैं और उनसे अशुभ कर्म का बंध होता है, परंतु धर्म, शासन व व्रत की रक्षा के लिए जब इन कषायों का सेवन किया जाता है तो उससे पुण्य कर्म का बंध होता है । अप्रशस्त कषाय सर्वथा त्याज्य हैं, क्योंकि वे एकांतः आत्मा का अहित करने वाले हैं ।

4. योग-मन, वचन और काया के शुभ-अशुभ योगों से आत्मा कर्म का बंध करती है ।

मन में शुभ चिंतन करने से, सत्य, प्रिय व हितकारी वचन बोलने से और परोपकार की प्रवृत्ति करने से शुभ कर्म का बंध होता है, जब कि दूसरों के अहित का चिंतन करने से, असत्य व अप्रिय वचन बोलने से और दूसरों के लिए अहितकर प्रवृत्ति करने से अशुभ कर्म का बंध होता है ।

• तंदुलिक मत्स्य मात्र मानसिक विचारों के पाप से मरकर 7वीं नरक में चला जाता है ।

• प्रसन्नचंद्र राजर्षि ने मात्र विचारों के पाप से ही 7 वीं नरक के योग्य कर्मों का संचय कर लिया था ।

• सुनंदा के रूप में पागल बना रूपसेन, सुनंदा को तो प्राप्त नहीं कर सका, परंतु उसी को पाने के ध्यान के फलस्वरूप उसे 7-7 भवों तक मौत का शिकार बनना पड़ा था ।

कुछ भी लेना-देना नहीं होने पर भी हम निरर्थक अशुभ विचारों के द्वारा भयंकर पापकर्मों का बंध कर लेते हैं ।

पाप से बचना हो तो अशुभ विचारों को रोकना चाहिए । अशुभ विचारों को रोके बिना शुभ भाव में स्थिरता संभव नहीं है ।

वचनयोग से कभी खराब वचन नहीं बोलना चाहिए ।

• भूख से परेशान बेटे ने आवेश में आकर माँ को कहा, **'तूं कहाँ शूली पर चढ़ने गई थी ?'**

बेटे के आक्रोशजनक शब्दों को सुनकर आवेश में आई माँ ने कहा, 'तेरे हाथ क्या कट गए थे ?'

बस, आक्रोश से बोले गए इन शब्दों के फलस्वरूप दूसरे भव में माँ के हाथ कट गए और बेटे को शूली पर चढ़ना पड़ा ।

अतः बोलते समय खूब सावधानी रखनी चाहिए । प्रमाद व हास्य से बोले गए शब्दों का भयंकर विपाक जीवात्मा को सहन करना पड़ता है ।

• मेघकुमार ने हाथी के भव में जीव दया का पालन किया तो उसके परिणामस्वरूप वह मरकर श्रेणिक पुत्र राजपुत्र बना ।

अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने से, टी.वी. सिनेमा आदि देखने, चलते-चलते निष्कारण वृक्ष के पत्ते आदि तोड़ने से, अश्लील व फिल्मी गंदे गीतों का श्रवण करने से आत्मा अशुभ कर्मों का बंध करती है । यदि अशुभ कर्म के बंध से बचना हो तो इन सब अशुभ प्रवृत्तियों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ।

9 जीव और कर्म का संबंध

1) व्यक्ति रूप से जीव के साथ कर्म का संबंध सादि सांत है ।

2) प्रवाह की अपेक्षा जीव के साथ कर्म का संबंध सादि-सांत और सादि-अनंत है ।

1) सादि सांत : जीव प्रति समय नए-नए कर्म का बंध करता रहता है । समय व्यतीत होने पर वे कर्म उदय में आते हैं और अपना फल देकर आत्मा से अलग हो जाते हैं । जीव ने जब कर्म का बंध किया, तब व्यक्ति रूप से उस कर्मबंध का प्रारंभ हुआ, अतः उसे सादि कहा जाता है और फल देकर वह कर्म अलग हो गया अतः उसे **'सांत'** कहा जाता है ।

2) अनादि-सांत : भव्यात्मा को प्रवाह की अपेक्षा कर्म का बंध अनादि-सांत होता है । भव्य आत्मा को भी प्रवाह की अपेक्षा कर्म का संबंध अनादिकाल से हैं, परंतु मोक्ष में जाने पर उस कर्म के संबंध का अंत आ जाता है अतः भव्य जीव को कर्म का संबंध अनादि-सांत होता है ।

3) अनादि-अनंत : अभव्य जीव को कर्म-संबंध प्रवाह की अपेक्षा अनादि काल से चला आ रहा है । अभव्य आत्मा का कभी मोक्ष नहीं होने के कारण वह संबंध अनादि-अनंत होता है ।

प्रश्न : आत्मा अमूर्त है और कर्म मूर्त है तो मूर्त कर्म की अमूर्त आत्मा पर असर कैसे हो सकेगी ?

उत्तर : ज्ञान अमूर्त होने पर भी विष और मदिरा पान आदि करने से ज्ञान-शक्ति का ह्रास प्रत्यक्ष देखा जाता है तथा ब्राह्मी, बादाम आदि पौष्टिक वस्तुओं का उपयोग करने से ज्ञान शक्ति की अभिवृद्धि प्रत्यक्ष देखी जाती है । बस, इसी प्रकार आत्मा अमूर्त होने पर भी मूर्त ऐसे कर्म का प्रभाव आत्मा पर अवश्य पड़ता है ।

कर्म का वियोग

सोने की खान में रहे मलिन सोने में मिट्टी का संयोग अनादिकाल से

है, फिर भी प्रयत्न द्वारा उस सोने में रहे मिट्टी के संयोग को दूर किया जा सकता है, बस, इसी प्रकार आत्मा और कर्म का संयोग अनादिकालीन होने पर भी संवर की साधना द्वारा आत्मा में नवीन कर्मों के आगमन को रोका जा सकता है और निर्जरा द्वारा आत्मा में रहे कर्मों को जलाकर भस्मीभूत किया जा सकता है। इस प्रकार आत्मा और कर्म का संयोग अनादि होने पर भी पुरुषार्थ द्वारा उस संयोग को दूर कर आत्मा अपने पूर्ण शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है।

पयइ ठिइ-रस-पएसा, तं चउहा मोअगस्स दिट्ठंता।
मूल पगइट्ठ उत्तर-पगइ अठवन्न-सय-भेयं ॥2॥

शब्दार्थ-

पयइ=प्रकृति, **ठिइ**=स्थिति, **रस**-रस **पएसा**=प्रदेश, **तं**=वह, **चउहा**=चार प्रकार, **मोअगस्स**=लड्डू, **दिट्ठंता**=दृष्टांत से, **मूल पगइट्ठ**=मूल प्रकृति से आठ, **उत्तर पगइ**=उत्तर प्रकृति, **अठवन्नसय**= एकसौ अट्ठावन, **भेयं**=भेद !

सामान्य अर्थ-

लड्डू के दृष्टांत से वह कर्मबंध प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश की अपेक्षा से चार प्रकार का है। कर्म की मूल प्रकृति आठ और उत्तर प्रकृति एकसौ अट्ठावन है।

विवेचन :

मिथ्यात्व आदि हेतुओं के द्वारा जब आत्मा कर्म का बंध करती है तो उस बंध के साथ ही चार वस्तुओं का भी निर्णय हो जाता है, जिन्हें क्रमशः प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, रसबंध और प्रदेश बंध कहते हैं।

लड्डू के दृष्टांत से प्रकृतिबंध आदि के स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है।

जैसे वायुनाशक पदार्थों से बने लड्डू का स्वभाव वायु को नाश करने का है, पित्त नाशक पदार्थों से बने लड्डू का स्वभाव पित्त को नाश करने का है और कफ नाशक पदार्थों से बने लड्डू का स्वभाव कफ को नाश करने का है, उसी प्रकार आत्मा जब कर्म का बंध करती है, तब कुछ कर्म पुद्गलों में आत्मा

के ज्ञान गुण को रोकने का स्वभाव होता है, कुछ कर्म में आत्मा को सुख-दु:ख देने का स्वभाव होता है। कर्म के उस-उस स्वभाव के अनुसार उस-उस कर्म का वह नाम रखा जाता है जैसे-जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को रोकता है, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं, जो कर्म आत्मा को सुख-दु:ख देता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

ज्ञानावरणीय आदि कर्म की प्रकृतियाँ कहलाती हैं, अत: इसे **प्रकृति बंध** कहा जाता है।

◆ कुछ लड्डू 15 दिन तक, तो कुछ लड्डू 1 मास तक अपने स्वभाव में रहते हैं, उसके बाद वे बिगड़ जाते हैं। इसे लड्डू की काल मर्यादा भी कहते हैं। इसी प्रकार जिस समय आत्मा नवीन कर्म का बंध करती है, उस बंध के साथ ही आत्मा के साथ उस कर्म के लगे रहने की कालमर्यादा भी निश्चित हो जाती है।

जैसे अमुक कर्म आत्मा के साथ एक पल्योपम तक रहेगा...तो अमुक कर्म आत्मा के साथ एक सागरोपम तक रहेगा। कर्म के बंध समय जो काल-मर्यादा निश्चित होती है, उसे **स्थितिबंध** कहा जाता है।

◆ जैसे कुछ लड्डू में मधुर रस अधिक होता है तो कुछ में कम होता है। जैसे लड्डू के मधुर रस में न्यूनाधिकता देखने को मिलती है, उसी प्रकार कर्म के बंध समय रस में भी तरतमपना देखने को मिलता है। जो कर्म तीव्र रस पूर्वक किया जाता है, उस कर्म में रस भी तीव्र होता है और जो कर्म मंद रस से किया जाता है, उसमें रस भी मंद होता है।

इस रस के अनुसार ही कर्म में फल देने की शक्ति घटती-बढ़ती है।

कर्म पुद्गलों में फल देने के तरतम भाव को ही **रस बंध** कहा जाता है।

जिस प्रकार कुछ लड्डू का प्रमाण 100 ग्राम का होता है तो कुछ लड्डू का प्रमाण 500 ग्राम होता है। उसी प्रकार कर्म बंध के समय कभी अधिक कर्म परमाणुओं का ग्रहण किया जाता है, तो कभी कम कर्म परमाणुओं का इस प्रमाण को ही **प्रदेशबंध** कहा जाता है।

चार प्रकार के कर्मबंधों में प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध का बंध योग से तथा स्थितिबंध और रसबंध का बंध कषाय से होता है।

मूल प्रकृति : कर्मों के मुख्य भेदों को मूलप्रकृति कहा जाता है।

उत्तर प्रकृति : कर्मों के अवांतर भेदों को उत्तर प्रकृति कहा जाता है।

कर्मों की मूल प्रकृति आठ और उत्तर प्रकृति 158 हैं।

कर्म के भेद

इह नाण-दंसणावरण-वेय-मोहाउ-नाम-गोआणि ।
विग्घं च पण नव दु-अट्ठवीस-चउ-तिसय-दु-पण-विहं ।।3।।

शब्दार्थ-

इह=यहाँ, **नाण-दंसणावरण**=ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय, **वेय**=वेदनीय, **मोहाउ**=मोहनीय, आयुष्य, **नाम**=नाम, **गोआणि**=गोत्र । **विग्घं**=अंतराय, **च**=और, **पण**=पाँच, **नव**=नौ, **दु**=दो, **अट्ठवीस**=अट्ठाईस, **चउ**=चार **तिसय**=एक सौ तीन, **दु**=दो, **पण**=पाँच, **विहं**=प्रकार ।

सामान्य अर्थ-

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म के क्रमशः पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, एक सौ तीन, दो तथा पाँच भेद है ।

विवेचन :

मिथ्यात्व आदि के द्वारा आत्मा जब कर्म का बंध करती है तो उस कर्मबंध के साथ ही उस कर्म में फल देने का स्वभाव भी निश्चित हो जाता है।

कर्म के इस स्वभाव को ही मुख्यतया आठ भागों में बाँटा गया है ।

1) जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढकने का, आवृत करने का काम करता है, उसे **ज्ञानावरणीय कर्म** कहते हैं ।

2) जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को रोकने का काम करता है, उसे **दर्शनावरणीय कर्म** कहते हैं ।

3) जो कर्म आत्मा को इन्द्रिय जन्य सुख-दुःख प्रदान करता है, उसे **वेदनीय कर्म** कहते हैं ।

4) जो कर्म आत्मा में मोह पैदा करता है और-स्व पर के विवेक को नुकसान पहुँचाता है, उसे **मोहनीय कर्म** कहते हैं ।

5) जिस कर्म के उदय से जीव एक भव में जीता है और उस कर्म के क्षय से जीव मृत्यु प्राप्त करता है उसे **आयुष्य कर्म** कहते हैं ।

6) जिस कर्म के उदय से जीव नाना प्रकार के आकार आदि धारण करता है, उसे **नाम कर्म** कहते हैं ।

7) जिस कर्म के उदय से जीव उच्च या नीच कुल में जन्म ले, उसे **गोत्र कर्म** कहते हैं ।

8) जो कर्म आत्मा की दान आदि शक्तियों का घात करता है, उसे **अंतराय कर्म** कहते हैं ।

इन आठ कर्मों में चार घाती कर्म हैं और चार अघाति कर्म हैं ।

जो कर्म आत्मा के मूलगुण ज्ञान, दर्शन, वीतरागता और अनंतवीर्य का घात करते हैं उन्हें घातिकर्म कहते हैं और जो मूलगुण का घात नहीं करते हैं, उन्हें अघाति कर्म कहते हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्म के 5 भेद हैं ।

दर्शनावरणीय कर्म के 9 भेद हैं ।

वेदनीय कर्म के 2 भेद हैं ।

मोहनीय कर्म के 28 भेद हैं ।

आयुष्य कर्म के 4 भेद हैं ।

नाम कर्म के 103 भेद हैं ।

अंतराय कर्म के 5 भेद हैं ।

इस प्रकार आठ कर्मों के कुल 158 भेद हुए ।

सच्ची बहादुरी !

प्रतिकार करने में जो शक्ति चाहिए,
उससे भी अधिक शक्ति सहन करने में चाहिए ।
किसी का सामना करना कोई बहादुरी नहीं है,
परंतु किसी के अपकार को भी सहन कर लेना
उसी में सच्ची बहादुरी है ।

10

पाँच-ज्ञान

मइ सुअ-ओही-मण-केवलाणि, नाणाणि तत्थ मइ-नाणं ।
वंजण वग्गह चउहा, मण नयण विणिंदिय-चउक्का ।।4।।

शब्दार्थ-

मइ=मति (ज्ञान) **सुअ**=श्रुत, **ओही**=अवधि, **मण**=मन:पर्यव, **केवलाणि**=केवलज्ञान, **नाणाणि**=ज्ञान, **तत्थ**=उसमें, **मइनाणं**=मतिज्ञान, **वंजण**=व्यंजन, **वग्गह**=अवग्रह, **चउहा**=चार प्रकार, **मण नयण**=मन और आँख, **विणिंदिय चउक्का**=सिवाय चार इन्द्रिय ।

सामान्य अर्थ-

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान ये ज्ञान के पांच प्रकार है । मतिज्ञान के अवांतर भेद बतलाते है । मन और चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष चार इन्द्रिय के व्यंजनावग्रह होता है ।

विशेष अर्थ-

1) मतिज्ञान : मन और इन्द्रियों की मदद से जो ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं । इसे **आभिनिबोधक ज्ञान** भी कहा जाता है ।

2) श्रुत ज्ञान : शास्त्र या शब्द के श्रवण के बाद शब्द के पर्यालोचन से पदार्थ का जो बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

जैसे-कान से **'घट'** शब्द सुनने पर मात्र **'घट'** शब्द का जो ज्ञान हुआ, वह मतिज्ञान कहलाता है और **'घट'** शब्द सुनने के बाद **'जल धारण'** की क्रिया करनेवाले अमुक आकार वाले पदार्थ को 'घट' कहा जाता है, इस प्रकार घट शब्द से वाच्य 'घट' पदार्थ का जो बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहा जाता है ।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान में अंतर

यद्यपि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों में इन्द्रिय व मन की सहायता रहती है, फिर भी उन दोनों के बीच काफी अंतर है ।

मतिज्ञान कारण है, जब कि श्रुतज्ञान कार्य है ।

मतिज्ञान सिर्फ वर्तमानकालग्राही है अर्थात् सिर्फ विद्यमान वस्तु में ही प्रवृत्त होता है, जब कि श्रुतज्ञान भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों विषयों में प्रवृत्त होता है ।

मतिज्ञान मूक है, जब कि श्रुतज्ञान वाचाल है । मतिज्ञान में शब्द का विचार नहीं होता हैं, जबकि श्रुतज्ञान में शब्द के अर्थ का चिंतन होता है ।

श्रुतज्ञान के बिना भी सिर्फ मतिज्ञान हो सकता है, जब कि मतिज्ञान बिना श्रुतज्ञान नहीं होता है ।

3. अवधिज्ञान

मन और इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रखते हुए सिर्फ आत्मा द्वारा रूपी द्रव्यों का जो बोध होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं ।

4. मनः पर्यव ज्ञान : मन और इन्द्रियों की सहायता बिना ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों के मनोगत विचारों को जिस ज्ञान से जाना जाता है, उसे मन:पर्यव ज्ञान कहते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणी जब किसी भी वस्तु का विचार करता है, तब वह अपने काययोग द्वारा आकाश प्रदेश में रहे मनोवर्गणा के पुद्‌गलों को अपनी ओर खींचकर उन पुद्‌गलों को चिंतनीय वस्तु के अनुरूप परिणत करता है । किसी आकार में परिणत हुए उन पुद्‌गल द्रव्यों को मन:पर्यवज्ञानी स्पष्ट रूप से देख सकता है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जिस वस्तु संबंधी विचार करता है, उस वस्तु के आकार में परिणत मनोद्रव्य को ही मन:पर्यवज्ञानी प्रत्यक्ष जान सकता है, परंतु वस्तु को नहीं । वस्तु का ज्ञान तो अनुमान से होता है ।

5. अवधिज्ञान व मन:पर्यवज्ञान में अंतर : अवधिज्ञान रूपी द्रव्यों को स्पष्ट जानता है, जब कि मन:पर्यवज्ञानी मनोद्रव्य को स्पष्ट जानता है ।

◆ अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर चौदह राजलोक में रहे सभी रुपी द्रव्यों का बोध अवधिज्ञान से हो सकता है, जब कि मन:पर्यवज्ञान से सिर्फ ढाई द्वीप में रहे संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को ही जान सकते है ।

◆ अवधिज्ञान चारों गति के जीवों को हो सकता है, जब कि मन:पर्यवज्ञान सिर्फ अप्रमत्त संयत मुनियों को ही होता है ।

◆ अवधिज्ञान परभव में भी साथ में चल सकता है, जब कि मन: पर्यवज्ञान एक भव में ही रहता है ।

◆ मिथ्यात्व का उदय होने पर अवधिज्ञान, विभंगज्ञान में बदल जाता है, जबकि मन:पर्यवज्ञान कभी बदलता नहीं है ।

मनोद्रव्य रूपी होने से विशुद्ध अवधिज्ञान से मन के विचारों को भी जाना जा सकता है । भगवान द्रव्य मन से जो जवाब देते हैं, उन्हें अनुत्तर विमानवासी देव अवधिज्ञान से जान सकते हैं ।

5) केवलज्ञान : जगत् में रहे सभी ज्ञेय रूपी-अरूपी पदार्थों के भूत, भविष्य और वर्तमान की समस्त पर्यायों को एक साथ में जिस ज्ञान द्वारा जाना जाता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं । इस ज्ञान में इन्द्रियों व मन की अपेक्षा नहीं होती है, अर्थात् यह आत्म-प्रत्यक्ष ज्ञान है ।

पाँच ज्ञान में क्रम के हेतु

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव और केवलज्ञान इस प्रकार ज्ञान के जो पाँच भेद बतलाए गए हैं, उसके क्रम में निम्न कारण हैं ।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान परोक्षज्ञान हैं, जबकि अवधिज्ञान आदि तीन प्रत्यक्ष-ज्ञान हैं । परोक्ष से प्रत्यक्ष ज्ञान श्रेष्ठ होने से पहले परोक्षज्ञान बतलाकर फिर प्रत्यक्ष ज्ञान का वर्णन किया गया है ।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के स्वामी एक ही हैं । जिसे मतिज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान और जिसे श्रुतज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान अवश्य होता है ।

◆ मति व श्रुत दोनों का उत्कृष्ट स्थिति काल 66 सागरोपम है ।

◆ दोनों ज्ञान में इन्द्रिय व मन की अपेक्षा होने से कारण की समानता है ।

◆ दोनों ज्ञान सर्व द्रव्य-विषयक होने से विषय की समानता है ।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सहचारी होने पर भी मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य है क्योंकि अवग्रह आदि मतिज्ञान के बिना श्रुतज्ञान होता नहीं है ।

◆ श्रुतज्ञान के साथ काल, विपर्यय, स्वामी व लाभ की समानता होने से श्रुत के बाद अवधिज्ञान का क्रम है ।

◆ श्रुतज्ञान की तरह अवधिज्ञान की काल मर्यादा भी 66 सागरोपम की है ।

◆ मिथ्यात्व के उदय से मतिज्ञान व श्रुतज्ञान, मति-अज्ञान व श्रुत-अज्ञान में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार अवधिज्ञान भी विभंग ज्ञान में बदल जाता है ।

◆ जिसे मतिज्ञान व श्रुतज्ञान होता है, उसी को अवधिज्ञान होता है, अतः स्वामी की समानता है ।

मिथ्यादृष्टि देव को सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के साथ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीनों एक साथ पैदा होते हैं, अतः लाभ की भी समानता है ।

अवधिज्ञान के बाद मनः पर्यवज्ञान क्यों ?

अवधिज्ञान व मनःपर्यवज्ञान छद्मस्थ को होते हैं, अतः स्वामी की समानता है ।

ये दोनों ज्ञान रूपी द्रव्य विषयक होने से विषय की समानता है ।

ये दोनों ज्ञान क्षायोपशमिक भाव में होने से भाव की समानता है ।

ये दोनों ज्ञान आत्म प्रत्यक्ष होने से प्रत्यक्षता की समानता है ।

केवलज्ञान सभी ज्ञानों में श्रेष्ठ होने से उसे सबके अंत में कहा गया है ।

दुःखी की दवा

दुःख की औषध यही है कि आए हुए दुःख का ज्यादा विचार नहीं करना । दुःख मेरे ही कर्मों का फल है- ऐसा मानकर दुःख को समतापूर्वक, सहन करने से व्यक्ति नवीन कर्मबंध से अपने आपको बचा लेता है ।

11 मतिज्ञान के अवांतर भेद

केवलज्ञान के कोई अवांतर भेद नहीं हैं, जबकि मतिज्ञान आदि चार क्षायोपशमिक भाववाले होने से उनके अनेक भेद है ।

सर्व प्रथम मतिज्ञान का वर्णन किया जाता है । मतिज्ञान के अट्ठाईस, तीनसौ छत्तीस और तीनसौ चालीस भेद भी है ।

मतिज्ञान के मुख्य 28 भेद : इन 28 भेदों को समझने के लिए सर्व प्रथम मुख्य चार भेद समझने चाहिए ।

मतिज्ञान के चार भेद :

1. अवग्रह : ज्ञान का विषय व्यंजन और अर्थ, ये दो होने से अवग्रह भी दो प्रकार का है—

अ) व्यंजनावग्रह : उपकरण-इन्द्रिय के साथ पदार्थ का संबंध होने पर जो अत्यंत ही अस्पष्ट बोध होता है, वह व्यंजनावग्रह कहलाता है ।

आ) अर्थावग्रह : इन्द्रिय और पदार्थ का संयोग पुष्ट होने पर **'यह कुछ है !'** ऐसा जो विषय का सामान्य बोध होता है, उसे अर्थावग्रह कहते है ।

इन्द्रिय और पदार्थ का संबंध होने मात्र से ही विषय का बोध नहीं होता है । प्रारंभ में इन्द्रिय को सामान्य असर होती है, धीरे-धीरे असर बढ़ती जाती है, और उत्तरोत्तर असर बढ़ने पर **'यहाँ कुछ है'** का ज्ञान होता है ।

जैसे सोए हुए व्यक्ति को नाम देकर चिल्लाने पर पहले सामान्य असर होता है, फिर दो-चार बार चिल्लाने पर जब वे शब्द पुद्गल कान में भर जाते हैं । तब **'कहीं से आवाज आ रही है'** ऐसा अस्पष्ट बोध होता है । उसी को शास्त्रीय भाषा में **'अर्थावग्रह'** कहते हैं । इस **'अर्थावग्रह'** के पहले होनेवाले अव्यक्त ज्ञान को **व्यंजनावग्रह** कहते हैं ।

मन और चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों को व्यंजनावग्रह होता है ।

पदार्थ को प्राप्त कर-संबंध कर स्व विषय का बोध करने वाली इन्द्रिय

को **प्राप्यकारी इन्द्रिय** कहते हैं तथा पदार्थ के साथ संबंध किए बिना स्व विषय का बोध करनेवाली इन्द्रिय को **अप्राप्यकारी** कहते हैं ।

मन और चक्षु अप्राप्यकारी इन्द्रिय हैं, क्योंकि मन का विषय चिंतन-मनन का है । घटादि पदार्थों का विचार करते समय मन के साथ घटादि पदार्थ का संयोग नहीं होता है, उसी प्रकार आँख सैकड़ों मील दूर रही वस्तु को देखती है, उस समय उस पदार्थ का आँख के साथ कोई संयोग संबंध नहीं होता है ।

पदार्थ के साथ संयोग हुए बिना ही स्व विषय का बोध हो जाने से अप्राप्यकारी इन्द्रियों को व्यंजनावग्रह नहीं होता है ।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय के व्यंजनावग्रह होता है, क्योंकि शब्द पुद्‌गल कान का स्पर्श करते हैं, तभी सुनाई देता है, खाने के पदार्थ जीभ का स्पर्श करते हैं, तभी स्वाद का बोध होता है, फूल आदि की सुगंध के परमाणु नाक का स्पर्श करते हैं, तभी सुगंध आदि का पता चलता है तथा पानी आदि का स्पर्श स्पर्शनेन्द्रिय को होता है, तभी उसकी शीतलता आदि का पता चलता है । इस प्रकार व्यंजनावग्रह के चार भेद हुए ।

1) स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह 2) रसनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह 3) घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह और 4) श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह ।

पुरुषार्थ

सूर्य प्रकाश देता है, परंतु उस प्रकाश का सही
उपयोग करने के लिए पुरुषार्थ तो हमें ही करना पडता है,
सद्‌गुरु हमें सही दिशा का बोध देते हैं,
परंतु उस दिशा की ओर चलने का पुरुषार्थ तो
हमें स्वयं ही करना पड़ता है ।

12 मतिज्ञान के शेषभेद व श्रुतज्ञान

अत्थुग्गह ईहावाय, धारणा करण माणसेहिं छहा ।
इय अट्ठवीसभेयं, चउदसहा वीसहा व सुअं ।।5।।

शब्दार्थ-

अत्थुग्गह=अर्थावग्रह, **ईहा**-ईहा, **अवाय**=अपाय, **धारणा**=धारणा, **करण**=इन्द्रियाँ, **माणसेहिं**=मन द्वारा, **छहा**=छ प्रकार से, **इय**=इस प्रकार, **अट्ठवीस भेयं**=अट्ठाईस भेद, **चउदसहा**=चौदह प्रकार, **वीसहा**=बीस प्रकार, **व**=अथवा, **सुअं**=श्रुतज्ञान ।

गाथार्थ : इन्द्रिय और मन द्वारा अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के छह छह प्रकार हैं । इस प्रकार मतिज्ञान के कुल 28 भेद हैं । श्रुतज्ञान के चौदह अथवा बीस भेद हैं ।

विवेचन : इन्द्रिय द्वारा पदार्थ का जो अस्पष्ट बोध होता है, उसे **'अर्थावग्रह'** कहते हैं । जैसे **'कुछ दिखाई देता है'** इस प्रकार का जो अस्पष्ट बोध होता है, वह अर्थावग्रह है ।

मन और 5 इन्द्रियों से होने के कारण अर्थावग्रह छह प्रकार का है ।

1) स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह 2) रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह

3) घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह 4) चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह

5) श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह 6) मनोजन्य अर्थावग्रह

2. ईहा : अर्थावग्रह के द्वारा ग्रहण किए गए सामान्य विषय को विशेष रूप से निश्चय करने के लिए जो विचारणा की जाती है उसे **ईहा** कहते है । ईहा द्वारा अन्वय धर्म की घटना और व्यतिरेक धर्म के निराकरण द्वारा वस्तु का निश्चय किया जाता है । जैसे **'यह रस्सी है या सर्प ?'** इस प्रकार का संशय उत्पन्न होने पर दोनों के गुण-धर्म के बारे में विचार किया जाता है । जैसे-यह रस्सी का स्पर्श होना चाहिए, क्योंकि यदि सर्प का स्पर्श होता तो आघात लगने पर फुत्कार किए बिना नहीं रहता, इत्यादि विचारणा को ईहा कहा

जाता है । ईहा का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

ईहा के कुल छह भेद हैं–

1) स्पर्शनेन्द्रियजन्य ईहा 2) रसनेन्द्रियजन्य ईहा 3) घ्राणेन्द्रियजन्य ईहा 4) चक्षुरिन्द्रियजन्य ईहा 5) श्रोत्रेन्द्रियजन्य ईहा 6) मनोजन्य ईहा ।

3. अवाय : ईहा के द्वारा वस्तु का निर्णयाभिमुख बोध होने के बाद जो निश्चयात्मक बोध होता है, उसे अवाय कहते हैं । जैसे 'पहले जो स्पर्श हुआ था, वह रस्सी का ही था, सर्प का नहीं ।' इस प्रकार जो निश्चय होता है, वह अवाय है । अवाय का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

अवाय के छह भेद हैं–

1) स्पर्शनेन्द्रिय अवाय 2) रसनेन्द्रिय अवाय 3) घ्राणेन्द्रिय अवाय 4) चक्षुरिन्द्रिय अवाय 5) श्रोत्रेन्द्रिय अवाय 6) मनोजन्य अवाय ।

4. धारणा : अवाय के द्वारा जाने गए पदार्थ का भविष्य में विस्मरण न हो, ऐसा जो दृढ़ ज्ञान होता है, उसे धारणा कहा जाता है । अपेक्षा से इसके तीन भेद हैं–

1) अविच्युति धारणा : अवाय से निर्णीत वस्तु का उपयोग अन्तर्मुहूर्त काल तक वैसा ही बना रहे उसे अविच्युति धारणा कहते हैं, इसका काल अन्तर्मुहूर्त जितना है ।

2) वासना धारणा : अविच्युति से आत्मा में उस वस्तु के संस्कार पड़ते हैं, उस संस्कार को वासना कहते हैं । इसका काल संख्यात-असंख्यात वर्ष जितना है ।

3) स्मृति धारणा : आत्मा में दृढ बने संस्कार, जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से असंख्य वर्ष बीतने पर भी **'यह वही वस्तु है जो मैंने पहले देखी थी ।'** इस प्रकार के ज्ञान को स्मृति कहा जाता है । जाति स्मरण का समावेश इसी **'स्मृति'** में होता है ।

पाँच इन्द्रियों व मन की अपेक्षा धारणा के भी छह भेद हैं ।

1) स्पर्शनेन्द्रिय धारणा 2) रसनेन्द्रिय धारणा 3) घ्राणेन्द्रिय धारणा 4) चक्षुरिन्द्रिय धारणा 5) श्रोत्रेन्द्रिय धारणा 6) मनोजन्य धारणा ।

इस प्रकार मतिज्ञान के कुल 28 भेद हुए ।

व्यंजनावग्रह के	4 भेद
अर्थावग्रह के	6 भेद
ईहा के	6 भेद
अवाय के	6 भेद
धारणा के	6 भेद
कुल	28 भेद

मतिज्ञान के 336 भेद : क्षयोपशम की विचित्रता और विषय की विविधता के कारण सभी को सदा काल एक समान मतिज्ञान नहीं होता है। मतिज्ञान के व्यंजनावग्रह आदि 28 भेद में प्रत्येक के बहु, अल्प आदि 12-12 भेद होते हैं । अतः 28 x 12 = 336 भेद हुए ।

1-2 बहुग्राही-अबहुग्राही (अल्पग्राही)-बहु अर्थात् अनेक और अबहु अर्थात् अल्प ।

उदा. अनेक वाद्ययंत्र एक साथ बज रहे हों, तब तीव्र बुद्धिशाली व्यक्ति अनेक वाद्ययंत्रों के शब्द समूह में से अलग अलग वाद्ययंत्र के शब्द को जान लेता है । जैसे **'यह वीणा की आवाज है' 'यह तबले की आवाज है ।'**

मंदबुद्धिवाला मनुष्य अनेक वाद्य यंत्रों के शब्द समूह को अलग-अलग ग्रहण नहीं कर पाता है, उसे अबहुग्राही कहते हैं ।

3-4 बहुविध-अबहुविध-बहुविध अर्थात् अनेक प्रकार से और अबहुविध अर्थात् अल्प प्रकार से ।

जैसे 1) तीव्र बुद्धिवाला मनुष्य अनेक वाद्ययंत्रों के शब्द समूह में से अलग अलग शब्दों को अनेक गुणयुक्त जान सकता है । जैसे... **'यह शंख की आवाज किसी युवा पुरुष से जन्य है ।'**

2) मंद बुद्धिवाला मनुष्य अनेक वाद्य यंत्रों के शब्दसमूह में अलग-अलग शब्दों को अनेक गुणयुक्त नहीं जानता है, उसे अबहुविध मतिज्ञान कहा जाता है ।

5-6 क्षिपग्राही-अक्षिप्रग्राही-क्षिप्र अर्थात् जल्दी और अक्षिप्र अर्थात् विलंब से ।

उदा. वाद्ययंत्र की आवाज आदि को जल्दी पहिचान लेते हैं उसे

क्षिप्रग्राही और जो विलंब से पहिचान पाते हैं, उसे अक्षिप्रग्राही कहते हैं ।

7-8 निश्रितग्राही-अनिश्रितग्राही-निश्रित अर्थात् चिह्न और अनिश्रित अर्थात् चिह्न का अभाव ।

उदा. 1) किसी चिह्न को देखकर वस्तु का बोध होता हो उसे निश्रितग्राही कहते हैं । जैसे ध्वजा देखकर निश्चय करे कि **'यह जैन मंदिर होना चाहिए ।'**

2) तीव्र बुद्धिशाली व्यक्ति चिह्न को देखे बिना ही वस्तु को पहिचान ले उसे अनिश्रितग्राही कहते हैं-जैसे : `ध्वजा देखे बिना ही निश्चय कर ले कि **'यह जैन मंदिर है ।'**

9-10 असंदिग्धग्राही-संदिग्धग्राही-असंदिग्ध अर्थात् संदेह रहित और संदिग्ध अर्थात् संदेह युक्त । जैसे शब्दों की आवाज सुनाई देने पर यह निश्चित करना कि **'यह मेघगर्जना ही है, सिंहनाद नहीं'** यह असंदिग्धग्राही ज्ञान है । और शब्द सुनाई देने पर भी **'यह सिंहगर्जना है या मेघनाद ?'** इस प्रकार का संदेह युक्त ज्ञान संदिग्धग्राही कहलाता है ।

11. ध्रुवग्राही-अध्रुवग्राही-ध्रुवग्राही अर्थात् दीर्घकाल तक स्मृति रहना । अध्रुवग्राही अर्थात् समय व्यतीत होने पर भूल जाना । उदा. एक ही बार सुना हुआ भाषण हमेशा के लिए याद रह जाय, उसे ध्रुवग्राही कहते हैं और अनेकबार सुनने पर भी याद नहीं रहना अथवा भूल जाना, उसे अध्रुवग्राही कहते हैं ।

इस प्रकार

श्रोत्रेन्द्रियजन्य मतिज्ञान के	60 भेद हुए
चक्षुरिन्द्रियजन्य मतिज्ञान के	48 भेद हुए
घ्राणेन्द्रियजन्य मतिज्ञान के	60 भेद हुए
रसनेन्द्रियजन्य मतिज्ञान के	60 भेद हुए
स्पर्शनेन्द्रियजन्य मतिज्ञान के	60 भेद हुए
मनोजन्य मतिज्ञान के	48 भेद हुए
	336 भेद

मतिज्ञान के उपर्युक्त 336 भेद श्रुत निश्रित कहलाते हैं ।

1) श्रुत-निश्रित-मतिज्ञान : यहाँ श्रुत का अर्थ आगम ग्रंथ नहीं लेने का है, परंतु परोपदेश या आगम-ग्रंथ आदि से जो कुछ सुना-जाना गया हो वह

श्रुत कहलाता है। इस श्रुत से संस्कारित बना ज्ञान, श्रुत-मिश्रित कहलाता है अर्थात् पहले उपदेश आदि द्वारा जाना हो परंतु व्यवहार काल में श्रुत का उपयोग करने के समय में उपदेश आदि के उपयोग बिना होनेवाली मति, श्रुत निश्रित है।

उदा. जिंदगी में पहली बार हाथी को देखने पर, बालक को समझाया कि **'इसे हाथी कहते हैं।'** बालक ने उस हाथी को ध्यान से देखा। फिर काफी समय व्यतीत होने के बाद बालक ने पुनः उस हाथी को देखा और बोल उठा **'यह हाथी है।'** बालक का यह ज्ञान श्रुत की अपेक्षा पूर्व संस्कार के बिना कारण होने से इस ज्ञान को 'श्रुत निश्रित मति ज्ञान कहते हैं।'

2. अश्रुत निश्रित मतिज्ञान : व्यवहार काल के पूर्व, श्रुतज्ञान द्वारा जिसकी बुद्धि संस्कारवाली नहीं बनी हो, 'ऐसे जीवों को मतिज्ञानावरणीय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से स्वाभाविक जो बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे अश्रुत निश्रित मतिज्ञान कहते हैं।

इसके चार भेद हैं

1) औत्पत्तिकी बुद्धि : जिस बुद्धि से पहले नहीं जाने-सुने पदार्थ का तत्काल ज्ञान हो जाता है, उसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहते है। इस प्रकार की बुद्धि से प्रसंग उत्पन्न होते ही योग्य मार्ग मिल जाता है।

2. वैनयिकी बुद्धि : गुरुजनों का विनय, सेवा-भक्ति करने से प्राप्त बुद्धि को वैनयिकी बुद्धि कहते हैं। यह बुद्धि कार्य को वहन करने में समर्थ होती है और इहलोक परलोक में फल देनेवाली होती है।

3. कार्मिकी बुद्धि : उपयोग पूर्वक चिंतन मनन और अभ्यास करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि को कार्मिकी बुद्धि कहते हैं।

4. पारिणामिकी बुद्धि : वय के परिपाक से वृद्ध मनुष्य को आगे-पीछे के अनुभव से जो ज्ञान होता है, उसे पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं। यह बुद्धि अनुमान, हेतु व दृष्टांत से कार्य सिद्ध करनेवाली और लोकहित करनेवाली होती है।

इस प्रकार श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के 336 भेद एवं अश्रुत निश्रित मतिज्ञान के चार भेद होने से मतिज्ञान के कुल 340 भेद हुए।

अब आगे की दो गाथाओं में श्रुतज्ञान के 14 और 20 भेदों का कथन करते हैं।

13 श्रुतज्ञान के 14 भेद

अक्खर-सन्नी-सम्मं, साइअं खलु सपज्जवसिअं च ।
गमियं अंग-पविट्ठं, सत्तवि ए ए सपडिवक्खा ।।6।।

शब्दार्थ-

अक्खर=अक्षर, **सन्नी**=संज्ञी, **सम्मं**=सम्यग्, **साइअं**=सादिक, **खलु**=वास्तव में, **सपज्जवसिअं**=अंत सहित, **गमिअं**=गमिक, **अंग पविट्ठं**=अंग प्रविष्ट, **सत्तवि**=सातों भी, **एए**=ये, **सपडिवक्खा**=विरुद्ध सहित ।

गाथार्थ-

अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक और अंग-प्रविष्ट तथा इन सात के साथ विरोधी अर्थवाले सात नाम जोड़ने से श्रुतज्ञान के चौदह भेद होते हैं ।

विवेचन

मतिज्ञान के बाद अब श्रुतज्ञान का वर्णन करते हैं । श्रुतज्ञान के 14 और 20 भेद भी हैं । प्रस्तुत गाथा में मतिज्ञान के 14 भेदों का नाम निर्देश किया गया है ।

14 भेद :

1) अक्षर श्रुत 2) अनक्षर श्रुत 3) संज्ञी श्रुत 4) असंज्ञी श्रुत 5) सम्यक् श्रुत 6) मिथ्या श्रुत 7) सादि श्रुत 8) अनादि श्रुत 9) सपर्यवसित श्रुत 10) अपर्यवसित श्रुत 11) गमिक श्रुत 12) अगमिक श्रुत 13) अंग प्रविष्ट श्रुत 14) अंग बाह्य श्रुत ।

1) यद्यपि श्रुतज्ञान के उपर्युक्त 14 भेदों का समावेश अक्षर श्रुत और अनक्षर श्रुत में हो जाता है, फिर भी मंद बुद्धिवाले जिज्ञासु की अपेक्षा श्रुतज्ञान के 14 भेद किए गए है ।

1) अक्षर श्रुत : अक्षरों से अभिलाप्य (वचन द्वारा कहे जा सके) ऐसे

पदार्थों का जो बोध होता है, उसे अक्षर श्रुत कहते हैं । इस अक्षर श्रुत के तीन भेद हैं–

अ) संज्ञाक्षर : 18 प्रकार की लिपि (अक्षरों) को संज्ञाक्षर कहा जाता है ।

आ) व्यंजनाक्षर : 'अ से ह' तक के अक्षरों के उच्चारण से जो ज्ञान होता है, उसे व्यंजनाक्षर कहते हैं ।

इ) लब्ध्यक्षर : शब्द अथवा अक्षर को पढ़ने-सुनने से जो बोध होता है, उस बोध में हेतुभूत क्षयोपशम को लब्ध्यक्षर कहते हैं ।

संज्ञाक्षर और व्यंजनाक्षर दोनों द्रव्य श्रुत हैं और लब्ध्यक्षर भाव श्रुत है । द्रव्य श्रुत अज्ञान स्वरूप होने पर भी भाव श्रुत का कारण होने से उसे श्रुतज्ञान कहा गया है ।

प्रश्न : अभिलाप्य-अनभिलाप्य भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर : शास्त्र में दो प्रकार के भाव बतलाए गए हैं । जिन भावों को शब्दों द्वारा कहा जा सकता हो, उसे **अभिलाप्य** भाव कहते हैं और जिन्हें शब्दों में न कहा जा सके, उसे **अनभिलाप्य** भाव कहते हैं ।

अभिलाप्य भाव से अनभिलाप्य भाव अनंत गुणे हैं । गणधर भगवंत अभिलाप्य भावों का अनंतवाँ भाग ही चौदह पूर्व के रूप में रचते हैं ।

3) संज्ञी श्रुत : मनवाले पंचेन्द्रिय जीवों को संज्ञी कहते हैं । संज्ञी जीवों के ज्ञान को संज्ञी श्रुत कहा जाता हैं ।

संज्ञा के तीन भेद हैं—

क. दीर्घकालिकी संज्ञा : दीर्घकाल तक विचार करने की शक्ति । **'मैंने अमुक कार्य किया, अमुक कार्य करूंगा, अमुक कार्य कर रहा हूँ'** इस प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमान का विचार करने की शक्ति को दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं । देव, नारक व गर्भज तिर्यंच मनुष्य को यह संज्ञा होती है ।

ख. हेतु-वादोपदेशिकी : अपने शरीर के रक्षण के लिए इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति रूप वर्तमान काल का विचार करने की शक्ति को हेतु वादोपदेशिकी संज्ञा कहते हैं । यह संज्ञा बेइन्द्रिय आदि असंज्ञी जीवों को होती है ।

ग. दृष्टिवादोपदेशिकी : विशिष्ट श्रुतज्ञान के क्षयोपशम वाले और हेयोपादेय की प्रवृत्तिवाले सम्यग्दृष्टि जीव की विचारणा को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहा जाता है ।

4. असंज्ञी श्रुत : जिन जीवों के मन नहीं होता है, उन्हें असंज्ञी कहा जाता है । असंज्ञी प्राणियों के श्रुत को असंज्ञी श्रुत कहा जाता है ।

5. सम्यग्श्रुत : सम्यग्दृष्टि जीवों के श्रुत को सम्यग्श्रुत कहा जाता है ।

6. मिथ्याश्रुत : मिथ्यादृष्टि जीवों के श्रुत को मिथ्याश्रुत कहा जाता है ।

7. सादि श्रुत : जिस श्रुतज्ञान का प्रारंभ होता है, उसे सादिश्रुत कहते हैं ।

8. अनादि श्रुत : जिस श्रुत की आदि न हो उसे अनादि श्रुत कहा जाता है ।

9. सपर्यवसित श्रुत : जिस श्रुतज्ञान का अंत होता हो उसे सपर्यवसित श्रुत कहा जाता है ।

10. अपर्यवसित श्रुत : जिस श्रुतज्ञान का अंत न हो, उसे अपर्यवसित-अनंत श्रुत कहा जाता है ।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा श्रुतज्ञान सादि, सपर्यवसित और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है ।

11. गमिक श्रुत : जिस सूत्र में एक समान आलावें (पाठ) आते हो उसे गमिक श्रुत कहा जाता है । जैसे दृष्टिवाद ।

12. अगमिक श्रुत : जिस सूत्र में एक समान आलावें नहीं आते हो, वह अगमिक श्रुत कहलाता है । जैसे-कालिक श्रुत ।

13. अंग प्रविष्ट श्रुत : गणधर भगवंत विरचित द्वादशांग रूप श्रुत को अंगप्रविष्ट श्रुत कहा जाता है ।

14. अंगबाह्य श्रुत : गणधरों से अतिरिक्त स्थविर मुनियों द्वारा अंगों के आधार से जो श्रुत रचा जाता है, उसे अंग बाह्य श्रुत कहा जाता है । जैसे-दशवैकालिक, आवश्यक-निर्युक्ति आदि ।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा

1) द्रव्य : जब कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, तब उस जीव की अपेक्षा श्रुतज्ञान का प्रारंभ हुआ कहलाता है, वो ही जीव सम्यग् दर्शन से भ्रष्ट होता है, तब उसके श्रुतज्ञान का अंत कहलाता है। इस प्रकार एक जीव की अपेक्षा श्रुतज्ञान सादि-सांत हुआ ।

अनेक जीवों की अपेक्षा श्रुतज्ञान अनादिकाल से चला आ रहा है और अनंतकाल तक रहेगा, अतः अनादि अनंत कहलाता है ।

2) क्षेत्र : भरत और ऐरावत में तीर्थ का प्रारंभ होता है, अतः श्रुतज्ञान का भी प्रारंभ होता है और तीर्थ के उच्छेद के साथ श्रुतज्ञान का भी अंत आ जाता है, अतः भरत-ऐरावत में श्रुतज्ञान सादि-सांत हुआ, जबकि महाविदेह में सदाकाल तीर्थ रहता है, अतः वहाँ की अपेक्षा सम्यग्श्रुत अनादि-अनंत है ।

3) काल : भरत-ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अंत में श्रुतज्ञान का प्रारंभ होता है और उत्सर्पिणी के चौथे आरे का अमुक अंश व्यतीत होने पर तथा अवसर्पिणी के पाँचवें आरे के अंत में श्रुतज्ञान का नाश होता है, अतः यहाँ अमुक काल की अपेक्षा सादि-सांत है, जबकि महाविदेह क्षेत्र में सदा एक काल होने से वहाँ श्रुतज्ञान अनादि-अनंत है ।

4) भाव : क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा श्रुतज्ञान सादि-सांत है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के प्रारंभ से श्रुतज्ञान का प्रारंभ होता है और वह सम्यक्त्व चला जाय, तब श्रुतज्ञान का अंत हो जाता है, अतः सादिसांत है ।

मान्यता

मनुष्य को पुण्य के उदय से
जो कुछ सुख के साधन मिले हैं,
वे उसे कम ही लगते हैं और पाप के उदय से
जो कुछ दुःख आता है,
वह उसे अधिक ही लगता है ।
पुण्य के उदय में उसे संतोष नहीं है और पाप के
उदय में वह सहनशीलता से कोसों दूर है ।

14 श्रुतज्ञान के 20 भेद

पज्जय-अक्खर-पय संघाया-पडिवत्ति तह य अणुओगो ।
पाहुड पाहुड-पाहुड-वत्थु पुव्वा य ससमासा ।।7।।

शब्दार्थ-

पज्जय=पर्याय, **अक्खर**=अक्षर, **पय**=पद, **संघाया**=संघात, **पडिवत्ति**=प्रतिपत्ति, **तह**=तथा, **य**=और, **अणुओगो**=अनुयोग, **पाहुड**=प्राभृत, **पाहुड-पाहुड**=प्राभृत-प्राभृत, **वत्थु**=वस्तु, **पुव्वा**=पूर्व, **य**=तथा, **ससमासा**=समास सहित ।

गाथार्थ-

पर्याय-श्रुत, अक्षर-श्रुत, पद-श्रुत, संघात-श्रुत, प्रतिपत्ति-श्रुत, अनुयोगश्रुत, प्राभृत श्रुत, प्राभृत-प्राभृत श्रुत, वस्तु श्रुत, पूर्व श्रुत इन दस भेदों के साथ `समास' शब्द जोडने से अन्य दश (कुल बीस) भेद होते हैं ।

विवेचन

1. पर्याय श्रुत : श्रुतज्ञान के एक सूक्ष्म अविभाज्य अंश को पर्याय कहा जाता है । लब्धि अपर्याप्ता सूक्ष्म निगोद के जीव को उत्पत्ति के प्रथम समय में जो सर्व जघन्य श्रुतज्ञान होता है उस श्रुतज्ञान में एक अंश की जो वृद्धि होती है, उसे पर्यायश्रुत कहते हैं ।

2. पर्याय समास श्रुत : अनेक पर्याय श्रुत को पर्यायसमास श्रुत कहते हैं ।

3. अक्षर श्रुत : `अ से ह' तक के किसी एक अक्षर का ज्ञान, अक्षर-श्रुत कहलाता है ।

4. अक्षर समास श्रुत : एक से अधिक अक्षरों के ज्ञान को अक्षर-समास-श्रुत कहा जाता है ।

5. पद श्रुत : आचारांग सूत्र के 18,000 पद हैं, उनमें से किसी एक पद का ज्ञान, पद श्रुत कहलाता है ।

6. पद समास श्रुत : आचारांग आदि के 1 से अधिक पदों के ज्ञान को पदसमास श्रुत कहते हैं ।

7. संघात श्रुत : गति, इन्द्रिय आदि 14 मूल मार्गणाओं में से किसी भी एक मार्गणा के भेद के ज्ञान को संघातश्रुत कहते हैं । जैसे गति मार्गणा के चार भेद हैं 1) देवगति 2) नरकगति 3) तिर्यंचगति और 4) मनुष्य गति ।

इनमें से किसी भी प्रभेद के ज्ञान को संघातश्रुत कहा जाता है ।

8. संघात समास श्रुत : गति आदि 14 मूल मार्गणाओं में से किसी भी एक मार्गणा के एक से अधिक प्रभेद के ज्ञान को संघात समास श्रुत कहते हैं । जैसे चार गतियों में एक से अधिक गति का ज्ञान ।

9. प्रतिपत्ति श्रुत : गति आदि 14 मूल मार्गणाओं में से किसी भी एक मार्गणा के संपूर्ण ज्ञान को प्रतिपत्ति श्रुत कहा जाता है ।

10. प्रतिपत्ति समास श्रुत : एक से अधिक मार्गणाओं के संपूर्ण ज्ञान को प्रतिपत्ति समास श्रुत कहते हैं ।

11. अनुयोग श्रुत : सत्पद आदि द्वारा जीव आदि तत्त्वों के विचार को अनुयोग कहा जाता है ।

उदा. मोक्ष तत्त्व का विचार सत्पद आदि नौ द्वारों से हो सकता है, अतः सत्पद आदि नौ अनुयोग द्वार कहलाते हैं । उन नौ में से किसी भी एक द्वार के ज्ञान को अनुयोग श्रुत कहा जाता है ।

12. अनुयोग समास श्रुत : सत्पद आदि एक से अधिक अनुयोग द्वार के ज्ञान को अनुयोग समास श्रुत कहा जाता है ।

13. प्राभृत प्राभृत श्रुत : दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग में प्राभृत प्राभृत नाम का अधिकार है । उनमें से किसी एक का ज्ञान प्राभृत-प्राभृत श्रुत कहलाता है ।

14. समास श्रुत : एक से अधिक प्राभृत-प्राभृत का ज्ञान, प्राभृत-प्राभृत समास श्रुत कहलाता है ।

15. प्राभृत श्रुत : जैसे कई उद्देशों का एक अध्ययन होता है, उसी प्रकार कई प्राभृत-प्राभृतों का एक प्राभृत होता है । उसके ज्ञान को प्राभृत श्रुत कहते हैं ।

16. प्राभृत समास श्रुत : एक से अधिक प्राभृत के ज्ञान को प्राभृत समास श्रुत कहा जाता है ।

17. वस्तु श्रुत : कई प्राभृत मिलकर 'वस्तु' अधिकार होता है । उनमें से किसी एक के ज्ञान को वस्तु श्रुत कहा जाता है ।

18. वस्तु समास श्रुत : एक से अधिक वस्तु अधिकार के ज्ञान को वस्तु समास श्रुत कहा जाता है ।

19. पूर्वश्रुत : अनेक वस्तुओं का एक पूर्व कहलाता है, उनमें से एक का ज्ञान 'पूर्वश्रुत' कहलाता है ।

20. पूर्व समास श्रुत : एक से अधिक पूर्व के ज्ञान को पूर्व समास श्रुत कहा जाता है ।

पारिवारिक शांति

पारिवारिक सुख-शांति का आधार धन-संपत्ति नहीं संप ही है । जिस परिवार में छोटे सदस्यों के दिल में बड़ों के प्रति आदर-सम्मान की भावना है और छोटों के प्रति प्रेम, वात्सल्य और सहानुभूति की भावना है, उस परिवार को शांति पाने के लिए काश्मीर, माथेरन या कुलुमनाली जाने की आवश्यकता नहीं है ।

15 श्रुतज्ञान

साढ़े बारह वर्ष की घोरातिघोर साधना के फलस्वरूप 42 वर्ष की उम्र में चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा को ऋजुवालिका नदी के तट पर छट्ठ तप पूर्वक गोदोहिका आसन में केवलज्ञान प्रगट हुआ । उस केवलज्ञान द्वारा वे जगत् के समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष देखने लगे । चारों निकाय के देवताओं ने आकर परमात्मा के केवलज्ञान का महोत्सव किया...देवताओं ने समवसरण की रचना की...परंतु उस पर्षदा में सर्वविरति धर्म को स्वीकार करने की योग्यता किसी में नहीं होने से परमात्मा की वह देशना निष्फल गई । प्रभु ने क्षण भर देशना देकर वहाँ से विहार किया । प्रभुजी अपापापुरी नगरी में पधारे ।

वहाँ पर देवताओं ने समवसरण की रचना की...प्रभु ने धर्मदेशना देकर इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणों को प्रतिबोध दिया ।

...उसके बाद इन्द्रभूति ने पूछा, **'भगवन् ! किं तत्त्वं ?'**

भगवान ने कहा **'उपन्नेइ वा !'**

पुनः पूछा, **'किं तत्त्वं ?'**

भगवान ने कहा-**विगमेइ वा ।**

पुनः पूछा-**'किं तत्त्वं ?'** भगवान ने कहा-**धूवेइ** वा ।

प्रभु के मुख से **'उपन्नेइ वा विगमेइ वा धूवेइ वा'** इस त्रिपदी का श्रवण कर बीज बुद्धि के निधान गौतमस्वामी आदि गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना की ।

भगवान सुधर्मास्वामी ने यह द्वादशांगी जंबुस्वामी को प्रदान की । जंबु स्वामी ने प्रभवस्वामी को प्रदान की । प्रभव स्वामी ने यशोभद्रसूरिजी म. को प्रदान की...इस प्रकार श्रुतज्ञान की गंगा का प्रवाह आगे-आगे बढ़ता गया ।

समग्र द्वादशांगी के ज्ञाता, श्रुत-केवली कहलाते हैं । प्रभु महावीर के

शासन में अंतिम चौदह पूर्वी स्थूलभद्रस्वामी हुए ।

देवाधिदेव महावीर प्रभु की वाणी को गणधर भगवंतों ने सूत्र रूप में गूंथा । शब्दस्थ बनी हुई परमात्मा की वह वाणी ही **'आगम'** कहलाती है ।

वर्तमान काल में 12 वें अंग-दृष्टिवाद का विच्छेद हो चुका है ।

प्रभु महावीर की वाणी के संग्रह रूप वर्तमान में 45 आगम विद्यमान हैं । वे आगम अर्थ-गंभीर हैं, उन्हीं आगमों के गूढ़ रहस्यों को समझाने के लिए उन मूल आगमों पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकाओं की रचना की है ।

मूल आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका ये पाँचों मिलकर पंचांगी कहलाते हैं । गणधर आदि महापुरुषों के द्वारा विरचित होने के कारण ये सब आगम प्रमाणभूत हैं ।

इन आगमों को पढ़ने का मूलभूत अधिकार उन उन आगमों के योगोद्वहन करने वाले श्रमण भगवंतों को है ।

साध्वीजी भगवंतों को दश वैकालिक, उत्तराध्ययन सूत्र और आचारांग सूत्र के ही योगोद्वहन होने से उन्हीं सूत्रों को पढने का अधिकार है ।

गुरुमुख से इन आगमों को सुनने-समझने का अधिकार श्रावक-श्राविका वर्ग को भी है ।

45 आगमों का संक्षिप्त परिचय

इन आगमों को छह भागों में बांटा गया है-

(1) 11 अंग (2) 12 उपांग (3) 6 छेद सूत्र (4) चार मूल (5) 10 पयन्ना (6) दो चूलिका ।

ग्यारह अंग

1) आचारांग सूत्र : इस आगम में साधु के आचार मार्ग का विस्तार से वर्णन किया गया है । साधु के आहार-विहार-निहार-भाषा-शय्या-वस्त्र, सुख-दुःख आदि का वर्णन है । इसके साथ ही भगवान महावीर की घोरातिघोर साधना का वर्णन है । प्राचीन समय में इस आगम में 18,000 पद थे । वर्तमान

समय में आचारांग सूत्र में 25 अध्ययन 2554 श्लोक प्रमाण हैं । इस सूत्र पर 12,000 श्लोक प्रमाण शीलांकाचार्य की टीका भी है ।

2) सूत्र कृतांग : इस आगम में 180 क्रियावादी, 84 अक्रियावादी, 67 अज्ञानवादी, 32 विनयवादी इत्यादि कुल 363 पाखंडियों का वर्णन है। प्राचीन सूत्रकृतांग में 36000 पद थे । वर्तमान में 2100 श्लोक प्रमाण है । इस आगम पर 12850 श्लोक प्रमाण शीलांकाचार्य विरचित टीका है ।

3) स्थानांग सूत्र : इस आगम में 1 से 10 तक की संख्यावाले पदार्थों का वर्णन है । इस आगम के 10 अध्ययन हैं । प्राचीन समय में इस आगम में 72000 पद थे, वर्तमान में यह आगम 3700 श्लोक प्रमाण है, इसमें 31 अध्ययन हैं । 14,250 श्लोक प्रमाण टीका है ।

4) समवायांग सूत्र : इस आगम में 1 से 100 की संख्या वाले विविध पदार्थों के वर्णन के बाद 150, 250, 300, 400, 500, 600, 700, 800, 900, 1000, 1100, 2000 से 10,000 तक की संख्या वाले पदार्थ, उसके बाद 1 लाख से 10 लाख, फिर करोड आदि की संख्या वाले पदार्थों का विस्तृत वर्णन है । इस आगम के दो अध्ययन हैं । यह आगम 1660 श्लोक प्रमाण है । इस सूत्र पर 3574 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

5. व्याख्या प्रज्ञप्ति : इसे भगवती सूत्र भी कहा जाता है । गौतम स्वामी द्वारा पूछे गए और प्रभु महावीर द्वारा उत्तर दिए गए 36000 प्रश्नों का संकलन इस आगम में है । इसमें 41 शतक और 10,000 उद्देश हैं । वर्तमान में यह आगम 1575 श्लोक प्रमाण उपलब्ध है । इस आगम में जीव, कर्म, विज्ञान, खगोल, भूगोल आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है । इस आगम पर वर्तमान में 18,616 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

6. ज्ञाताधर्म कथा : इस छठे अंग के दो श्रुतस्कंध हैं 1) ज्ञातश्रुतस्कंध और 2 धर्मकथा श्रुतस्कंध । पहले श्रुत स्कंध में 19 अध्ययन हैं । दूसरे श्रुतस्कंध के 10 वर्ग के 206 अध्ययन हैं । वर्तमान में इस आगम पर 800 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

7. उपासक दशांग : इस 7वें अंग में आनंद, कामदेव, चुलनीपिता,

सुरादेव, चुल्लशतक, कुंडकोलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक और नंदिनी आदि 10 मुख्य श्रावकों के विस्तृत चरित्रों का वर्णन है । वर्तमान में इस आगम पर अभयदेवसूरिजी म. की 800 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

8. अंतकृद् दशांग : केवलज्ञानप्राप्ति के तुरंत बाद जो मोक्ष में जाते हैं, वे अंतकृत् केवली कहलाते हैं । इसमें आठ वर्ग में 92 अध्ययन हैं । इसमें अंतकृत् केवली के चरित्र हैं ।

9. अनुत्तरोपपातिक : इसके दो द्वार के 10 अध्ययनों में अनुत्तर देव विमान में उत्पन्न होनेवाले मुनिवरों का वर्णन है । इस आगम पर 5100 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

10. प्रश्नव्याकरण : इसके 1 श्रुतस्कंध के 10 अध्ययन हैं । प्रथम 5 अध्ययन में हिंसा आदि 5 आस्त्रव द्वारों का तथा शेष 5 अध्ययनों में अहिंसा आदि 5 संवरों का वर्णन है । इस आगम पर 5330 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

11. विपाक सूत्र : इस आगम में पुण्य-पाप के विपाकों का वर्णन है । इसके दो श्रुत स्कंध हैं । पहले श्रुत स्कंध में 10 अध्ययन हैं । जिसमें दु:ख विपाक का वर्णन है । दूसरे श्रुत स्कंध में सुख विपाक का वर्णन है ।

उपांग–12

1. औपपातिक सूत्र : जिस प्रकार शरीर में हाथ आदि अंग तथा अंगुली आदि उपांग कहलाते हैं, उसी प्रकार आगम पुरुष के आचारांग आदि 11 अंग व औपपातिक सूत्र आदि 12 उपांग कहलाते हैं ।

इस उपांग में कुल 1167 श्लोक हैं तथा 3125 श्लोक प्रमाण टीका है । राजा कोणिक की देवलोक-प्राप्ति का इतिहास है ।

2. राजप्रश्नीय सूत्र : इस उपांग में कुल 2120 श्लोक हैं, इस आगम पर मलयगिरिजी की 3700 श्लोक प्रमाण टीका है । इसमें 1 श्रुतस्कंध व 12 अध्ययन हैं । इस आगम में सूर्याभदेव का विस्तृत वर्णन है ।

3. जीवाभिगम सूत्र : यह उपांग 4700 श्लोक प्रमाण है, इस पर श्री

हरिभद्रसूरिजी की 14000 श्लोक प्रमाण टीका है । इसमें जीव तत्व का विस्तृत वर्णन है ।

4. प्रज्ञापना सूत्र : यह उपांग 7787 श्लोक प्रमाण है इस पर हरिभद्रसूरिजी की 3728 श्लोकप्रमाण टीका है । इस आगम के रचयिता श्यामाचार्य हैं । इसमें द्रव्यानुयोग के पदार्थों का वर्णन है ।

5. सूर्य प्रज्ञप्ति : इस उपांग में 2496 श्लोक हैं, इस पर भद्र-बाहुस्वामीजी की 9500 श्लोक प्रमाण टीका है । इस उपांग में सूर्य ग्रह आदि की गति का सूक्ष्म वर्णन है ।

6. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति : यह उपांग 4454 श्लोक प्रमाण है, इस पर श्री शांतिचंद्र गणि की 18000 श्लोक प्रमाण टीका है । इस उपांग में जंबूद्वीप के भरत आदि क्षेत्रों का तथा वर्षधर आदि पर्वतों का विस्तृत वर्णन है ।

7. चंद्र प्रज्ञप्ति : यह उपांग 2200 श्लोक प्रमाण है । इस पर श्री मलयगिरि की 9500 श्लोक प्रमाण टीका है । इस उपांग में चंद्र की गति आदि का विस्तृत वर्णन है ।

8 से 12 निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिता, पुष्प चूलिका, वृष्णिदशा : पाँच उपांगों का संयुक्त नाम निरयावलिका श्रुतस्कंध है । पहले विभाग में श्रेणिक पुत्र कालकुमार आदि 10 पुत्रों की नरकगति का वर्णन है ।

दूसरे कल्पावतंसिका विभाग में श्रेणिक के पौत्र पद्म, महापद्म आदि के स्वर्गगमन आदि का वर्णन है । पुष्पिता नामक तीसरे विभाग में चंद्र आदि 10 अध्ययन हैं, जिनमें चंद्र आदि का विस्तृत वर्णन है ।

पुष्पचूलिका नामक चौथे विभाग में श्रीदेवी आदि की उत्पत्ति व उसकी नाट्यविधि आदि का वर्णन है । वृष्णिदशा नामक पाँचवें विभाग में 12 अध्ययन है । इनमें कृष्ण के बड़े भाई बलदेव के निषध आदि 12 पुत्रों का वर्णन है ।

10 पयन्ना : श्री तीर्थंकर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट अर्थ की देशना के अनुसार महाबुद्धिशाली मुनिवर जिसकी रचना करते हैं, उसे पयन्ना (प्रकीर्णक) कहते हैं । अथवा तीर्थंकर परमात्मा के औत्पातिकी आदि बुद्धिवाले शिष्य

जिस सूत्र की रचना करते हैं, वे प्रकीर्णक कहलाते हैं । महावीर प्रभु के 14,000 शिष्य थे तो उनके द्वारा विरचित कुल प्रकीर्णक भी 14000 थे। वर्तमान में 22 पयन्ना मिलते हैं, किंतु 45 आगम में 10 पयन्ना ही गिने जाते है ।

1) चतु: शरण प्रकीर्णक : इसका दूसरा नाम कुशलानुबंधी अध्ययन भी है । इसके रचयिता श्री वीरभद्रगणि हैं । इसमें चतु:शरण, दुष्कृत गर्हा और सुकृतानुमोदन का विस्तृत वर्णन है ।

2) आतुर पच्चक्खाण : रोग से पीडित व्यक्ति को समाधि हेतु पर-भव की आराधना के लिए जो प्रत्याख्यान कराए जाते हैं, उसे आतुर प्रत्याख्यान कहते हैं । इसके रचयिता वीरभद्र गणि हैं । इसमें बाल मरण, बाल-पंडित मरण व पंडित मरण का स्वरूप समझाया गया है ।

3) महा प्रत्याख्यान : उसमें साधु की अंत समय की स्थिति का वर्णन है । 'नरक की पीड़ा के सामने यह पीड़ा कुछ नहीं है ।' इस सहनशीलता हेतु सुंदर प्रेरणाएँ की गई हैं ।

4) भक्त परिज्ञा : अंतिम समय में आहार त्याग के पच्चक्खाण का वर्णन है । इसके भी रचयिता श्री वीरभद्रगणि हैं । इसमें अंतिम अनशन के तीन भेद भक्त परिज्ञा, इंगिनी मरण और पादपोपगमन अनशन का वर्णन है ।

5) तंदुल वैचारिक : इसमें तंदुल (चावल) की 460 करोड 80 लाख संख्या बताई है । इसमें मुख्यतया अशुचि भावना का चिंतन है । गर्भस्थ जीव के स्वरूप का भी वर्णन है ।

6) संस्तारक : इसमें अंतिम समय की आराधना का वर्णन है । आत्मा को अच्छी तरह से तारे, उसे संस्तारक कहते हैं ।

7) गच्छाचार : इसमें सुविहित गच्छ के आचारों का वर्णन है । श्री महानिशीथ, बृहत्कल्प तथा व्यवहार सूत्र के आधार पर इसकी रचना हुई है ।

8) गणि विद्या : इसमें 82 गाथाएँ हैं । आचार्य भगवंत को उपयोगी

ज्योतिष विद्या का इसमें निर्देश है ।

9) देवेन्द्रस्तव : इसमें कुल 307 गाथाएँ हैं । इसके रचयिता श्री वीरभद्रगणि हैं । इसमें इन्द्र आदि के स्वरूप का विस्तृत वर्णन है ।

10) मरण समाधि : इसमें 663 गाथाएँ हैं । मृत्यु समय की आराधना का विस्तृत वर्णन है । इसके भी रचयिता श्री वीरभद्र गणि हैं ।

चार मूल सूत्र :

वृक्ष की दृढ़ता उसके मूल की आभारी है । उसी प्रकार दीक्षा अंगीकार करने के बाद इन चार मूलसूत्रों का अध्ययन खूब जरूरी है । इन्ही के आधार पर संयम की साधना रही हुई है । इन सूत्रों के बोध से नूतन मुनि परम उल्लासपूर्वक निर्दोष संयम धर्म की आराधना कर सकते हैं । नींव मजबूत हो तो इमारत लंबे समय तक टिक सकती है । इसी प्रकार मोक्षमार्ग की साधना के महल को खड़ा करने के लिए उस साधना का मूल, मजबूत होना जरूरी है । इसी के लिए ये चार मूल सूत्र हैं ।

1) आवश्यक सूत्र : साधु जीवन में प्रतिदिन सामायिक, चउविसत्थो, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और पच्चक्खाण रूप छह क्रियाएँ अवश्य करने योग्य हैं, इसीलिए इन्हें 'आवश्यक' कहते हैं । इस आवश्यक सूत्र पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाएँ उपलब्ध हैं । इनमें सामायिक आदि के स्वरूप का खूब विस्तार से वर्णन किया गया है ।

2) दश वैकालिक सूत्र : भगवान महावीर की 5 वीं पाट परंपरा में हुए 14 पूर्वधर महर्षि श्री शय्यंभवसूरिजी म. ने अपने पुत्र मनक मुनि के आत्म-कल्याण के लिए पूर्वों में से उद्धृत कर दशवैकालिक की रचना की है । इसमें कुल 10 अध्ययन व 2 चूलिकाएँ हैं । असज्झाय या कालवेला को छोड़कर काल को **'विकाल'** कहते हैं । यह सूत्र विकाल समय में पढ़ा जाता है, अतः वैकालिक कहते है । इसकी रचना भगवान महावीर के निर्वाण के 72 वर्ष बाद हुई थी । वर्तमान काल में दीक्षा के बाद इस सूत्र के 5 अध्ययन के योगोद्वहन होने के बाद ही बड़ी दीक्षा की जाती है । इस सूत्र में साधु के आचारों का विस्तृत वर्णन है ।

3) उत्तराध्ययन सूत्र : भगवान महावीर परमात्मा ने अपने निर्वाण के पूर्व, किसी के द्वारा नहीं पूछे गए प्रश्नों के जो उत्तर दिए थे, उन उत्तरों के संग्रह रूप यह उत्तराध्ययन सूत्र है । इस सूत्र में कुल 36 अध्ययन हैं । इस सूत्र में कुल 1643 श्लोक व कुछ गद्य भाग भी है ।

दशवैकालिक की रचना के पूर्व आचारांग सूत्र के छह जीव निकाय (शस्त्र परिज्ञा अध्ययन) के योगोद्वहन के बाद बड़ी दीक्षा होती थी अतः नूतन मुनि को पहले आचारांग सूत्र सिखाया जाता और उसके बाद यह उत्तराध्ययन सिखाया जाता था । इसलिए भी इस सूत्र को उत्तराध्ययन कहा जाता है ।

इस सूत्र में आत्म-गुण रमणता के उपाय बतलाए हैं । उन उपायों के सेवन से आत्मा पुद्गल रमणता से मुक्त हो सकती है । इस सूत्र पर अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं ।

4. ओघ निर्युक्ति : इस आगम में मुनि जीवन में उपयोगी प्रतिलेखना आदि 7 द्वारों का वर्णन है । इसके रचयिता श्री भद्रबाहु स्वामीजी हैं । इसमें चरणसित्तरी व करण सित्तरी का वर्णन है । चारित्र का स्वरूप, चारित्र के टिकाने के उपाय व उसकी निर्मलता के उपायों का सुंदर वर्णन है । मोक्षमार्ग की साधना में चरण करणानुयोग की मुख्यता है, अतः नूतन मुनि आदि को इस सूत्र का सर्व प्रथम अध्ययन करना चाहिए ।

छह छेद सूत्र : जिस प्रकार शरीर का कोई भाग सड़ गया हो तो ऑपरेशन आदि द्वारा उस भाग को छेद दिया जाता है और दूसरे भाग को बचाया जाता है, बस, उसी प्रकार चारित्र रूपी शरीर के किसी भाग में दूषण लगा हो तो उस भाग को छेद कर शेष चारित्र को बचाया जाता है, उसके लिए उपयोगी सूत्र छेद सूत्र कहलाते हैं ।

जिस प्रकार राज्य व्यवस्था को चलाने के लिए मुख्य नियम बनाए जाते हैं...उन नियमों का दृढ़ता से पालन हो इसके लिए छोटे 2 नियम बनाए जाते हैं । जो व्यक्ति उन नियमों का भंग करता है, उसे कानून (नियम) के अनुसार दंडित किया जाता है । इसी प्रकार जैनेन्द्र शासन में तीर्थंकर परमात्मा राजा तुल्य है, गणधर आदि प्रधान मंडल हैं । साधु-साध्वी-श्रावक-

श्राविका प्रजा तुल्य है । व्यवस्था संचालन हेतु मूलगुण तथा उत्तरगुण की आराधनाएँ हैं । उन आराधनाओं का जो भंग करता है, उसे दंड स्वरूप प्रायश्चित्त दिया जाता है ।

इन छेद सूत्रों में मुख्यतया प्रायश्चित्त का अधिकार है । छद्मस्थतावश आत्मा भूल कर बैठती हैं, परंतु भवभीरु आत्मा उस भूल के सुधार के लिए सद्गुरु से प्रायश्चित्त ग्रहण कर अपनी आत्मशुद्धि करती है ।

1. निशीथ सूत्र : विशाख गणि द्वारा रचित इस सूत्र में ज्ञानाचार आदि पाँच आचारों में लगे प्रायश्चित्त का विधान है । निशीथ अर्थात् रात्रि का मध्य भाग । उस समय योग्य परिणत शिष्य को जो सूत्र पढ़ाया जाता है वह निशीथ सूत्र है ।

2. महानिशीथ सूत्र : इस सूत्र में 8 अध्ययन हैं । निशीथ के साथ यह सूत्र पढाया जाता है । वि. सं. 510 में वल्लभीपुर में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की निश्रा में सभी आगमों को पुस्तकारूढ़ करने का कार्य प्रारंभ हुआ । वि.सं. 510 में देवर्द्धिगणि का स्वर्गवास हो गया । उसके बाद कालक्रम से श्री हरिभद्रसूरिजी, सिद्धसेनसूरि, वृद्धवादी, यक्षसेन गणि, देवगुप्त, जिनदास गणि आदि ने मिलकर महानिशीथ का पुनरुद्धार किया । इस सूत्र में प्रायश्चित्त का विधान है । विधि-अविधि से लिये गये प्रायश्चित्त के लाभ अलाभ का सुंदर वर्णन है ।

3) श्री दशाश्रुतस्कंध : इस पर भद्रबाहु स्वामी विरचित 2106 श्लोक प्रमाण निर्युक्ति है । साधु व श्रावक के धर्म का वर्णन है ।

7) बृहत्कल्प : कल्प अर्थात् साधु-साध्वी का आचार ! उन आचारों में प्रायश्चित्त के कारण, प्रायश्चित्त का स्वरूप तथा प्रायश्चित्त की विधि का विस्तृत वर्णन है ।

मूल सूत्र का प्रमाण 473 श्लोक है । श्री भद्रबाहुस्वामीजी ने प्रत्याख्यान-प्रवाद नामक पूर्व के तीसरे 'आचार' वस्तुरूप विभाग के 20वें प्राभृत में से उद्धार कर श्री बृहत्कल्प सूत्र की रचना की है । इसी पर स्वोपज्ञ निर्युक्ति भी है ।

5) व्यवहार सूत्र : इसमें साधु-साध्वी के व्यवहार का विस्तृत वर्णन है। इसके भी रचयिता भद्रबाहु स्वामीजी हैं। इसका प्रमाण 373 श्लोक का है। श्री मलयगिरि म. ने 33625 श्लोक प्रमाण टीका रची है। इस सूत्र के 10 उद्देश हैं। 10 वें उद्देश में आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा व जीत व्यवहार का वर्णन किया गया है।

6) जीत कल्प : आगम व्यवहार का विच्छेद हो जाने से जीत व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त प्रदान किया जाता है, जो भविष्य में भी चालू रहेगा। जीतकल्प में जीत व्यवहार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके रचयिता श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण हैं। इसमें 103 गाथाएँ हैं, उन पर 2606 गाथा प्रमाण स्वोपज्ञ भाष्य है।

नंदिसूत्र : जिसके अध्ययन, श्रवण व निदिध्यासन से आत्मा समृद्ध बनती है अर्थात् निर्मल ज्ञानादि गुणों की आराधना कर शाश्वत सिद्ध पद प्राप्त कर निजानंद प्राप्त करती है, इस कारण इसे नंदिसूत्र कहते हैं। इस सूत्र में मंगल रूप पाँच ज्ञान का वर्णन है। वर्तमान समय में आचार्यपद-प्रदान के समय मंगल हेतु संपूर्ण नंदिसूत्र पढ़ा जाता है। अन्य योगोद्वहन में लघु नंदिसूत्र पढ़ा जाता है। इस नंदिसूत्र पर अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं।

अनुयोग द्वार : सूत्रार्थ के व्याख्यान को अनुयोग कहा जाता है। आचारांग सूत्र आदि रत्नों की पेटी को खोलने के लिए अनुयोग द्वार चाबी तुल्य है।

इसमें उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय का सुंदर व यथार्थ वर्णन किया गया है।

जीवन उत्थान

बंगले की डिजाइन महत्त्वपूर्ण नहीं है,
महत्त्व तो है-दीवारों और छत का।
ये दोनों मजबूत चाहिए। बस, जीवन के उत्थान के लिए बाह्य सौंदर्य महत्त्वपूर्ण नहीं है, परंतु उसके लिए चाहिए, संयम की दीवार और सद्गुरु का छत्र ! ये दो न हों तो जीवन भंगार है।

16 श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म

गंगा तट पर किसी गाँव में दो भाई रहते थे । सद्गुरु के मुख से संसार की असारता जानकर उन दोनों भाइयों ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । उन दोनों में से एक भाई का तीव्र क्षयोपशम होने से वे परम ज्ञानी बने । विद्वान् मुनि अनेक मुनियों को वाचना देने लगे । अनेक मुनियों को विविध ग्रंथों का अध्ययन कराने के कारण वे खूब व्यस्त रहने लगे । इस प्रकार स्वाध्याय की अतिव्यस्तता के कारण उनके पास आराम के लिए भी पूरा समय नहीं था ।

एक बार अचानक ही रात्रि में उनकी निद्रा भंग हो गई, उन्होंने अपने भाई म. को आराम से सोते हुए देखा । वे सोचने लगे, ``अहो ! मेरा भाई कुछ पढा-लिखा नहीं है तो उसे कोई परेशानी नहीं है, वह आराम से आहार लेता है, आराम से सोता है- वह कितना सुखी और पुण्यशाली है ? मैं तो कितना मंदभागी हूँ...न तो आराम से खा सकता हूँ और न ही आराम से सो सकता हूँ ! स्वाध्याय और वाचना आदि के कारण मुझे पूरा आराम भी नहीं मिलता है ।'

बस, इस प्रकार अपने श्रुत की निंदा और भाई म. की अज्ञानता की प्रशंसा करने के कारण उन्होंने श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया । इस अशुभ कर्म की आलोचना किए बिना ही उनकी मृत्यु हो गई । वहाँ से मरकर वे देव बने ।

देवलोक में से आयुष्य पूर्णकर इसी भरतक्षेत्र में एक गोवाल के घर पुत्र रूप में पैदा हुए । यौवन में प्रवेश करने पर उनका विवाह हुआ...और उन्हें एक पुत्री भी हुई ।

एक बार उनकी पुत्री के रूप पर मोहित बने नवयुवकों की बालिश चेष्टाओं को देखकर उन्हें इस संसार से वैराग्य भाव पैदा हो गया ।

पुत्री का लग्न कराकर एक दिन सद्गुरु के पास भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद उन्होंने विधिपूर्वक उत्तराध्ययन सूत्र के

योगोद्वहन प्रारंभ किए । तीन अध्ययन की समाप्ति के बाद चौथे अध्ययन का अभ्यास प्रारंभ हुआ...और उसी समय पूर्व भव में बँधा हुआ श्रुतज्ञानावरणीय कर्म उदय में आया । बस, अब खूब मेहनत करने पर भी उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता है ।

चौथे अध्ययन की अनुज्ञा के लिए आयंबिल तप जरूरी है...और जब तक कंठस्थ न हो तब तक चौथे अध्ययन की अनुज्ञा नहीं हो सकती है ।

उनके गुरुदेव तो `अनुज्ञा' करने के लिए तैयार हो गए परन्तु उन्होंने कहा, `भगवन् ! सूत्र की अनुज्ञा की क्या विधि है ?'

गुरुदेव ने कहा, `जब तक यह अध्ययन याद न हो जाय तब तक आयंबिल करने पड़ते हैं ।' उन्होंने कहा, `भगवंत ! तो मैं भी जब तक यह अध्ययन याद नहीं होगा तब तक आयंबिल करूंगा ।'

गुरुदेव ने उन्हें आयंबिल करने के लिए अनुमति प्रदान की ।

वे मुनि रोज आयंबिल करने लगे और सूत्र को याद करने के लिए परिश्रम करने लगे ।

इस प्रकार आयंबिल करते हुए उन्हें 12 वर्ष बीत गए...फिर भी वे हताश नहीं हुए । वे अपने पाप का पश्चाताप करने लगे ।

इस प्रकार एक दिन शुभ ध्यान में आगे बढ़ते हुए उनके सभी अंतराय टूट गए...और उन्हें केवलज्ञान हो गया ।

इस प्रकार ज्ञान की निंदा-आशातना करने से उन्होंने ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया और तप तथा पश्चाताप के द्वारा उसी कर्म का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया ।

अपने जीवन में भी ज्ञान, ज्ञानी व ज्ञान के साधनों की आशातना न हो जाय उसके लिए खूब खूब प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

⌘

17 रोहक की चतुराई

उज्जयिनी नगरी से कुछ दूरी पर एक छोटा सा गाँव था, जहाँ नट लोग रहते थे । वहाँ भरत नाम का एक नट था, जिसके पुत्र का नाम रोहक था । रोहक उम्र में छोटा था, लेकिन बुद्धि का बेताज बादशाह था ।

एक बार रोहक अपने पिता के साथ क्षिप्रा नदी के तट पर गया ।

पिता ने कहा, 'बेटा ! तू यहीं पर खेलना, मैं नगर में जाकर कुछ काम निपटाकर आता हूँ ।'

रोहक नदी तट पर खेल रहा था । अचानक उसे एक कुतूहल जगा और उसने नदी के तट पर उज्जयिनी नगरी का नकशा तैयार कर दिया ।

उसी समय उज्जयिनी नगरी का राजा घोडे पर सवार होकर उसी मार्ग से जा रहा था ।

वह राजा जैसे ही उस नकशे के पास आया., उस रोहक ने राजा को रोक लिया और बोला, 'यहाँ उज्जयिनी नगरी है...यह राजा का महल है...आप अपने घोड़े को दूर से ले जाओ ।'

बालक के इस कथन को सुनकर राजा को खूब आश्चर्य हुआ । एक छोटे से बालक की यह कैसी चतुराई...और यह कैसी हिंमत !

राजा ने सोचा, 'यह बालक बुद्धिशाळी लगता है, अतः मेरे मंत्री पद के लिए योग्य है...फिर भी इसकी मुझे विशेष परीक्षा करनी चाहिए ।'

वह राजा वहाँ से आगे बढ़ा और अपने राजमहल में चला गया ।

राजमहल में पहुँचने के बाद राजा ने उन ग्रामवासियों को कुछ आज्ञाएँ फरमाईं । राजा की उन आज्ञाओं को सुनकर गाँववाले चिंतातुर हो गए । वे आज्ञाएँ ऐसी थीं कि उनका पालन करना, उनके लिए कठिन था । दूसरी ओर राजा की आज्ञा का भंग करने की भी उनमें हिंमत नहीं थी । अब क्या किया जाय ?

आखिर यह बात रोहक तक पहुँची, रोहक ने कहा, `आपकी अनुमति हो तो मैं इसका रास्ता निकाल देता हूँ ।'

ग्रामवासियों ने अपनी सहमति प्रदान की ।

1) राजा की पहली आज्ञा थी :

`गाँव के बाहर जो बड़ी शिला है, उसका मंडप बनाओ ।' रोहक ने कहा, `शिला के नीचे गहरा खड्डा खोद कर उसमें स्तंभ, दीवार, चित्रकर्म आदि कर योग्य मंडप बना दो ।'

ग्रामवासियों ने वैसा ही किया ।

2) राजा की दूसरी आज्ञा थी - `इस भेड को ले जाओ, इसे खूब हरा-भरा घास खिलाओ । 15 दिन बाद वापस भेजो, परंतु इसका वजन बिल्कुल बढना नहीं चाहिए ।'

रोहक ने कहा, `इस भेड़ को खूब खिलाओ और इसे ऐसी जगह रखो, जहाँ पास में ही पिंजरे में बाघ हो ।'

लोगों ने वैसा ही किया ।

हराभरा घास खाने से भेड का वजन बढ़ता था. किंतु पिंजरे में रहे बाघ को देखते ही भय के मारे उसे पसीना छूट जाता था, खाया हुआ भी उसका पानी हो जाता था ।

15 दिन के बाद भी उस भेड़ का वजन उतना ही था, जितना 15 दिन पहले था ।

3) राजा की तीसरी आज्ञा थी - `इस मुर्गे को ले जाओ और इसे अकेले ही लडने दो । रोहक ने कहा, `इस मुर्गे के सामने एक बहुत बड़ा दर्पण रख दो । दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखकर वह मुर्गा लड़ने लगा ।

4) राजा की चौथी आज्ञा थी - `तुम्हारे गाँव के बाहर जो रेती है उसमें से एक रस्सी (डोरी) बनाकर भेजो ।'

रोहक ने कहा, ``आपकी आज्ञा स्वीकार्य है किंतु रस्सी कितनी मोटी-

पतली बनानी है ? आप अपने खजाने में से एक नमूना भिजवा दो ।''

नमूना आया नहीं, अतः रस्सी भी बनानी न पड़ी ।

5) राजा की पाँचवीं आज्ञा थी - `इस बीमार हाथी को ले जाओ, इसे खिलाओ पिलाओ, किंतु इसकी मृत्यु के समाचार मत देना ।

वह हाथी गाँव में आया, किंतु कुछ ही दिनों बाद मर गया ।

रोहक की बुद्धि से गाँववालों ने राजा को समाचार भिजवाए, `आपका हाथी खाता नहीं है, पीता नहीं है, चलता नहीं है । खेलता नहीं है, अब क्या करना ?'

राजा ने पूछा, `तो क्या वह मर गया हैं ?'

`यह तो हमें पता नहीं है ।'

6) राजा की छठी आज्ञा थी - `तुम्हारे गांव में मीठे जल का कुआ है, वह कुआ यहाँ भिजवा दो ।'

रोहक की बुद्धि से गाँववालों ने कहा, `ग्रामवासी लोग शहरवालों के पास शर्मिंदा होते हैं अतः हमारा कुआ अकेला नहीं आ सकता, आप उसे लेने के लिए शहर का कुआ भिजवा दें, वह जरूर आ जाएगा ।'

रोहक के इस बुद्धि चातुर्य को देख राजा अत्यंत ही प्रसन्न हुआ । खुश होकर राजा ने उसे अपने मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया ।

मोह का नशा

शराब के नशे में चकचूर बने व्यक्ति को
सामने खड़ा व्यक्ति भाई हो तो भी
उसका ख्याल नहीं रहता है,
उसी प्रकार मोह के नशे में चकचूर बने व्यक्ति
को भगवान सामने खड़े हों तो भी पता नहीं
चलता है । कि ये भगवान है ।

18 बारहवां अंग-दष्टिवाद

(चौदह पूर्व)

तारक तीर्थंकर परमात्मा के मुखारविंद से त्रिपदी का श्रवण कर गणधर भगवंत द्वादशांगी की रचना करते हैं । उन 12 अंगों में से आज 11 अंग विद्यमान हैं, जो 45 आगमों में मुख्य कहलाते है । 12 वें अंग-दृष्टिवाद का विच्छेद हो गया है ।

भगवान महावीर के शासन में भगवान महावीर की पाट परंपरा में आए हुए सुधर्मास्वामी और जंबूस्वामी तो केवलज्ञानी हुए ।

जंबूस्वामी की परंपरा में आए हुए प्रभवस्वामी, शय्यंभवसूरिजी, यशोभद्रसूरिजी, संभूतिविजयजी, भद्रबाहुस्वामीजी आदि सूत्र व अर्थ से 14 पूर्वी हुए, जबकि भद्रबाहु स्वामी के पट्टधर स्थूलभद्रस्वामी को सूत्र व अर्थ से 10 पूर्वों का ज्ञान था और शेष चार पूर्वों का सूत्र से ज्ञान था, अर्थ से नहीं !

कालक्रम से पूर्वों का ज्ञान कम होता गया । पू. वज्रस्वामी 10 पूर्वधर थे और आर्यरक्षितसूरिजी म. 9.5 पूर्व के ज्ञाता थे ।

संख्या	पूर्वो के नाम	हाथी प्रमाण स्याही से लिखे जा सके
1.	उत्पाद पूर्व	1
2.	अग्रायणीय पूर्व	2
3.	वीर्यप्रवाद पूर्व	4
4.	अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व	8
5.	ज्ञानप्रवाद पूर्व	16
6.	सत्यप्रवाद पूर्व	32
7.	आत्मप्रवाद पूर्व	64
8.	कर्मप्रवाद पूर्व	128
9.	प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व	256

10.	विद्या प्रवाद पूर्व	512
11.	कल्याण प्रवाद पूर्व	1024
12.	प्राणायाम पूर्व	2048
13.	क्रियाविशाल पूर्व	4096
14.	लोकबिंदु सार	8192
कुल		**16383 हाथी प्रमाण**

14 पूर्वधर महात्मा श्रुतकेवली कहलाते हैं । वे श्रुत के पारगामी होते हैं । केवली भगवंत अपने केवलज्ञान द्वारा किसी भी पदार्थ का सूक्ष्म निरूपण कर सकते हैं, उसी प्रकार 14 पूर्वधर महर्षि भी कर सकते हैं । अर्थात् केवली भगवंत की देशना और श्रुतकेवली की धर्मदेशना में कोई फर्क नहीं होता है ।

14 पूर्वधर महर्षि एक अन्तर्मुहूर्त जितनेकाल में 14 पूर्वों का स्वाध्याय कर सकते हैं ।

आहारक लब्धि भी 14 पूर्वधर महर्षि को ही होती है, जिस लब्धि के द्वारा वे 1 हाथ प्रमाण आहारक शरीर बनाकर उस शरीर को महाविदेह क्षेत्र में भेज सकते हैं और तीर्थंकर परमात्मा के मुख से अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं ।

पारिणामिकी बुद्धि

एक राजा था । उसके राज्य में अनेक वृद्ध और कुछ युवा मंत्री थे, युवा मंत्रियों के मन में वृद्ध मंत्रियों के प्रति ईर्ष्या थी । युवा मंत्रियों ने मिलकर राजा को शिकायत की, 'वृद्ध मंत्री अब राज्य की देख-भाल करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि वे अतिवृद्ध हो गये हैं, अतः उन्हें सेवा-निवृत्त कर देना चाहिए ।'

राजा बहुत ही होशियार था, वह जानता था कि वृद्ध-मंत्री अति बुद्धिशाली और दीर्घ अनुभवी हैं, अतः उनकी बुद्धि का प्रदर्शन युवा मंत्रियों के सामने करना चाहिए ।

राजा ने युवा-मंत्रियों को बुलाकर एक प्रश्न किया, 'यदि कोई व्यक्ति मेरी दाढ़ी खींचे तो उसे क्या सजा देनी चाहिए ?'

प्रश्न सुनते ही युवा मंत्री शीघ्र बोल उठे, 'राजन् ! उस व्यक्ति का तत्काल शिरोच्छेद कर देना चाहिए ।'

फिर राजा ने अपने वृद्ध मंत्रियों को बुलाकर यही प्रश्न किया, उन्होंने कहा, `राजन् ! हम विचार कर जवाब देंगे ।' उन्होंने परस्पर विचारविमर्श किया और निर्णय लिया कि बाल राजकुमार के सिवाय राजा की दाढ़ी कौन खींच सकेगा ? अत: उन्होंने जाकर युवा मंत्रियों के बीच बैठे राजा को कहा, `हे राजन् ! आपकी दाढ़ी खींचने वाले को ज्यादा प्यार करना चाहिए ।'

अपने जवाब से विपरीत जवाब सुनकर युवा मंत्री विचार में पड़ गये, फिर राजा ने अपनी गोद में बैठे हुए राजकुमार की ओर इशारा कर युवा मंत्रियों से कहा, ``बोलो ! मेरी दाढ़ी खींचने वाले राजकुमार का तुम्हारे मतानुसार तो शिरोच्छेद किया जाय न !'' युवा मंत्री शर्मिन्दा हो गये ।

उपर्युक्त दृष्टांत में युवा मंत्रियों ने तत्काल निर्णय तो किया परन्तु दीर्घ-दृष्टि से विचार नहीं किया, जिससे वे अपने निर्णय को प्रमाणित न कर सके ।

पारिणामिकी बुद्धि

उम्र बढ़ने पर जो बुद्धि परिपक्व होती है, उसे पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं ।

वैनयिकी बुद्धि

गुरुजनों के प्रति विनय, आदर व समर्पण भाव रखने से जो बुद्धि विकसित होती है, उसे वैनयिकी बुद्धि कहते हैं ।

विनय से विद्या

एक गुरु के दो शिष्य थे । उन दो शिष्यों में से एक अत्यंत ही नम्र व विनीत था, जब कि दूसरा शिष्य अत्यंत ही उच्छृंखल था ।

गुरु ने दोनों शिष्यों को समान अध्ययन कराया था परंतु पहला शिष्य विनीत होने के कारण वह शास्त्र के गंभीर रहस्यों को अच्छी तरह से समझ सका था, जबकि दूसरा शिष्य अविनीत होने के कारण शास्त्र के परमार्थ को नहीं पा सका था ।

गुरुदेव की अनुमति पाकर वे दोनों शिष्य अपने गाँव लौटे ।

गाँव में प्रवेश करते ही एक बुढिया माजी ने उन दोनों को पूछा, `वर्षों बीत गए, मेरा पुत्र विदेश गया, वह घर कब लौटेगा ?'

इतना कहने के साथ ही माजी के सिर पर रहा पानी का घड़ा नीचे गिर पड़ा और फूट गया ।

यह दृश्य देखते ही उस उच्छृंखल शिष्य ने कहा, `यह घड़ा फूट गया, इससे सूचित होता है कि तुम्हारा पुत्र मर गया है ।'

इस जवाब को सुनकर बुढ़िया को अत्यंत ही आघात लगा और वह करुण रुदन करने लगी ।

उसी समय उस विनीत शिष्य ने कहा, `माताजी ! आप रोती क्यों हो ? आपका पुत्र तो आपके घर लौट आया है, और वह आपकी इंतजारी कर रहा है, आप घर लौटकर देखें ।

घड़ा फूटने पर तो यह सूचित होता है कि मिट्टी का घड़ा मिट्टी में मिल गया अर्थात् आपका बेटा आपको मिल गया ।

बुढ़िया अपने घर गई तो उसने देखा सचमुच, उसका बेटा घर लौट आया है और वह अपनी माँ की इंतजारी कर रहा था ।

यद्यपि गुरुदेव ने उन दोनों शिष्यों को ज्ञान देने में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया था, किंतु जो विनीत था, उसे ज्ञान परिणत हुआ और जो अविनीत था, उसे ज्ञान परिणत नहीं हुआ ।

औत्पातिकी बुद्धि

औत्पातिकी बुद्धि का अर्थ है हाजिर जवाबी । प्रश्न खड़ा होने के साथ ही योग्य एवं समुचित जवाब देनेवाली सूक्ष्म प्रज्ञा को औत्पातिकी बुद्धि कहते है । इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर ऐसे अनेक दृष्टांत विद्यमान हैं ।

अभयकुमार की चतुराई

मगध के सम्राट् श्रेणिक महाराजा किसी योग्य व्यक्ति को मुख्य मंत्री पद प्रदान करना चाहते थे । उस पद की योग्यता जाँच करने के लिए उन्होंने नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि-

`जो व्यक्ति कुए के तट पर खड़ा रहकर कुए में गिरी हुई सोने की अँगूठी को बाहर निकाल देगा, उसे श्रेणिक महाराजा मुख्य मंत्री का पद प्रदान करेंगे ।'

पटह की इस बात को सुनकर अनेक व्यक्तियों ने आकर प्रयत्न किए,

परंतु कोई भी व्यक्ति कुए में गिरी हुई उस अँगूठी को बाहर नहीं निकाल सका !

किसी को कोई उपाय सूझ नहीं रहा था, सब परेशान थे !

उसी समय एक नन्हासा बालक, जिसका नाम अभयकुमार था, वह उस भीड के पास आया । उसने लोगों के मुख से सारी घटना जान ली ।

उसके बाद उस बालक ने कहा, 'आप सभी की अनुमति हो तो मैं इस कुए के तट पर ही खड़ा रहकर उस अंगूठी को बाहर निकाल दूंगा ।'

बालक की यह बात सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ, 'यह छोटासा बालक उस अंगूठी को कैसे निकाल पाएगा ?'

नगरवासियों ने उस बालक को अपनी सहमति दी !

लोगों की सहमति मिलते ही वह अभय उस कुए के पास आया । सारी परिस्थिति को देखते ही तत्काल उसे उपाय सूझ आया ।

आसपास घूमकर वह गाय का गोबर ले आया ! कुए के तट पर खडे रहकर उसने वह गोबर उस अँगूठी पर फेंका ! अँगूठी उस गोबर में चिपक गई ।

उसके बाद उस गोबर के आस-पास उसने जलती हुई लकड़ियाँ डालीं । आग की गर्मी से धीरे धीरे वह गोबर सूखने लगा । कुछ समय बाद वह गोबर सूख गया ।

उसके बाद जल से भरे पास के कुए में से पानी मंगवाकर उस सूखे कुए में डाला गया । कुछ समय में वह कुआ जल से भर गया, इसके साथ ही सूखा गोबर (कंडा) भी पानी की सतह पर आ गया ।

वह कंडा पानी में तैरने लगा । अवसर देख अभय ने वह कंडा पकड़ लिया और उसमें रही हुई सोने की अँगूठी बाहर निकालकर श्रेणिक महाराजा को दे दी ।

बालक की इस चतुराई को देखकर श्रेणिक ने उसे मुख्य मंत्री का पद प्रदान किया ।

कार्मिकी बुद्धि

प्रतिदिन एक ही काम करते रहने से काम करने में जो होशियारी आती है और व्यक्ति वह काम अच्छे ढंग से कर पाता है, उसे कार्मिकी बुद्धि कहते हैं ।

19 अवधिज्ञान-मन:पर्यवज्ञान-केवलज्ञान

अणुगामि-वड्ढमाणय-पडिवाइयरविहा छहा ओही ।
रिउमइ विउलमइ, मणनाणं केवलमिगविहाणं ।।8।।

शब्दार्थ-

अणुगामि=अनुगामी, **वड्ढमाणय**=वृद्धिंगत, **पडिवाइ**=प्रतिपाती । **इयरविहा**=विरुद्ध प्रकार से । **छहा**=छह प्रकार से, **ओही**=अवधिज्ञान, **रिउमइ**=ऋजुमति, **विउलमइ**=विपुलमति, **मणनाणं**=मन:पर्यवज्ञान, **केवलं**=केवलज्ञान, **इगविहाणं**=एक प्रकार का ।

गाथार्थ-

अनुगामी, वर्धमान, प्रतिपाती तथा इनसे विपरीत अननुगामी, हीयमान, अप्रतिपाती । इन छह प्रकारवाला अवधिज्ञान है ।

ऋजुमति और विपुलमति इन दो प्रकार से मन:पर्यवज्ञान है तथा केवलज्ञान एक ही प्रकार का है ।

विवेचन

मति ज्ञान और श्रुतज्ञान, परोक्ष ज्ञान हैं, जब कि अवधिज्ञान आदि तीनों ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान हैं । मति व श्रुतज्ञान में इन्द्रिय व मन की अपेक्षा रहती है, जब कि अवधिज्ञान आदि प्रत्यक्ष ज्ञान हैं, उनमें मन व इन्द्रिय की अपेक्षा नहीं रहती है, ये आत्म प्रत्यक्ष ज्ञान हैं ।

इस अवधिज्ञान के मुख्य दो भेद हैं–

1) भव प्रत्यय और 2) गुण प्रत्यय

भव प्रत्यय अवधिज्ञान

भव के निमित्त को पाकर जो अवधिज्ञान पैदा होता है, उसे भव प्रत्ययिक अवधिज्ञान कहते हैं । जैसे कोई जीव पंखी के रूप में पैदा होता है तो उस भव के कारण उसे उड़ने की कला हासिल हो जाती है । कोई जीव

जलचर प्राणी, मछली आदि के रूप में पैदा होता है तो उसे तैरना आ जाता है, बस, इसी प्रकार देव और नरक के भव को प्राप्त करते ही जो अवधिज्ञान हो जाता है, उसे भव प्रत्ययिक अवधिज्ञान कहते हैं ।

देव और नारक को होनेवाले अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम भी काम करता है, परंतु उसकी गौणता होने से भव की मुख्यता कही गई है ।

2. गुणप्रत्यय अवधिज्ञान : रत्नत्रयी की आराधना के फलस्वरूप मनुष्य और तिर्यंचों को जो अवधिज्ञान पैदा होता है, उसे गुण-प्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं ।

इस अवधिज्ञान के छह भेद हैं

1) आनुगामिक अवधिज्ञान : जो अवधिज्ञान उत्पत्ति क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्र में जाने पर भी नष्ट नहीं होता है, बल्कि साथ में ही चलता है, उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं ।

इस अवधिज्ञान द्वारा जीव अपने चारों ओर के संख्य असंख्य योजन में रहे रूपी द्रव्यों को जान सकता है ।

2) अननुगामी अवधिज्ञान : जिस स्थल में जीव को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ हो, उसी क्षेत्र में रहने पर जो अवधिज्ञान रहता हो उसे अननुगामी कहते हैं अर्थात् उत्पत्ति क्षेत्र से अन्य क्षेत्र में जाने पर जो अवधिज्ञान साथ में नहीं चलता हो उसे अननुगामी अवधिज्ञान कहते है ।

3) वर्धमान अवधिज्ञान : जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के समय अल्प विषयवाला हो और बाद में क्रमशः बढ़ता जाता हो, उसे वर्धमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

4) हीयमान अवधिज्ञान : जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के समय अधिक विषयवाला होने पर भी परिणामों की अशुद्धि के कारण धीरे-धीरे अल्प-अल्पतर विषयवाला बनता हो, उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

5) प्रतिपाती अवधिज्ञान : जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद हवा के झोंके से बुझनेवाले दीपक की भाँति, समाप्त होनेवाला हो उसे प्रतिपाती

अवधिज्ञान कहते हैं ।

6) अप्रतिपाती अवधिज्ञान : जो अवधिज्ञान उत्पत्ति के बाद कभी नष्ट होने वाला नहीं हो, उसे अप्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं । ऐसा अवधिज्ञानी संपूर्ण लोक तथा अलोक के एक आकाश प्रदेश को भी देख-जान सकता है । यह अप्रतिपाती अवधिज्ञान बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों को अंत समय में होता है और उसके बाद तेरहवाँ गुणस्थान प्राप्त होने के प्रथम समय के साथ केवलज्ञान पैदा हो जाता है ।

सामान्य से चारों गतियों के जीवों को अवधिज्ञान हो सकता है, परंतु मनुष्य को अवधिज्ञान के सभी छह भेद घट सकते हैं । तिर्यंचों को अप्रतिपाती अवधिज्ञान नहीं होता है ।

द्रव्य से अवधिज्ञानी अनंत रूपी द्रव्यों को जानते-देखते हैं और उत्कृष्ट से सभी रूपी द्रव्यों को जानते हैं । क्षेत्र से अवधिज्ञानी जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र को जानतें हैं और उत्कृष्ट से लोक जितने असंख्य खंडों को जान सकते हैं ।

काल से अवधिज्ञानी आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल में हुए रूपी द्रव्यों को जान-देख सकते हैं तथा उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में हुए पदार्थों को जान-देख सकते हैं ।

भाव से अवधिज्ञानी जघन्य से रूपी द्रव्यों की अनंत पर्यायों को और उत्कृष्ट से भी रूपी द्रव्यों की अनंत पर्यायों को देख-जान सकते हैं ।

मनःपर्यवज्ञान : ढाई द्वीप में रहे संज्ञी प्राणियों के मनोगत भावों को मनःपर्यवज्ञानी जान सकता है । इसके दो भेद हैं–

1) ऋजुमति : दूसरे के मन में रहे पदार्थ के सामान्य स्वरूप को जानना, अर्थात् विषय के सामान्य स्वरूप को जानना, ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान कहलाता है ।

2) विपुलमति : दूसरे के मन में रहे पदार्थ के विशेष स्वरूप को जानना, विपुलमति मनःपर्यवज्ञान कहलाता है । द्रव्य से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान, मनोवर्गणा के अनंत प्रदेशवाले स्कंधों को जानता है, जबकि विपुलमति, ऋजुमति की अपेक्षा अधिक प्रदेशवाले स्कंधों को विशुद्ध रूप से

जानता-देखता है ।

क्षेत्र से ऋजुमति मनःपर्यवज्ञानी जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र को और उत्कृष्ट से रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे क्षुल्लक प्रतर को और ऊपर ज्योतिष चक्र के ऊपरितल पर्यंत और तिरछे ढाई द्वीप पर्यंत संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानता है, जब कि विपुलमति ऋजुमति की अपेक्षा तिरछी दिशा में ढाई अंगुल अधिक, संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानता है । काल से ऋजुमति जघन्य से पल्योपम के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट से भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत, भविष्य के मनोगत भावों को जानता देखता है और विपुलमति, ऋजुमति की अपेक्षा कुछ अधिक काल के मनोगत भावों को विशुद्ध रूप में देखता है । भाव से ऋजुमति मनोगत भावों के असंख्य पर्यायों को जानता देखता है और विपुलमति, ऋजुमति की अपेक्षा कुछ अधिक पर्यायों को विशुद्ध रूप में जानता-देखता है ।

ऋजुमति ज्ञान उत्पन्न होने के बाद कभी नष्ट भी हो सकता है जबकि विपुलमति जाता नहीं है, अर्थात् विपुलमति मनःपर्यवज्ञान के बाद अवश्य केवलज्ञान की प्राप्ति होती है ।

तारक अरिहंत परमात्मा जब दीक्षा अंगीकार करते हैं, तब उन्हें चौथा मनःपर्यवज्ञान पैदा होता है ।

अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान में अंतर :

1) अवधिज्ञानी रूपी द्रव्यों को स्पष्ट जानता है, अतः विशुद्ध है, जबकि मनःपर्यवज्ञानी मनोगत भावों को अत्यंत स्पष्ट जानता है, अतः विशुद्धतर है ।

2) अवधिज्ञानी अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर संपूर्ण लोक में रहे रूपी द्रव्यों को जान सकता है, जबकि मनःपर्यवज्ञानी ढाई द्वीप में रहे संज्ञी जीवों के मन के विचारों को जान सकता है ।

3) अवधिज्ञान चारों गतियों में हो सकता है जबकि मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त संयमी मनुष्य को ही होता है ।

4) अवधिज्ञानी कतिपय पर्यायों के साथ संपूर्ण रूपी द्रव्यों को जानता

है जबकि मन:पर्यवज्ञानी अवधिज्ञान की अपेक्षा अनंतवें भाग प्रमाण, मात्र मनोद्रव्य को जानते हैं ।

5) अवधिज्ञान परभव में साथ में जा सकता है, जब कि मन:पर्यवज्ञान एक ही भव में रहता है ।

सम्यक्त्व भ्रष्ट होने पर अवधिज्ञान, विभंगज्ञान में बदल जाता है, जबकि मन:पर्यवज्ञान कभी विपरीत नहीं होता है ।

मनोद्रव्य रूपी होने से विशुद्ध अवधिज्ञान से मन के विचारों को भी जाना जा सकता है । तारक अरिहंत परमात्मा, अनुत्तर देवों को द्रव्य मन से ही उत्तर प्रदान करते हैं ।

केवलज्ञान

केवलज्ञान अर्थात् संपूर्ण ज्ञान ! केवलज्ञान के द्वारा समस्त द्रव्यों के समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष देखा-जाना जा सकता है । केवलज्ञान के भेद-प्रभेद नहीं है ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद आत्मा उसी भव में मोक्ष में जाती है ।

इस प्रकार ज्ञान के 51 भेद हुए ।

मतिज्ञान	28 भेद
श्रुतज्ञान	14 भेद
अवधिज्ञान	6 भेद
मन:पर्यवज्ञान	2 भेद
केवलज्ञान	1 भेद
	51 भेद

एसिं जं आवरणं, पडुव्व चक्खुस्स तं तयावरणं ।
दंसण चउ पण निद्दा वित्तिसमं दंसणावरणं ।।9।।

शब्दार्थ-

एसिं=इन ज्ञानों का, **जं**=जो, **आवरण**=आच्छादन, **पडुव्व**=पट्टे की तरह, **चक्खुस्स**=आँख का, **तं**=वह, **तयावरणं**=उसका आवरण,

दंसणचउ=दर्शनावरणीय चार, **पण-निद्दा=**पाँच निद्राएँ, **वित्ति समं=**पहरेदार की तरह, **दंसणावरणं=**दर्शनावरणीय कर्म ।

गाथार्थ :

आँख के ऊपर लगी पट्टी के आवरण की तरह मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञानों के ऊपर आवरण है ।

दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल के समान है, चार दर्शन पर आवरण रूप और पाँच निद्रा रूप, इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के कुल नौ भेद हैं ।

विवेचन :

ज्ञान के पांच प्रकार और इसके आवरक कर्म :

1. मति ज्ञान और मति ज्ञानावरणीय कर्म : मन और इन्द्रियों की सहायता से होने वाले पदार्थ बोध को मतिज्ञान कहते हैं और उसके आवरक कर्म को मतिज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

2. श्रुतज्ञान एवं श्रुतज्ञानावरणीय कर्म : शब्द का श्रवण कर जो अर्थ-बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं और उसे रोकने वाले कर्म को श्रुतज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

3. अवधिज्ञान एवं अवधिज्ञानावरणीय कर्म : इन्द्रिय और मन की सहायता बिना द्रव्य-क्षेत्र-काल की मर्यादा में आत्मा को प्रत्यक्ष रूपी द्रव्यों का जो ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं और उसे रोकने वाले कर्म को अवधिज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

4. मन:पर्यव ज्ञान एवं मन:पर्यव ज्ञानावरणीय कर्म : इन्द्रिय और मन की सहायता बिना ढाई द्वीप में रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय के मनोगत भावों को आत्मा के द्वारा साक्षात् जाना जाता है उसे मन: पर्यव ज्ञान कहते हैं और उसे रोकने वाले कर्म को मन:पर्यवज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

5. केवलज्ञान और केवलज्ञानावरणीय कर्म : इन्द्रिय और मन की सहायता बिना जगत् में रहे हुए समस्त रूपी-अरूपी पदार्थों को हाथ में रहे आँवले की भाँति प्रत्यक्ष देखा जाए उसे केवलज्ञान कहते हैं और उसके आवरक कर्म को केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

प्रत्यक्ष-ज्ञान और परोक्ष ज्ञान-

1. मन व इन्द्रियों के माध्यम से होने वाले मति और श्रुत ज्ञान, परोक्षज्ञान कहलाते हैं।

2. मन व इन्द्रियों की सहायता बिना होने वाले आत्म प्रत्यक्ष अवधि, मन:पर्यव व केवलज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानावरणीय कर्मबंध के हेतु

1. ज्ञानी की आशातना करने से।

2. ज्ञान पढने में विघ्न डालने से।

3. ज्ञानी का अविनय-अनादर करने से।

4. ज्ञानी व ज्ञान के साधनों पर थूकने से, मल-मूत्र आदि करने से।

5. ज्ञानी की निंदा करने से।

6. ज्ञान का विनाश करने से।

7. ज्ञान का दुरुपयोग करने से।

ज्ञानावरणीय कर्मबंध से बचने के उपाय :

1. छपे हुए कागज-पुस्तक को जलाना नहीं चाहिए।

2. छपी पुस्तकों को पटकना, फेंकना और मोड़ना नहीं चाहिए।

3. छपी पुस्तक-लिखे कागज पर मल-मूत्र नहीं करना चाहिए और उन कागज आदि से मल-मूत्र साफ नहीं करने चाहिए।

4. छपे हुए कागज पर भोजन नहीं करना चाहिए।

5. जूठे मुँह बोलना नहीं चाहिए।

6. अध्ययन कर रहे किसी को अंतराय नहीं करना चाहिए।

7. एम.सी. काल में बहिनों को पुस्तक आदि नहीं पढ़नी चाहिए।

8. जिन वचन का गलत अर्थ नहीं करना चाहिए।

9. ज्ञानद्रव्य का भक्षण नहीं करना चाहिए। उसका पूरी सावधानी से रक्षण करना चाहिए।

10. पेन-पेंसिल से कान साफ नहीं करना चाहिए।

11. पुस्तक-अखबार आदि से हवा नहीं डालनी चाहिए ।

12. पुस्तक पर बैठना नहीं चाहिए ।

ज्ञान आराधना के आठ आचार

1. काल-अस्वाध्याय-अकाल समय में आगम व पूर्वधर रचित ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । निषिद्ध काल में स्वाध्याय करने से प्रभु-आज्ञा का भंग होता है और ज्ञान की विराधना होती है ।

2. विनय-ज्ञानदाता गुरु का विनय करते हुए स्वाध्याय करना चाहिए । अविनय से प्राप्त ज्ञान स्व-पर उभय के अकल्याण का कारण बनता है ।

3. बहुमान-ज्ञानदाता गुरुदेव के प्रति हृदय में पूरा आदर-सम्मान व बहुमान भाव होना चाहिए । जिसके दिल में बहुमान नहीं है, वह ज्ञान के वास्तविक फल को प्राप्त नहीं कर सकता । गुरु बहुमान से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है ।

4. उपधान-नमस्कार-महामंत्र आदि सूत्रों को विधिपूर्वक गुरुमुख से ग्रहण करने के लिए उपधान की आराधना आवश्यक है । साधु जीवन में भी आगम ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार पाने के लिए गुर्वाज्ञानुसार उन उन आगमों के योगोद्वहन करने पड़ते हैं ।

5. अनिह्नवता-जिस गुरुदेव के पास ज्ञानाभ्यास किया हो उन्हें कभी नहीं भूलना चाहिए । उनके नाम को छिपाने से ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध होता है ।

6. व्यंजन-गणधर गुंफित सूत्रों का अस्खलित शुद्ध उच्चारण करना चाहिए । अशुद्ध उच्चारण से सूत्र का अर्थ ही बदल जाता है । 'जिणाणं' के बदले जिण्णाणं बोलने से एकदम अर्थ बदल जाता है । जिणाणं का अर्थ है राग-द्वेष के विजेता और जिण्णाणं का अर्थ है-जीर्ण बने हुए को ।

अन्नत्थ का अर्थ है अन्यत्र और अनत्थ का अर्थ हो जाता है अनर्थ । चिता और चिंता में एक बिंदी का फर्क है किंतु अर्थ में रात दिन का अंतर पड़ जाता है ।

7. अर्थ-सूत्रों का यथार्थ अर्थ करना चाहिए । मनःकल्पित-विपरीत अर्थ करने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है ।

8. तदुभय-सूत्र के सही उच्चारण के साथ-साथ उसके सही अर्थ को नजर समक्ष लाना चाहिए । सूत्र-अर्थ का सही कथन करना चाहिए ।

ज्ञान के इन आठ आचारों का पालन करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय अथवा क्षयोपशम होता है ।

स्वाध्याय के पाँच प्रकार-

1. वाचना-बहुमान पूर्वक, गुरु को वंदन करके योग्य स्थान पर बैठकर ज्ञानी गुरुदेव के पास सूत्र व अर्थ की वाचना (पाठ) ग्रहण करनी चाहिए । गुरुदेव के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए ।

2. पृच्छना-गुरुदेव के पास जो पढ़ा हो, उसमें कहीं शंका पड़े तो विनयपूर्वक गुरुदेव को पूछना चाहिए, उसे पृच्छना कहते हैं ।

3. परावर्तना-गुरुदेव के पास जो सूत्र-अर्थ ग्रहण कर कंठस्थ किए हों उन्हें पुनःपुनः याद करना चाहिए ।

4. अनुप्रेक्षा-गुरुदेव के पास जो सूत्र-अर्थ आदि ग्रहण किया हो उस पर द्रव्य, गुण व पर्याय से, नय-निक्षेप से, नय-प्रमाण से अनुप्रेक्षा करनी चाहिए । अनुप्रेक्षा करने से पदार्थ स्थिर हो जाता है ।

5. धर्मकथा-गुरुदेव के पास जो सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया हो, वह ज्ञान दूसरों को देना, उसे धर्मकथा कहते हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का फल

1. अज्ञानता । 2. मूर्खता । 3. स्मृति-भ्रंशता । 4. मूकता ।

ज्ञानावरणीय कर्म की उपमा–

जगत् में रहे कई पदार्थों को उपमा द्वारा भी समझाया जाता है । ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आँख पर लगी पट्टी जैसा है । जिस प्रकार आँख पर मोटे कपड़े की पट्टी बाँध दी जाती है तो कुछ भी दिखता नहीं हैं, परंतु उस पट्टी में कहीं छेद हो जाय अथवा पट्टी का कपडा पतला हो तो कुछ दिखाई देता है । बस, इसी प्रकार जब ज्ञानावरणीय कर्म उदय में आता है, तब आत्मा में रहे ज्ञान गुण के ऊपर आवरण आ जाता है, परंतु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो तो आत्मा में कुछ अंश में ज्ञान प्रगट होता है और उस कर्म का सर्वथा क्षय हो जाय तो आत्मा में अनंतज्ञान गुण प्रगट हो जाता है ।

20 दूसरा दर्शनावरणीय कर्म

जगत् में रहे समस्त पदार्थों में सामान्य धर्म और विशेष धर्म रहे हुए है। वस्तु में रहे सामान्य धर्म के बोध को दर्शन कहा जाता है और वस्तु में रहे विशेष बोध को ज्ञान कहा जाता है।

वस्तु में रहे सामान्य गुण के बोध को रोकने वाला कर्म दर्शनावरणीय कहलाता है और वस्तु में रहे विशेष गुण के बोध को रोकने वाला कर्म ज्ञानावरणीय कहलाता है।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के बंध के हेतु समान ही हैं। जिस प्रवृत्ति से ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृति का बंध होता है, उसी प्रवृत्ति से दर्शनावरणीय कर्म का भी बंध होता है।

दर्शनावरणीय कर्म के बंध की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण है।

उपमा : दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल के समान है। कोई व्यक्ति राजा से मिलना चाहता हो, परंतु द्वारपाल की इच्छा न हो तो वह उसे बाहर ही द्वार पर रोक देता है। बस, इसी प्रकार यह कर्म भी आत्मा में रही दर्शन शक्ति को रोक देता है।

चक्खु दिट्ठी अचक्खु-सेसिंदिअ ओहि केवलेहिं च।
दंसणमिह सामन्नं तस्सावरणं तयं चउहा ॥10॥

शब्दार्थ-

चक्खु=आँख, **दिट्ठी**=दृष्टि, **अचक्खु**=चक्षु सिवाय, **सेसिंदिय**=शेष इन्द्रियाँ, **ओहि**=अवधि, **केवलहिं**=केवल द्वारा, **दंसणमिह**=यहाँ दर्शन, **सामन्नं**=सामान्य, **तस्सावरणं**=उसका आवरण, **तयं**=वह, **चउहा**=चार प्रकार,

गाथार्थ-

चक्षु अर्थात् आँख, अचक्षु अर्थात् शेष इन्द्रियाँ, अवधि और केवल

द्वारा होनेवाले सामान्य ज्ञान को दर्शन कहते हैं । यह आवरण चार प्रकार का है ।

1. चक्षुदर्शनावरणीय : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को आँख नहीं मिलती है अथवा मिली हो तो भी कमजोर होती है । जन्मांधता, मोतिया बिंदु, झामरा, रतांधता आदि अनेक प्रकार की आँख की बीमारियाँ इस कर्म के उदय से होती है । इस कर्म का उदय आँख से होने वाले सामान्य ज्ञान में बाधक बनता है ।

2. अचक्षु दर्शनावरणीय : आँख को छोड़कर, त्वचा, जीभ, नाक और कान के द्वारा होनेवाले सामान्य बोध को अचक्षु दर्शन कहते हैं । इस कर्म के उदय से आँख सिवाय की शेष चार इन्द्रियाँ बराबर नहीं मिलती हैं अथवा गड़बड़वाली मिलती हैं । चर्मरोग, गूंगापना, नाक के रोग, बहरापना, कान के रोग आदि इस कर्म के उदय के कारण होते हैं । अर्थात् इस कर्म के उदय से चक्षु सिवाय चार इन्द्रियों तथा मन से होने वाले सामान्य ज्ञान में बाधाएँ खड़ी होती हैं ।

3. अवधि दर्शनावरणीय : अवधिज्ञान के पहले अवधिदर्शन पैदा होता है । उस अवधिदर्शन को रोकनेवाला कर्म अवधिदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है ।

4. केवलदर्शनावरणीय : आत्मा में रहे केवलदर्शन गुण को रोकने वाला कर्म केवल दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है ।

पुरुषार्थ

सूर्य प्रकाश देता है, परंतु उस प्रकाश का सही उपयोग करने के लिए पुरुषार्थ तो हमें ही करना पडता है, सद्गुरु हमें सही दिशा का बोध देते हैं, परंतु उस दिशा की ओर चलने का पुरुषार्थ तो हमें स्वयं ही करना पड़ता है ।

21 निद्रा-पंचक

सुह पडिबोहा निद्दा, निद्दा-निद्दा य दुक्ख पडिबोहा ।
पयला ठिओवट्ठिस्स, पयलपयला उ चंकमओ ।।11।।

शब्दार्थ-

सुह पडिबोहा=सुखपूर्वक जगे, **निद्दा=**निद्रा । **निद्दा-निद्दा=**निद्रानिद्रा, **दुक्ख पडिबोहा=**कठिनाई से जगे । **पयला=**प्रचला, **ठिओवट्ठिस्स=**खड़े और बैठे । **पयल पयला=**प्रचला प्रचला, **चंकमओ=**चलते-चलते ।

गाथार्थ-

सोया हुआ व्यक्ति सुखपूर्वक जागृत हो उसे निद्रा कहते हैं, जिसे मुश्किल से जगाया जा सके, उसे निद्रा निद्रा कहते हैं । खड़े-खड़े या बैठे बैठे नींद आ जाय उसे प्रचला कहते हैं और चलते चलते ही नींद आ जाय तो उसे प्रचला-प्रचला कहते हैं ।

विवेचन-

इस गाथा में चार प्रकार की निद्राओं के नाम और उनके लक्षण बताए गए हैं ।

निद्रा का उदय होने पर जीव निश्चेष्ट जैसा हो जाता है, निद्रा में देखने, सुनने, सूँघने आदि की सभी क्रियाएँ बंद हो जाती हैं । अतः नींद में रहे व्यक्ति को किसी भी इन्द्रिय द्वारा होनेवाला सामान्यबोध भी नहीं होता है । निद्रा पंचक को सर्वघाती कहा गया है ।

चुटकी बजाने पर अथवा मात्र सामान्य आवाज करने पर व्यक्ति जग जाता है, उसे निद्रा का उदय कहा जाता है अर्थात् इस कर्म के उदय से व्यक्ति को सामान्य नींद आती है और व्यक्ति तुरंत ही जग जाता है । उदा. कुत्ते की नींद । थोड़ी सी आवाज होने पर कुत्ता जग जाता है ।

जिस कर्म के उदय से जीव को खूब गाढ़ नींद आती हो, जिस नींद में से जगाना मुश्किल हो, उसे निद्रा निद्रा कहते हैं। लोक व्यवहार में जिसे कुंभकर्ण की नींद कहते हैं।

बैठे-बैठे या खड़े-खड़े भी जो नींद आ जाती है, उसे प्रचला कहा जाता है।

चलते-चलते नींद आती हो, उसे प्रचला–प्रचला कहा जाता है।

दिणचिंति अत्थकरणी थीणद्धी अद्धचक्की अद्धबला।
महुलित्तखग्ग-धारा लिहणं व दुहा उ वेयणीयं ॥12॥

शब्दार्थ-

दिणचिंति=दिन में सोचा हुआ, **अत्थकरणी=**काम करनेवाली, **थीणद्धी=**स्त्यानर्द्धि, **अद्धचक्की=**अर्धचक्रवर्ती (वासुदेव), **अद्धबला=**आधाबल, **महुलित्त=**शहद से लिप्त, **खग्गधारा=**तलवार की धार, **लिहणं=**चाटना, **दुहा=**दो प्रकार का **वेयणीयं=**वेदनीय।

गाथार्थ-

दिन में सोचा हुआ कार्य रात्रि में नींद में ही कर ले, ऐसी निद्रावस्था को थीणद्धि कहते हैं। इस निद्रा के उदयवाले को अर्धचक्री अर्थात् वासुदेव से आधा बल होता है।

मधु (शहद) से लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान वेदनीय कर्म है, जो दो प्रकार का है।

विवेचन-

जिस व्यक्ति को थीणद्धि निद्रा का उदय होता है, ऐसा व्यक्ति दिन में सोचा हुआ कार्य रात्रि में निद्रा में ही कर लेता है, काम पूरा करके वापस अपने घर में आकर सो जाता है, फिर भी उसे पता नहीं चलता है कि मैंने यह कार्य किया है।

उदाहरण

एक बार किसी साधु महाराज को दिन में किसी हाथी ने हैरान किया। रात्रि में सोने के बाद उन महात्मा को थीणद्धि निद्रा का उदय हुआ। रात्रि में वे महात्मा नींद में ही उपाश्रय से बाहर निकल गए। नगर बाहर उस हाथी के पास गए और उस हाथी को मारकर उसके दाँत उखाड़कर ले आए और वे दाँत उपाश्रय के बाहर फेंक दिए। वापस उपाश्रय में आकर अपने संथारे में सो गए।

प्रातःकाल होने पर वे गुरु महाराज को कहने लगे, ``आज मैंने एक स्वप्न देखा और उस स्वप्न में मैंने हाथी को मार डाला, अतः मुझे प्रायश्चित्त दो।''

गुरु महाराज ने उसे प्रायश्चित्त दिया। थोड़ी देर बाद जब उनके कपडों पर खून के दाग देखे और बाहर पडे दंतशूल देखे तो गुरु महाराज को ख्याल आ गया कि इस महात्मा को थीणद्धि निद्रा का उदय है और इन्होंने ही हाथी को मार डाला है।

थीणद्धि निद्रा के उदय का पता चलते ही गुरु महाराज ने उस साधु महाराज के पास से साधुवेष ले लिया और उसे रवाना कर दिया।

◆ थीणद्धि निद्रा के उदयवाले को वासुदेव से आधा बल प्राप्त हो जाता है, वह हाथी जैसे बडे प्राणी को भी मार डालता है।

मान्यता

मनुष्य को पुण्य के उदय से जो कुछ सुख के साधन मिले हैं, वे उसे कम ही लगते हैं, और पाप के उदय से जो कुछ दुःख आता है, वह उसे अधिक ही लगता है।
पुण्य के उदय में उसे संतोष नहीं है और पाप के उदय में वह सहनशीलता से कोसों दूर है।

22 वेदनीय कर्म

जिस प्रकार अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन आत्मा के गुण हैं, उसी प्रकार अव्याबाध सुख भी आत्मा का मूल गुण है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन गुण पर आवरण लाते हैं। उसी प्रकार यह वेदनीय कर्म आत्मा के अव्याबाध सुख गुण को रोकता है। यह कर्म आत्मा को वास्तविक सुख का अनुभव करने नहीं देता है। इस कर्म के उदय से आत्मा इन्द्रियजन्य सुख-दुःख का अनुभव करती है।

सानुकूल सामग्री मिलने पर आत्मा को जिस सुख की अनुभूति होती है, उसे शातावेदनीय कर्म कहते हैं।

प्रतिकूल सामग्री मिलने पर आत्मा को जिस दुःख की अनुभूति होती है, उसे अशाता वेदनीय कर्म कहते हैं।

वेदनीय कर्म के संपूर्ण क्षय से आत्मा में जो अव्याबाध सुख पैदा होता है, उस सुख और शाता वेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त सुख में बहुत बड़ा अंतर है।

शाता वेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त होनेवाला सुख अल्पकालीन, दुःखमिश्रित और नश्वर होता है, जब कि इस कर्म के क्षय से प्राप्त सुख शाश्वत, अव्याबाध और अक्षय होता है।

इस कर्म के उदय से जीवात्मा को अनेक प्रकार की बीमारियाँ, यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं।

अशाता वेदनीय कर्म के उदय के कारण ही खंधक मुनि की जीते जी चमड़ी उतारी गई...गजसुकुमाल महामुनि के मस्तक पर अंगारे डाले गए। स्कंदिलाचार्य के 500 शिष्यों को घाणी में पीला गया...महावीर प्रभु के कान में कीले ठोके गए, इत्यादि।

शाता वेदनीय कर्म के उदय से रंक भी राजा बन जाता है। पूर्व भव

के गरीब संगम को समृद्धि के शिखर पर पहुँचाकर शालिभद्र बनानेवाला यही शाता वेदनीय कर्म था ।

उपमा : वेदनीय कर्म को मधुलिप्त तलवार की उपमा दी गई है । मधुलिप्त तलवार को चाटने में सुख का अनुभव होता है, परंतु उसी के साथ जीभ कट जाय तो अपार वेदना का भी अनुभव हुए बिना नहीं रहता है ।

शाता वेदनीय सुख देता है तो अशाता वेदनीय दुःख ।

ओसन्नं सुर-मणुए, सायमसायं तु तिरिअ निरएसु ।
मज्जं व मोहणीअं, दु-विहं दंसण-चरण मोहा ।।13।।

शब्दार्थ-

ओसन्नं=प्रायः करके । **सुर-मणुअ=**देव और मनुष्य में । **सायं=**शाता (वेदनीय) । **असायं=**अशाता वेदनीय, **तु=**और । **तिरिअ-निरएसु=**तिर्यंच और नरक गति में, **मज्जं=**मदिरा । **व=**उसके जैसा । **मोहणीअं=**मोहनीय, **दुविहं=**दो प्रकार । **दंसण-चरण मोहा=**दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय ।

भावार्थ-

अधिकांशतः देव और मनुष्य को शाता वेदनीय और नारक और तिर्यंचों को अशाता वेदनीय का उदय होता है ।

मोहनीय कर्म के दो भेद हैं-दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय ! यह मोहनीय कर्म मदिरा पान के समान है ।

विवेचन-

वेदनीय कर्म के उदय से जीव को इन्द्रिय विषय-जन्य सुख-दुःख की अनुभूति होती है । यद्यपि वेदनीय कर्म की दोनों प्रकृतियाँ-शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय परावर्तमान प्रकृति हैं ।

परावर्तमान अर्थात् परिवर्तनशील ! कभी शातावेदनीय का उदय तो कभी अशाता वेदनीय का उदय ।

फिर भी बहुलता की अपेक्षा से कह सकते हैं कि देवता और मनुष्यों

को शाता वेदनीय का उदय होता है और तिर्यंच और नरक के जीवों को अशाता वेदनीय का उदय होता है ।

देवलोक में पुण्य का उदय विशेष होता है, इस कारण वहाँ इन्द्रिय-जन्य सुखों की बहुलता है । नरक के जीवों को पाप का तीव्र उदय होता है, वहाँ पर इन्द्रियजन्य सुख के साधन उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ प्रतिकूल संयोग भरे हुए हैं, अतः उन जीवों को सतत अशाता का उदय कहा जाता है ।

तिर्यंच गति के जीवों के दुःख प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, रोग आदि की पीड़ाएँ उन्हें सताती रहती हैं, अतः वहाँ भी अशाता की ही प्रधानता है ।

कभी कभार कुछ तिर्यंचों को अनुकूलताएँ मिल जाती हैं । कुछ कुत्ते गाडी में भी घूमते हैं । कुछ हाथी-घोड़ों को स्नान, आहार आदि मिल जाता है । यह उनके शाता वेदनीय का उदय कहलाता है । नारक-तिर्यंचों की अपेक्षा मनुष्य को कम दुःख होता है, अतः इस अपेक्षा से मनुष्य को शाता वेदनीय का उदय कहा गया है ।

यद्यपि देवलोक में सुख की सामग्री अत्यधिक प्रमाण में है फिर भी ईर्ष्या, मत्सरता, लोभ आदि के कारण देवता दुःखी होते है । देवताओं का आयुष्य जब पूर्ण होने आता है, उसके छह मास पहले उनके गले में रही फूलों की माला कुम्हलाने लगती है । उनका मुखमंडल निस्तेज हो जाता है । मरकर तिर्यंच गति में जाना पड़े तो उसकी भी चिंता सताती है । इस प्रकार देवता को भी कभी-कभी अशाता का उदय हो सकता है ।

वैराग्य भाव !

संसार में मजा कम है और सजा ज्यादा है ।
संसार में सुख नाममात्र का है
और दुःख का पार नहीं है ।
फिर भी आश्चर्य है कि कण भर के सुख के
लोभ के कारण संसारी जीव को संसार के सुख
के प्रति वैराग्य भाव पैदा नहीं होता है ।

23 मोहनीय कर्म

आत्मा में रहे अनंत ज्ञान गुण को ढकने का कार्य ज्ञानावरणीय कर्म करता है, उसी प्रकार आत्मा में रहे **'वीतरागता'** के गुण को ढकने का कार्य मोहनीय कर्म करता है ।

आत्मा का मूलभूत स्वभाव **'वीतरागता'** है अर्थात् राग और द्वेष का सर्वथा अभाव !

मोहनीय कर्म का उदय ही आत्मा में राग और द्वेष पैदा करता है । उस राग-द्वेष के कारण ही आत्मा, पाप में प्रवृत्ति करती ह अर्थात् निष्पाप ऐसी आत्मा को पापी बनाने का कार्य मोहनीय कर्म करता है ।

शाता वेदनीय का उदय व्यक्ति को सुखी बनाता है । अशाता वेदनीय का उदय व्यक्ति को दु:खी बनाता है । जबकि मोहनीय कर्म का उदय व्यक्ति को पापी बनाता है ।

मोह अर्थात् जो आत्मा को मोहित करे-भ्रमित करे । जो सत्य हो उसमें असत्य की बुद्धि और जो असत्य हो, उसमें सत्य की बुद्धि पैदा करने का काम मोहनीय कर्म करता है ।

मोहनीय कर्म के उदय से जीव अयोग्य-अनुचित प्रवृत्ति करता है ।

क्रोध करने जैसा नहीं है, फिर भी मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा क्रोध करती है ।

अभिमान करने जैसा नहीं है, माया करने जैसी नहीं है, लोभ करने जैसा नहीं है, फिर भी आत्मा मोहनीय कर्म के उदय से अभिमान करती है, माया करती है और लोभ भी करती है ।

इतना ही नहीं, क्रोध, मान आदि करने के बाद मोहनीय कर्म के उदय के कारण आत्मा उस क्रोध आदि को अच्छा भी मानती है ।

गलत को सही कहना, अच्छा मानना, यह सबसे बडा अपराध है ।

मोहनीय कर्म आत्मा को अपराधी बनाता है ।

पाप से भी पाप का स्वीकार न करना, बडा अपराध है । पापी यदि अपने पाप का स्वीकार करे तो पापी का भी उद्धार हो सकता है, परंतु पाप करके भी जो पाप का स्वीकार नहीं करता है, पाप को खराब नहीं मानता है, मैंने जो किया, वह अच्छा किया । ऐसा ही मानता है, ऐसी आत्मा का कभी उद्धार नहीं हो सकता है ।

मोहनीय कर्म पाप का स्वीकार करने नहीं देता है । मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में शुभभाव, शुभ विचार ही पैदा नहीं होते हैं ।

मोहनीय कर्म ही आत्मा को कामी, क्रोधी, लोभी, रागी, द्वेषी आदि बनाता है ।

साधक और आराधक आत्मा को भी विचार-भ्रष्ट और आचार-भ्रष्ट बनाने का काम मोहनीय कर्म ही करता है ।

शराब के नशे में मदमस्त व्यक्ति को जैसे कुछ भान नहीं होता है, उसी प्रकार मोह के नशे में मत्त बने व्यक्ति को भी कुछ भान नहीं रहता है । कर्तव्य-अकर्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय आदि की भेदरेखा उसके पास नहीं होती है ।

इस मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं- 1) दर्शन मोहनीय और 2) चारित्र मोहनीय ।

आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण को घात करने वाले कर्म को दर्शन मोहनीय कहते हैं । इस कर्म के उदय से आत्मा में जिनवचन पर सच्ची श्रद्धा ही पैदा नहीं होती है । इस कर्म के उदय से आत्मा में मिथ्यात्व की प्रबलता रहती है ।

सर्वज्ञ भगवंतों ने जो कहा है, उससे विपरीत मानने का कार्य मिथ्यात्व करता है ।

आत्मा में रहे चारित्र गुण को नष्ट करने का काम चारित्र मोहनीय करता है । इस कर्म के उदय से आत्मा जिनाज्ञानुसारी प्रवृत्ति नहीं कर पाती है ।

दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम से जिन वचन में पूर्ण श्रद्धा भी हो जाय, परंतु इस कर्म का उदय हो तो आत्मा जिनोपदिष्ट आचरण कर ही नहीं पाती है ।

दंसण-मोहं तिविहं, सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं ।
सुद्धं अद्धविसुद्धं, अविसुद्धं तं हवइ कमसो ।।14।।

शब्दार्थ-

दंसण मोहं=दर्शन मोहनीय, **तिविहं=**तीन प्रकार का, **सम्मं=**सम्यक्त्व, **मीसं=**मिश्र, **तहेव=**तथा, **मिच्छत्तं=**मिथ्यात्व, **सुद्धं=**शुद्ध, **अद्धविसुद्धं=**अर्ध विशुद्ध, **अविसुद्धं=**अशुद्ध, **तं=**वे, **हवइ=**होता है, **कमसो=**क्रमशः ।

भावार्थ-

दर्शन मोहनीय कर्म तीन प्रकार का है-सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय । वे अनुक्रम से शुद्ध, अर्धशुद्ध और अशुद्ध होते हैं ।

विवेचन-

आत्मा में रहे क्षायिक सम्यक्त्व गुण को ढकने का कार्य दर्शन मोहनीय कर्म करता है और आत्मा में रहे वीतरागता गुण को ढकने का कार्य चारित्र मोहनीय कर्म करता है ।

बंध की अपेक्षा तो दर्शन मोहनीय की प्रकृति मिथ्यात्व रूप ही है, परंतु उदय और सत्ता की अपेक्षा इस दर्शन मोहनीय के तीन भेद होते हैं ।

बंध के समय तो आत्मा मिथ्यात्व का ही बंध करती है परंतु उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर आत्मा अपने विशुद्ध अध्यवसायों द्वारा मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के दलिकों के रस में हानि करने के कारण उन्हें तीन भागों में विभक्त करती है ।

⌘

24 उपशम सम्यक्त्व

अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के भव में तथाभव्यत्व के परिपाक होने पर सर्वप्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए तीन करण करती है ।

यथा-प्रवृत्तिकरण : पर्वत से टूटा हुआ पत्थर नदी में टकराते टकराते गोल-मटोल हो जाता है, इसे **'नदी गोल पाषाण'** कहते हैं । अर्थात् नदी में रहे इस गोल पत्थर को किसी व्यक्ति ने घड़कर गोल नहीं किया बल्कि सहजतया हो गया । बस, इसी **'नदी गोल पाषाण न्याय'** की तरह संसार में भटकते-भटकते जब आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष कर्मों की स्थिति अंत: कोटा कोटि सागरोपम की हो जाती है अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति होती है, उस समय अनाभोग से अनायास उत्पन्न हुए आत्मा के शुभ परिणाम को यथाप्रवृत्तिकरण कहा जाता है ।

आत्मा जब यथाप्रवृत्तिकरण करती है, तब उसे **'ग्रंथिदेश'** कहा जाता है ।

ग्रंथि अर्थात् गाँठ ! राग-द्वेष के तीव्र परिणाम को ग्रंथि कहा जाता है ।

अभव्य आत्मा भी अनेकबार इस ग्रंथिदेश तक आती है, परंतु इस ग्रंथि का भेद कभी नहीं करती है । ग्रंथि भेद करने की ताकत सिर्फ भव्य आत्मा में ही है ।

भव्य आत्मा भी अनेक बार ग्रंथिदेश तक आकर वापस चली जाती है ।

ग्रंथिदेश तक आनेवाली आत्मा ग्रंथिभेद करेगी ही, ऐसा एकांत नियम नहीं है ।

अपूर्व-करण

पहले कभी नहीं आए हुए ऐसे विशुद्ध अध्यवसाय को अपूर्वकरण कहते हैं । इसका काल अन्तर्मुहूर्त जितना ही है ।

जिस प्रकार तीक्ष्ण कुल्हाड़े से लकड़ी में रही गाँठ को भेदा जाता है उसी प्रकार अपूर्वकरण द्वारा आत्मा राग-द्वेष की तीव्र ग्रंथि (गाँठ) को भेदकर अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करती है ।

अनिवृत्तिकरण

अनिवृत्ति अर्थात् वापस नहीं लौटना !

जो अध्यवसाय सम्यक्त्व को प्राप्त कराए बिना नहीं रहता हो, उस अध्यवसाय को अनिवृत्तिकरण कहा जाता है अर्थात् अनिवृत्तिकरण के बाद आत्मा अवश्य ही सम्यक्त्व प्राप्त करती है । इस करण का काल भी अन्तर्मुहूर्त जितना है ।

अंतर-करण

अनिवृत्तिकरण में से संख्याता भाग व्यतीत होने पर जब एक संख्यातवाँ भाग बाकी रहता है, तब जीव अंतर करण करता है ।

'अनिवृत्तिकरण के एक संख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति के ऊपर अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण स्थिति में रहे मिथ्यात्व के दलिकों को वहाँ से हटाकर कुछ दलिकों को नीचे की स्थिति में तथा कुछ दलिकों को ऊपर की स्थिति में डालकर घास रहित भूमि की तरह मिथ्यात्व के दलिकों से रहित करने की क्रिया को अंतरकरण कहा जाता है ।

फिर जीव प्रथम स्थिति (नीचे) में रहे दलिकों को भोगकर क्षय करता है और द्वितीय स्थिति में रहे दलिकों को प्रति समय उपशांत करता रहता है । इस प्रकार करने से जब प्रथम स्थिति में रहे सब दलिक क्षय हो जाते हैं तो उसके ऊपर के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल में मिथ्यात्व का एक भी दलिक नहीं होता है ।

मिथ्यात्व के दलिक से रहित भूमिका में प्रवेश करते ही जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

किसी जन्मांध व्यक्ति को अचानक आँखें प्राप्त होने से जो आनंद होता है...अथवा किसी असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति को असाध्य रोग दूर होने पर जिस आनंद की अनुभूति होती है, उससे भी अधिक आनंद की अनुभूति सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय जीवात्मा को होती है ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के आनंद को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है ।

उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर आत्मा अपने विशुद्ध अध्यवसाय द्वारा द्वितीय स्थिति में रहे मिथ्यात्व मोहनीय के दलिकों में से न्यूनाधिक प्रमाण में रस को घटा देती है, जिससे मिथ्यात्व मोहनीय के वे दलिक तीन भागों में विभक्त हो जाते हैं ।

1) समकित मोहनीय :

कोद्रव नाम का एक धान्य होता है, जिसको खाने से नशा चढ़ता है, परंतु उस कोद्रव धान्य के छिलके उतार दिए जाँय और उन्हें छाछ से धो दिया जाय तो उनमें रही मादक शक्ति बहुत कम हो जाती है ।

बस, कोद्रव के धान्य समान मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के पुद्गल होते हैं, जो आत्मा को हिताहित की परीक्षा करने में बाधक होते हैं । इनमें सर्वघाती रस होता है, परंतु जीव अपने विशुद्ध अध्यवसायों द्वारा उन कर्मपुद्गलों की सर्वघाती रस शक्ति को घटा देता है, फिर एक संस्थानक रस बाकी रहता है, उस एक स्थानक शक्तिवाले मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्गलों को सम्यक्त्व मोहनीय कहा जाता है ।

इस कर्म का उदय जीव को औपशमिक और क्षायिक भाववाली तत्त्वरुचि में प्रतिबंध पैदा करता है । यद्यपि यह कर्म शुद्ध होने के कारण तत्त्वरुचि रूप सम्यक्त्व में व्याघात नहीं पहुँचाता है, फिर भी इस कर्म के उदय काल में औपशमिक या क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है । सूक्ष्म पदार्थ के विचार में शंका रहती है, जिससे सम्यक्त्व में मलिनता आती है ।

2. मिश्र मोहनीय :

कोद्रव के धान्य को आधा साफ किया जाय तो उसमें कुछ अंश में मादक शक्ति होती है और कुछ अंश में नहीं । इस प्रकार अध्यवसायों द्वारा अर्धशुद्ध बने मिथ्यात्व के दलिकों को मिश्र मोहनीय कहा जाता है । इस कर्म के उदय में जीव को न तो तत्त्व पर यथार्थ रुचि होती है और न ही अरुचि ।

3. मिथ्यात्व मोहनीय :

कोद्रव के अशुद्ध धान्य के पुंज को खाने से जिस प्रकार विकार पैदा होता है बस, इसी प्रकार अशुद्ध कोद्रव के धान्य समान मिथ्यात्व मोहनीय कर्म है, इस कर्म के उदय से जीव को सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग में श्रद्धा नहीं होती है । सर्वज्ञ प्रणीत जीव आदि नव तत्त्वों पर विश्वास नहीं होता है ।

मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्गल सर्वघाती रसवाले होते हैं। उसके एक स्थानक, द्वि स्थानक, त्रिस्थानक और चतु:स्थानक ये चार भेद कर सकते हैं।

उदा.

नीम के 1 किलो रस में जो कड़वापन होता है, उसे एक स्थानक रस कह सकते हैं।

उसी रस को अग्नि पर तपा कर आधा कर दिया जाय तो उसे द्विस्थानक रस कहते हैं।

उसी रस के $\frac{2}{3}$ भाग को तपाकर जला दिया जाय तो उसे त्रिस्थानक रस कहते हैं और $\frac{3}{4}$ भाग जला दिया जाय तो उसे चतु:स्थानक रस कहा जाता है।

शुभ अथवा अशुभ कर्म में फल देने की तीव्रतम शक्ति को चतु: स्थानक, तीव्रतर शक्ति को त्रिस्थानक, तीव्र शक्ति को द्वि स्थानक और मंद शक्ति को एक स्थानक कहा जा सकता है।

समकित मोहनीय में फल देने की एक स्थानक, मिश्र मोहनीय में द्विस्थानक तथा मिथ्यात्व मोहनीय में द्विस्थानक, त्रिस्थानक व चतु:स्थानक तीनों प्रकार की शक्ति होती है।

जिअ अजिअ पुण्ण पावा-सव संवर-बंध मुक्ख-निज्जरणा।
जेणं सद्दहय तं, सम्मं खइगाइ बहु भेयं ॥15॥

शब्दार्थ-

जिअ=जीव, **अजिअ=**अजीव, **पुण्ण=**पुण्य, **पाव=**पाप, **आसव=**आस्रव, **संवर=**संवर, **बंध=**बंध, **मुक्ख=**मोक्ष, **निज्जरणा=**निर्जरा, **जेणं=**जिस कारण से, **सद्दहय=**श्रद्धा करता है, **तं=**वह, **सम्मं=**सम्यक्त्व, **खइगाइ=**क्षायिक आदि, **बहुभेयं=**बहुत से भेदवाला है।

भावार्थ-

जिस कारण से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बंध, मोक्ष और निर्जरा तत्त्व पर श्रद्धा होती है वह सम्यक्त्व, क्षायिक आदि अनेक प्रकार का है।

नौ तत्त्व

1) जीव : जिसमें चेतना हो, उसे जीव कहते हैं अथवा जो प्राणों को धारण करे, उसे जीव कहते हैं ।

प्राण दो प्रकार के हैं 1) द्रव्य प्राण और 2) भाव प्राण । मोक्ष में गई आत्माओं में सिर्फ भाव प्राण होते हैं । संसारी जीवों को द्रव्य और भाव, दोनों प्राण होते हैं । इसके मुख्य 14 भेद हैं ।

2) अजीव : जिसमें चेतना नहीं हो, उसे अजीव कहते हैं ।

3) पुण्य : जिसके उदय से जीव को पाँच इन्द्रियों के अनुकूल सुख की सामग्री प्राप्त होती हो, उसे पुण्य कहते हैं ।

4) पाप : जिस कर्म के उदय से जीव को पाँच इन्द्रियों के प्रतिकूल सामग्री की प्राप्ति होती हो, उसे पाप कहते हैं ।

5) आस्रव : आत्मा में शुभ अथवा अशुभ कर्म के आगमन के द्वार को आस्रव कहते हैं ।

6) संवर : आस्रव के निरोध को संवर कहा जाता है । इसके बयालीस भेद हैं ।

7) बंध : आस्रव के द्वारा आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ क्षीर-नीर की तरह परस्पर मिल जाना, उसे बंध कहते हैं ।

8) निर्जरा : आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आत्मा से अलग होना, उसे निर्जरा कहते हैं ।

9) मोक्ष : आत्मा पर लगे संपूर्ण कर्मों के क्षय को मोक्ष कहते हैं ।

इन नौ तत्त्वों में जीव-अजीव ज्ञेय स्वरूप हैं । पाप, आस्रव और बंध हेय स्वरूप हैं तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष उपादेय स्वरूप हैं ।

◆ व्यावहारिक दृष्टि से पुण्य उपादेय स्वरूप माना गया है और नैश्चयिक दृष्टि से पुण्य हेय स्वरूप माना गया है ।

सर्वज्ञ भगवंतों ने जो तत्त्व जिस रूप में कहा है, उसे उसी स्वरूप में मानना उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

सम्यक्त्व के कारण ही ज्ञान, सम्यग्ज्ञान बनता है । सम्यक्त्व के कारण ही चारित्र, सम्यक् चारित्र बनता है । सम्यक्त्व के अभाव में होनेवाला ज्ञान भी अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान कहलाता है तथा चारित्र भी कायकष्ट कहलाता है ।

25 सम्यक्त्व के भेद

1) क्षायिक सम्यक्त्व : मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय तथा अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप इन सात प्रकृतियों का मूल से क्षय होने पर जिस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

2) औपशमिक सम्यक्त्व : समकित मोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय के उपशम को औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

3) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व : मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय तथा उपशम से तथा सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से आत्मा में होने वाले परिणाम को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

उदय में आए हुए मिथ्यात्व के पुद्‌गलों का क्षय तथा जो उदय को प्राप्त नहीं हुए हैं, उन पुद्‌गलों के उपशम से मिथ्यात्व मोहनीय का क्षयोपशम होता है ।

यहाँ मिथ्यात्व का उदय प्रदेशोदय की अपेक्षा समझना चाहिए, न कि रसोदय की अपेक्षा से ।

4. वेदक सम्यक्त्व : क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में रहा हुआ जीव जब सम्यक्त्व मोहनीय के अंतिम पुद्‌गल रस का अनुभव करता है, उस समय के उसके परिणाम को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं, इस सम्यक्त्व के बाद जीव अवश्य ही क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

5. सास्वादन सम्यक्त्व : उपशम सम्यक्त्व से भ्रष्ट बनी आत्मा जब मिथ्यात्व के अभिमुख होती है, तब मिथ्यात्व की प्राप्ति के पूर्व के उसके अध्यवसाय को सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं । इस सम्यक्त्व का काल 6 आवलिका प्रमाण ही है और यह सम्यक्त्व, सम्यक्त्व से पतित आत्मा को ही होता है ।

मीसा न राग दोसो, जिणधम्मे अंत मुहु जहा अन्ने ।
नालिअरदीव मणुणो, मिच्छं जिण धम्म-विवरीअं ।।16।।

शब्दार्थ-

मीसा=मिश्र, **राग दोसो**=राग-द्वेष, **जिणधम्मे**=जिनधर्म में, **अंत मुहु**=अन्तर्मुहूर्त, **जहा**=जिस प्रकार, **अन्ने**=अन्न के विषय में, **नालिअर दीव**=नालियर द्वीप, **मणुणो**=मनुष्य को, **मिच्छं**=मिथ्यात्व, **जिणधम्म**=जिन

धर्म, **विवरीअं=**विपरीत ।

भावार्थ-

जिस प्रकार नालियर द्वीप के मनुष्य को अन्न पर न तो राग होता है और न ही द्वेष । उसी प्रकार मिश्र-मोहनीय कर्म से जैन धर्म के ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक न राग होता है और न ही द्वेष ! मिथ्यात्व जैन धर्म से विपरीत होता है ।

विवेचन-

जिस द्वीप में नारियल को छोड़कर अन्य किसी प्रकार का धान्य पैदा नहीं होता है, उस द्वीप को नालियर द्वीप कहते हैं । उस द्वीप में रहनेवाले लोगों के दिल में अन्य अनाज के ऊपर न तो राग होता है और न ही द्वेष । बस, इसी प्रकार मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से जीव को श्री अरिहंत परमात्मा के द्वारा प्ररूपित जिनधर्म के प्रति न तो राग भाव होता है और न ही द्वेष भाव । मिश्र मोहनीय का उदय एक अन्तर्मुहूर्त तक होता है, उसके बाद अध्यवसाय बिगड़ जाय तो जीव को मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय हो जाता है और अध्यवसाय सुधर जाय तो सम्यक्त्व मोहनीय कर्म उदय में आ जाता है ।

मिथ्यात्व मोहनीय

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीवात्मा को जिनेश्वर भगवंत द्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्वों पर श्रद्धा नहीं होती है । जैसे रोगी को पथ्य चीजें अच्छी नहीं लगती हैं और अपथ्य चीजें अच्छी लगती हैं, बस, इसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीवात्मा को वीतराग-प्ररूपित वचन अच्छे नहीं लगते हैं ।

इस मिथ्यात्व के उदय से जीव, 18 दोषों से रहित सर्वज्ञ-वीतराग भगवंत को देव के रूप में स्वीकार नहीं करता है, बल्कि जो राग-द्वेष से युक्त हैं, उन्हें देव के रूप में स्वीकार करता है ।

जो कंचन-कामिनी के त्यागी और पंच महाव्रतधारी हैं, उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार न कर उन्मार्ग की राह बतानेवालों को गुरु के रूप में स्वीकार करता है ।

जो वीतराग प्ररूपित धर्म को धर्म नहीं मानता है और मिथ्याधर्म को धर्म के रूप में स्वीकार करता है ।

जिस व्यक्ति को साँप का जहर चढा हो, उसे नीम के कड़वे पत्ते भी मीठे लगते हैं । बस, इसी प्रकार जिस आत्मा को मिथ्यात्व का जहर चढ़ा हो, उस आत्मा को संसार का तुच्छ सुख भी अत्यधिक प्रिय लगता है ।

26 चारित्र-मोहनीय

सोलस कसाय नव नोकसाय, दुविहं चरित्त मोहणीयं ।
अण-अप्पच्चक्खाणा, पच्चक्खाणा य संजलणा ॥17॥

शब्दार्थ-

सोलस=सोलह, **कसाय**=कषाय, **नव**=नौ, **नोकसाय**=नोकषाय, **दुविहं**=दो प्रकार, **चरित्तमोहणीयं**=चारित्र मोहनीय, **अण**=अनंतानुबंधी, **अप्पच्चक्खाणा**=अप्रत्याख्यानीय, **पच्चक्खाणा**=प्रत्याख्यानीय, **य**=तथा, **संजलणा**=संज्वलन ।

भावार्थ-

चारित्र मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं-सोलह कषाय और नौ नोकषाय ! कषाय के मुख्य चार भेद-अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन ।

विवेचन-

वीतरागता अर्थात् यथाख्यात चारित्र, यह आत्मा का मूलभूत स्वभाव है । आत्मा के उस स्वभाव पर आवरण लाने का काम चारित्र मोहनीय करता है ।

सिद्ध और 14 वें गुणस्थानक में रहे अयोगी केवली भगवंतों को मन, वचन और काययोग का अभाव होने से वहाँ व्यवहार चारित्र नहीं है किंतु मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय होने के कारण स्वगुण में रमणता व स्थिरता रूप नैश्चयिक चारित्र होता है ।

संसार में रही वीतरागी आत्माओं को प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप यथाख्यात चारित्र होता है ।

इस चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के कारण आत्मा में राग-द्वेष की परिणति तथा क्रोध आदि के विकार पैदा होते हैं ।

इस चारित्र मोहनीय के कुल 25 भेद हैं ।

16 कषाय तथा 9 नोकषाय ।

कष् अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ !

जिस प्रवृत्ति से आत्मा के संसार की वृद्धि हो, उसे कषाय कहा जाता है। क्षमा, नम्रता, सरलता और संतोष रूप आत्मा के गुणों को ढकने का काम ये कषाय करते हैं ।

कषाय के मुख्य चार भेद हैं ।

1) क्रोध : समता भाव छोडकर किसी पर गुस्सा करना, उसे क्रोध कहा जाता है । अपनी इष्ट वस्तु कोई चुरा लेता है, तोड़ देता है, तब क्रोध पैदा होता है । कोई अपने साथ कटु व्यवहार करता है, तब क्रोध पैदा होता है । चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के कारण क्रोध पैदा होता है ।

2) मान : पुण्य के उदय से प्राप्त सामग्री का अहंकार करना, उसे मान कहते हैं । यह अभिमान पैदा होने पर नम्रता चली जाती है । यह मान भी चारित्र मोहनीय के उदय की ही पैदाइश है ।

3) माया : किसी वस्तु को पाने के लिए, किसी को ठगने की वृत्ति को माया कहते हैं । माया करने से सरलता गुण का नाश होता है । चारित्र मोहनीय के उदय से ही माया की प्रवृत्ति होती है ।

4) लोभ : प्राप्त सामग्री में असंतोष और अधिक से अधिक पाने की लालसा को लोभ कहते हैं । लोभ से संतोष गुण का नाश होता है । चारित्र मोहनीय के उदय से ही लोभ वृत्ति पैदा होती है ।

इन मुख्य चार कषायों के परिणाम जब तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र और मंद होते हैं, तब वे ही क्रमशः अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कहलाते हैं ।

1-4 **अनंतानुबंधी** क्रोध, मान, माया और लोभ ।

5-8 **अप्रत्याख्यानावरण** क्रोध, मान, माया और लोभ ।

9-12 **प्रत्याख्यानावरण** क्रोध, मान, माया और लोभ ।

13-16 **संज्वलन** क्रोध, मान, माया और लोभ ।

इस प्रकार कषाय के कुल 16 भेद हुए ।

नोकषाय जो कषाय नहीं है किंतु कषाय के उदय के साथ जिसका उदय होता है, जो कषाय को पैदा करने में, उत्तेजित करने में सहायक हो, उसे नोकषाय कहा जाता है। हास्य, रति, अरति आदि 9 नोकषाय कहलाते हैं।

इस प्रकार कषाय और नोकषाय मिलकर चारित्र मोहनीय के कुल 25 भेद होते हैं।

जाजीव-वरिस-चउमास-पक्खगा निरयतिरिय-नर-अमरा।
सम्माणु-सव्वविरइ-अह खाय-चरित्त-घायकरा ॥18॥

शब्दार्थ-

जाजीव=जीवन पर्यंत, **वरिस=**वर्ष, **चउमास=**चार मास, **पक्खगा=**पक्ष तक, **निरय=**नारक, **तिरिय=**तिर्यंच, **नर=**मनुष्य, **अमरा=**देव, **सम्म=**सम्यक्त्व, **अणु-सव्वविरइ=**देश तथा सर्वविरति, **अहक्खाय=**यथाख्यात, **चरित्त=**चारित्र, **घायकरा=**नाश करनेवाले।

गाथार्थ-

पूर्वोक्त गाथा में कहे गए अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन कषाय की कालमर्यादा क्रमशः जीवन पर्यंत, एक वर्ष, चार मास और पंद्रह दिन की है। वे क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के बंध के कारण हैं और क्रमशः सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति और यथाख्यात चारित्र का घात करनेवाले हैं।

विवेचन-

इस गाथा में अनंतानुबंधी आदि चार कषायों की उत्कृष्ट स्थिति, उन कषायों के अस्तित्व में होने वाले आयुष्य के बंध और उन कषायों के उदय से होनेवाले आत्मगुणों के घात का वर्णन किया गया है।

किसी व्यक्ति के प्रति क्रोध उत्पन्न हुआ हो और वह क्रोध यदि 15 दिनों में शांत हो जाता हो तो उस क्रोध को संज्वलन क्रोध कहा जाता है अर्थात् संज्वलन क्रोध उत्पन्न हुआ हो तो वह 15 दिन में अवश्य शांत हो जाता है। संज्वलन क्रोध के उदय में आत्मा, आयुष्य का बंध करे तो देवगति के आयुष्य का बंध कर सकती है।

यह संज्वलन क्रोध आत्मा के यथाख्यात चारित्र गुण को रोकता है अर्थात् इस कषाय के उदय से आत्मा में यथाख्यात चारित्र पैदा नहीं होता है।

किसी व्यक्ति पर क्रोध उत्पन्न हुआ हो और वह क्रोध चार मास तक शांत नहीं होता हो तो उस क्रोध को प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा जाता है। इस क्रोध के उदय में आत्मा मनुष्य गति के आयुष्य का बंध कर सकती है। इस कषाय के उदय काल में आत्मा सर्वविरति के प्रायोग्य अध्यवसायों को प्राप्त नहीं कर पाती है अर्थात् इस कषाय का उदय होने पर आत्मा सर्वविरति की स्थिति प्राप्त नहीं करती है।

जो क्रोध एक वर्ष पर्यंत रहता हो उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा जाता है, इस कषाय के उदयवाली आत्मा तिर्यंचगति के आयुष्य का बंध करती है, इस कषाय का उदय होने पर आत्मा देशविरति के योग्य अध्यवसाय प्राप्त नहीं कर पाती है।

जो क्रोध जिंदगी पर्यंत रहता हो और जन्मांतर में भी साथ चलता हो उसे अनंतानुबंधी क्रोध कहा जाता है। इस क्रोध के अस्तित्व में आत्मा नरक गति के आयुष्य का बंध करती है। यह कषाय आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करता है अर्थात् इस कषाय के उदयकाल में आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करती है। इतना ही नहीं, सम्यक्त्व विद्यमान हो तो वह भी चला जाता है।

अनंतानुबंधी क्रोध की तरह अनंतानुबंधी मान, अनंतानुबंधी माया और अनंतानुबंधी लोभ की भी यही स्थिति, आयुष्य-बंध और गुण-घात समझना चाहिए।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध की तरह अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया और अप्रत्याख्यानावरण लोभ की भी वही 1 वर्ष की स्थिति, तिर्यंचगति के आयुष्य का बंध और देशविरति के गुण का घात समझना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध की तरह प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ की भी वो ही चार मास की स्थिति, मनुष्यगति के आयुष्य का बंध और सर्वविरति के गुण का घात समझना चाहिए। संज्वलन क्रोध की तरह संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ की भी वही

15 दिन की स्थिति, देवगति के आयुष्य का बंध और यथाख्यात चारित्र गुण का घात समझना चाहिए ।

यहाँ अनंतानुबंधी आदि की जो समय मर्यादा बताई गई है, वह व्यवहार नय की अपेक्षा से समझना चाहिए । बाहुबली को संज्वलन मान का उदय 15 दिन तक रहना चाहिए, उसके बदले एक वर्ष तक रहा और प्रसन्न-चंद्र राजर्षि को जो अनंतानुबंधी कषाय जीवन भर रहना चाहिए था, वह मात्र अन्तर्मुहूर्त तक ही रहा । अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर भी कुछ मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में भी चले जाते हैं ।

इन सोलह कषायों के भी अवांतर कुल 64 भेद होते हैं ।

जैसे अनंतानुबंधी क्रोध के चार भेद होते हैं :–

1) अनंतानुबंधी अनंतानुबंधी क्रोध
2) अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानीय क्रोध
3) अनंतानुबंधी प्रत्याख्यानीय क्रोध
4) अनंतानुबंधी संज्वलन क्रोध ।

इस प्रकार अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय व संज्वलन के भी 4-4 भेद करने पर कुल 64 भेद हो जाते हैं ।

यद्यपि अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का चारित्र मोहनीय में समावेश किया गया है, फिर भी वे चार कषाय सम्यक्त्व का भी घात करते हैं, इसीलिए अनंतानुबंधी चार तथा दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों को **'दर्शन सप्तक'** भी कहा जाता है अर्थात् इन सात प्रकृतियों का संपूर्ण क्षय होने पर ही आत्मा में क्षायिक सम्यक्त्व गुण पैदा होता है ।

मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का विपाकोदय रुके तो ही आत्मा में सम्यग्दर्शन गुण प्रगट हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय का उदय हो तो जीव आंशिक भी जीव हिंसा आदि पापों का त्याग नहीं कर पाता है । अप्रत्याख्यानीय कषाय का विपाकोदय रुके तो ही देशविरति प्राप्त हो सकती है ।

प्रत्याख्यानीय कषाय का विपाकोदय हो तो जीवात्मा सर्वविरति प्राप्त नहीं कर पाती है अर्थात् प्रत्याख्यानीय कषाय का उदय सर्वविरति में प्रतिबंधक है ।

संज्वलन कषाय का उदय हो तो सातिचार संयम का पालन हो सकता है, परंतु निरतिचार यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है ।

कषायों की उपमा

जलरेणु पुढवि पव्वय, राई सरिसो चउव्विहो कोहो ।
तिणिसलया कटड्डिय, सेलत्थंभोवमो माणो ॥19॥

शब्दार्थ-

जल=पानी, **रेणु**=धूल, **पुढवी**=पृथ्वी, **पव्वय**=पर्वत, **राई सरिसो**=रेखा समान, **चउव्विहो**=चार प्रकार का, **कोहो**=क्रोध, **तिणिसलया**=बेंत, **कट्ठ**=काष्ठ, **ट्ठिअ**=हड्डी, **सेलत्थंभो**=पर्वत का स्तंभ, **उवमो**=जैसा, **माणो**=मान ।

गाथार्थ-

संज्वलन आदि चार प्रकार के क्रोध जल में रेखा, धूल में रेखा, पृथ्वी में रेखा और पर्वत में रेखा समान हैं ।

संज्वलन आदि चार प्रकार का अभिमान वेत्रलता, काष्ठ, अस्थि और पत्थर के स्तंभ समान हैं ।

विवेचन-

इस गाथा में क्रोध और मान के मानसिक परिणाम (अध्यवसाय) को उपमा द्वारा समझाया गया है ।

जगत् में रहे कई पदार्थों के स्वरूप को स्पष्टतया समझाने के लिए उपमा का आश्रय लिया जाता है ।

1) संज्वलन क्रोध : यह क्रोध पानी में खींची गई रेखा के समान है । जिस प्रकार पानी में रेखा खींचने पर वह रेखा तत्काल मिट जाती है, उसी प्रकार यह क्रोध तत्काल शांत हो जाता है ।

2) प्रत्याख्यानावरण क्रोध : यह क्रोध धूल में खींची गई रेखा के समान है । जैसे धूल में खींची गई रेखा तुरंत नहीं मिटती है, लेकिन हवा का झोंका आने पर नष्ट होती है, बस, इसी प्रकार जिस क्रोध को शांत होने में थोड़ा समय लगता है, उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते हैं ।

3) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध : पानी से भरा हुआ तालाब जब एकदम सूख जाता है, तब उसमें दरारें पड़ जाती हैं, जब तक पुनः पानी का संयोग न हो तब तक वे दरारें बनी रहती हैं, उसी प्रकार जो क्रोध कुछ लंबे समय तक (वर्ष पर्यंत) रहता है, वह अप्रत्याख्यानीय क्रोध है ।

7) अनंतानुबंधी क्रोध : पर्वत में जब दरारें पड़ जाती हैं तो वे कभी जुडती नहीं हैं । बस, इसी प्रकार जो क्रोध अनेक उपाय करने पर भी जीवन पर्यंत शांत नहीं होता है, वह अनंतानुबंधी क्रोध है ।

अहंकार

1) संज्वलन मान : जैसे बेंत को सामान्य श्रम से मोड़ा जा सकता है, उसी प्रकार जो अहंकार अल्प प्रयास से दूर हो जाता है, उसे संज्वलन मान कहते हैं ।

2) प्रत्याख्यानीय मान : यह अहंकार लकड़ी के समान है । सूखी लकड़ी को पानी या तैल आदि में रखने से वह नर्म हो जाती है, बस, उसी प्रकार जो अहंकार थोड़ी कठिनाई से दूर होता है, वह प्रत्याख्यानीय मान है ।

3) अप्रत्याख्यानीय मान : यह अहंकार हड्डी के समान है । हड्डी को मोडना कठिन है, उसी प्रकार जो अहंकार जल्दी दूर नहीं होता है, वह अप्रत्याख्यानीय मान है ।

4) अनंतानुबंधी मान : यह मान पत्थर के स्तंभ समान है । जैसे पत्थर के स्तंभ को मोड़ना शक्य नहीं है, उसी प्रकार जिस अहंकार को दूर करना अत्यंत ही कठिन है, वह अनंतानुबंधी मान है ।

मायाऽवलेहि-गोमुत्ति-मिंढसिंग-घणवंसिमूल समा ।
लोहो हलिद्द खंजण-कद्दम किमिराग सामाणो ।।20।।

शब्दार्थ-

माया=माया, **अवलेहि=**लकडी की छाल, **गोमुत्ति=**बैल की मूत्रधारा, **मिंढसिंग=**भेड के सींग, **घणवंस=**बाँस का मूल, **समा=**समान ।

लोहो=लोभ, **हलिद्द=**हल्दी, **खंजण=**काजल, **कद्दम=**कीचड़, **किमिराग=**किरमिची रंग, **सामाणो=**समान ।

गाथार्थ-

संज्वलन माया आदि लकड़ी के छिलके, बैल की मूत्र धारा, भेड़ के सींग तथा बाँस की जड़ में रहे टेढ़ेपन समान हैं ।

संज्वलन लोभ आदि हल्दी के रंग, काजल, बैलगाड़ी के पहिये के कीचड़ तथा किरमिची के रंग समान हैं ।

विवेचन-

इस गाथा में चार प्रकार की माया और चार प्रकार के लोभ को उपमा द्वारा समझाया गया है ।

माया

1) संज्वलन माया : बाँस के छिलके में रहा टेढ़ापन जैसे बिना श्रम के ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार जो माया तत्काल दूर हो जाती है, उसे संज्वलन माया कहते हैं ।

2) प्रत्याख्यानीय माया : यह माया चलते हुए बैल की मूत्र धारा की वक्रता समान है । यह कुटिल स्वभाव थोड़ी कठिनाई से दूर होता है ।

3) अप्रत्याख्यानीय माया : यह माया भेड़ के सींग के समान है । भेड़ के सींग की वक्रता को दूर करना कठिन होता है, इसी प्रकार इस माया की वक्रता भी जल्दी दूर नहीं होती है ।

4) अनंतानुबंधी माया : यह माया बाँस की जड में रही वक्रता समान है । जैसे बाँस की जड़ की वक्रता को दूर नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार इस माया को भी छोड़ना अत्यंत ही दुष्कर है ।

लोभ

1) संज्वलन लोभ : यह लोभ हल्दी के रंग जैसा है । जैसे हल्दी का रंग जल्दी उड़ जाता है, उसी प्रकार यह लोभ भी तत्काल दूर हो जाता है ।

2) अप्रत्याख्यानीय लोभ : कपड़े पर काजल का रंग लग जाय तो थोड़ा श्रम करने पर दूर हो जाता है, उसी प्रकार जो लोभ थोड़े श्रम से दूर होता हो, उसे अप्रत्याख्यानीय लोभ कहते हैं ।

3) प्रत्याख्यानीय लोभ : यह लोभ बैलगाड़ी के पहिये के कीचड़ के समान है, जो थोड़ी कठिनाई से दूर होता है ।

4) अनंतानुबंधी लोभ : जैसे किरमिची का रंग लगने पर कभी छूटता नहीं है । उसी प्रकार अनेक उपाय करने पर भी जिस लोभ के परिणाम दूर नहीं होते हैं, वह अनंतानुबंधी लोभ है ।

नो कषाय का स्वरूप

जस्सुदया होइ जिए, हास रइ-अरई सोग भय कुच्छा ।
सनिमित्तमन्नहा वा, तं इह हासाइ मोहणीयं ।।21।।

शब्दार्थ-

जस्सुदया=जिसके उदय, **होइ=**होता है, **जिए=**जीव में, **हास=**हास्य, **रइ=**रति, **अरइ=**अरति, **सोग=**शोक, **भय=**भय, **कुच्छा=**दुगुंछा, **सनिमित्तम्=**निमित्त सहित, **अन्नहा=**अन्यथा, **वा=**अथवा, **तं=**वह, **इह=**यहाँ, **हासाइ=**हास्य आदि **मोहणीयं=**मोहनीय ।

गाथार्थ-

जिस कर्म के उदय से जीव को कारण या बिना कारण हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा के भाव पैदा होते हैं, उन्हें नोकषाय मोहनीय के हास्य आदि नौ भेद समझने चाहिए ।

विवेचन-

कषायों के साथ रहकर अपना विपाक बताने वाले नोकषाय कहलाते हैं अथवा कषायों को प्रेरित करे, उसे नोकषाय कहते हैं ।

1) हास्य : भांड आदि की चेष्टा देखकर अर्थात् निमित्त पाकर जो हँसी आती है अथवा भूतकाल के प्रसंग को याद कर बिना कारण ही जो हँसी आ जाती है, उसे हास्य मोहनीय कहते हैं ।

2) रति : जिस कर्म के उदय से अनुकूल सामग्री मिलने पर मन में जो प्रीति भाव पैदा होता है, उसे रति मोहनीय कहते हैं ।

3) अरति : जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल सामग्री मिलने पर मन

में जो अप्रीति - उद्वेग का भाव पैदा होता है, उसे अरति कहते हैं।

4) भय : जिस कर्म के उदय से निमित्त मिलने पर अथवा बिना निमित्त ही भय पैदा होता हो, उसे भय मोहनीय कहा जाता है। भय के सात प्रकार हैं।

1) इहलोक भय 2) परलोक भय 3) चोरी का भय 4) अकस्मात् भय 5) आजीविका भय 6) मृत्यु भय और 7) अपयश भय।

5) शोक : जिस कर्म के उदय से निमित्त मिलने पर या निमित्त नहीं मिलने पर भी जो शोक का भाव पैदा होता है, उसे शोक मोहनीय कहा जाता है।

6) जुगुप्सा : जिस कर्म के उदय से सकारण या निष्कारण, बीभत्स पदार्थों को देखकर जो घृणा पैदा होती है, उसे जुगुप्सा मोहनीय कहते हैं।

पुरिसित्थि तदुभयं पइ, अहिलासो जव्वसा हवइ सो उ।
थी नर-नपु वेउदयो, फुंफुम तण नगर दाहसमो ॥22॥

शब्दार्थ-

पुरिसित्थि=पुरुष, स्त्री। **तदुभयं**=वे दोनों। **पइ**=प्रति, **अहिलासो**=अभिलाषा, **जव्वसा**=जिस कारण, **हवइ**=होती है। **थी**=स्त्री, **नर**=पुरुष, **नपु**=नपुंसक, **वेउदओ**=वेद का उदय, **फुंफुम**=करीष, **तण**=तृण, **नगरदाह**=नगर की आग, **समो**=समान।

गाथार्थ-

जिस कर्म के उदय से पुरुष, स्त्री और पुरुष-स्त्री दोनों के साथ रमण करने की इच्छा पैदा होती है, उसे क्रमशः स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद कहते हैं। इन तीनों वेदों की अभिलाषा क्रमशः करीषाग्नि, तृणाग्नि और नगरदाह के समान है।

विवेचन-

आत्मा का मूलभूत स्वभाव अवेदी है। वेद के उदय से ही संसारी आत्मा को स्त्री, पुरुष आदि के साथ मैथुन सेवन की इच्छा होती है। मोहनीय

कर्म का संपूर्ण क्षयकर जो आत्माएँ वीतराग बनी होती हैं, उन आत्माओं को किसी प्रकार के मैथुन की लेश भी इच्छा या प्रवृत्ति नहीं होती है ।

इस वेद के उदय के कारण ही संसारी जीवों को विजातीय तत्त्व के प्रति मोह उत्पन्न होता है और आगे चलकर विषय की अभिलाषा जागृत होती है ।

1) स्त्रीवेद : जिस कर्म के उदय से स्त्री को पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा पैदा होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं । इस वेद का उदय करीष की आग के समान है । करीष अर्थात् सूखा गोबर । करीष की आग धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, उसी प्रकार पुरुष के करस्पर्श आदि से स्त्री की कामवासना बढ़ती जाती है ।

2) पुरुष वेद : जिस कर्म के उदय से पुरुष को स्त्री के साथ मैथुन सेवन की इच्छा होती है, उसे पुरुष वेद कहते हैं । पुरुष वेद का उदय तृण की अग्नि समान है । जिस प्रकार तृण जल्दी सुलगता है और जल्दी शांत हो जाता है; उसी प्रकार पुरुष वेद के उदय से पुरुष को स्त्री के प्रति अधिक उत्सुकता होती है और स्त्रीसेवन के बाद वह उत्सुकता शांत हो जाती है ।

3) नपुंसक वेद : जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की इच्छा होती है, उसे नपुंसक वेद कहते हैं । यह कामवासना नगरदाह की आग समान है । जैसे नगर में आग लगने पर उस नगर को जलने में अधिक समय लगता है और उस आग को बुझाने में भी अधिक समय लगता है, इसी प्रकार नपुंसक वेद के उदय से जन्य विषयाभिलाषा जल्दी शांत नहीं होती है अर्थात् विषयसेवन से भी तृप्ति नहीं होती है ।

इस प्रकार कषाय मोहनीय की 16 और नोकषाय मोहनीय की 9 प्रकृतियाँ मिलकर चारित्र मोहनीय की कुल 25 प्रकृतियाँ होती हैं ।

दर्शन मोहनीय की 3 और चारित्र मोहनीय की 25 प्रकृतियाँ मिलकर मोहनीय कर्म की कुल 28 प्रकृतियाँ होती हैं ।

⌘

27 पाँचवाँ आयुष्य कर्म

सुर-नर तिरि निरयाऊ, हडि सरिसं नामकम्म चित्तिसमं ।
बायाल-ति-नवइ-विहं, ति उत्तर सयं च सत्तट्ठी ।।23।।

शब्दार्थ-

सुर=देव, **नर=**मनुष्य, **तिरि=**तिर्यंच, **निरयाऊ=**नारक का आयुष्य, **हडिसरिसं=**बेड़ी के समान, **नामकम्म=**नाम कर्म, **चित्तिसमं=**चित्रकार के समान, **बायाल=**बयालीस, **तिनवइ=**तिरानवे, **तिउत्तरसयं=**एक सौ तीन, **सत्तट्ठी=**सड़सठ ।

गाथार्थ-

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक के भेद से आयुष्य कर्म चार प्रकार का है । इसका स्वभाव बेड़ी समान है ।

नामकर्म का स्वभाव चित्रकार के समान है और उसके बयालीस, तिरानवै, एकसौ तीन और सड़सठ भेद होते है ।

विवेचन-

आत्मा का मूलभूत स्वभाव अजर, अमर और अविनाशी है । जन्म लेना, मरना, वृद्धावस्था प्राप्त करना इत्यादि आत्मा का स्वभाव नहीं है । अजन्मा स्वभाव वाली आत्मा को नए-नए जन्म लेने पड़ते हैं, अमर ऐसी आत्मा को बारबार मरना पड़ता है और अजर ऐसी आत्मा को बारबार वृद्धावस्था की पीड़ाएँ सहन करनी पड़ती हैं, यह सब अपनी आत्मा के लिए कलंक समान है ।

मुक्त आत्माएँ सदा काल के लिए जन्म, जरा और मरण के बंधन से मुक्त होती हैं, जबकि संसारी आत्माओं को बारबार जन्म-मरण करना पड़ता है ।

संसार में कहाँ जन्म लेना, यह भी अपनी इच्छा के अधीन नहीं है । इच्छा नहीं होते हुए भी एक चक्रवर्ती को नारक के रूप में जन्म लेना पड़ता है, एक सेनापति को पशु के रूप में जन्म लेना पड़ता है ।

संसारी आत्मा मौत को नहीं चाहे तो भी उसे मरना पड़ता है । जीवन के साथ मौत जुड़ी हुई है ।

मौत भी अपनी पसंदगी के अनुसार नहीं आती है । वह तो दीवाली के दिन भी आ जाती है और अपने जन्मदिन पर भी आ जाती है ।

जिसकी कल्पना मात्र से हम घबरा जाते हैं, ऐसे विकट प्रसंगों में भी मौत आकर अपना द्वार खटखटा देती है ।

◆ लग्न के साथ ही पति की मृत्यु हो जाती है और कुदरत उस कन्या का सौभाग्य चिह्न सदा के लिए छीन लेती है ।

◆ सगर चक्रवर्ती के एक ही साथ 60,000 पुत्र नागकुमार देवता के रोष के शिकार बन गए और उन्हें एक साथ मरना पड़ा ।

◆ सात-सात पुत्रों का पिता होने पर भी व्यक्ति संडास (Latrine) में ही सदा के लिए विदाई ले लेता है ।

जिसके नाखून में भी रोग नहीं, ऐसा हट्टा-कट्टा व्यक्ति हार्ट फेल हो जाने से तत्क्षण मर जाता है ।

अचानक भूकंप आ जाने से, अचानक नदी में बाढ़ आ जाने से, अचानक बाँध टूट जाने से, अचानक बिल्डिंग गिर जाने से, अचानक बस, ट्रेन, प्लेन का एक्सीडेंट हो जाने से सैकड़ों की संख्या में लोग मर जाते हैं ।

संसार में आत्मा के लिए कितने बंधन हैं ? इच्छा के अनुसार जन्म नहीं, इच्छा के अनुसार मृत्यु नहीं ।

नरक की भयंकर यातनाओं को प्रति पल सहन करने वाले नारक जीव हमेशा मृत्यु की इच्छा करते हैं, फिर भी वे मरते नहीं हैं, उन्हें अपना आयुष्य पूरा करना ही पड़ता है ।

• नंदिषेण आदि ने आत्महत्या के लिए भी प्रयास किए थे, फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिली ।

• इन्द्र महाराजा ने महावीर प्रभु को हाथ जोड़कर कहा 'प्रभो ! भस्मराशि ग्रह का उदय होने वाला है, आप अपना आयुष्य थोड़ा सा बढ़ा दो, जिससे आपके शासन पर क्रूर-ग्रह की असर न हो ।'

इंद्र की इस प्रार्थना को सुनकर महावीर प्रभु ने भी कह दिया, 'यह संभव नहीं है। तीर्थंकर भी, अपने आयुष्य को बढ़ा नहीं सकते हैं।'

- तीर्थंकर परमात्मा अनंत शक्तिशाली होने पर भी अपने आयुष्य को बढ़ाने में सक्षम नहीं हैं।

- आयुष्य कर्म, बेड़ी के समान है। यह कर्म जीवात्मा को एक भव में जकड़े रखता है। जब तक आयुष्य कर्म का उदय रहता है, तभी तक व्यक्ति जीवित रह सकता है-आयुष्य कर्म पूरा होने के साथ ही व्यक्ति को मरना पड़ता है।

- ज्ञानावरणीय आदि सात कर्मों का बंध प्रतिसमय होता है जब कि आयुष्य कर्म का बंध जीवन में एक ही बार होता है।

- वर्तमान भव में आगामी भव के आयुष्य का बंध होता है।

- आयुष्य का बंध एक ही बार होने से आयुष्य बंध का समय अत्यंत ही महत्त्व का है।

- वर्तमान आयुष्य का दो तिहाई भाग व्यतीत होने पर आगामी भव के आयुष्य का बंध होता है। उस समय आयुष्य का बंध नहीं हुआ हो तो अवशिष्ट आयुष्य के दो-तिहाई भाग बीतने पर आयुष्य का बंध होता है। उस समय भी आयुष्य बंध नहीं हो तो मृत्यु के पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल में तो आगामी भव के आयुष्य का बंध अवश्य होता है।

जैसे ट्रेन में बिना टिकिट यात्रा नहीं होती है, उसी प्रकार जीवात्मा आयुष्य कर्म का बंध किये बिना आगामी भव प्राप्त नहीं कर सकता है।

आयुष्य का बंध एक ही बार होता है, उस समय जीवात्मा के जो अध्यवसाय होते हैं, वैसी ही गति के आयुष्य का बंध हो जाता है।

श्रेणिक महाराजा भविष्य में तीर्थंकर होने वाले होने पर भी आयुष्य बंध के समय उनका ध्यानलेश्या आदि शुभ नहीं होने से उन्होंने नरक आयुष्य का बंध कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप उन्हें मरकर नरक में जाना पड़ा।

आयुष्य और आयुष्य कर्म में फर्क है। आयुष्य कर्म कारण है और आयुष्य उसका फल है।

आयुष्य के दो भेद हैं-

1. अपवर्ती आयुष्य कर्म : जिस आयुष्य में कमी हो सकती हो उसे अपवर्ती आयुष्य कर्म कहते है आयुष्य कम होने पर भी अन्तर्मुहूर्त आयुष्य तो शेष रहता ही है ।

2. अनपवर्ती आयुष्य कर्म : निकाचित रूप में बँधे हुए जिस आयुष्य में लेश भी कमी नहीं होती हो उसे अनपवर्ती आयुष्य कहते हैं । इस आयुष्य कर्म के भी दो भेद हैं -

(अ) सोपक्रम अनपवर्ती : सोपक्रम अर्थात् आयुष्य टूटने के संयोग । आयुष्य टूटने के संयोग पैदा होने पर भी जो आयुष्य टूटे नहीं उसे सोपक्रम अनपवर्ती आयुष्य कहते हैं ।

(ब) निरुपक्रम अनपवर्ती : जिस आयुष्य के टूटने के संयोग ही उपस्थित नहीं होते हों, उसे निरुपक्रम अनपवर्ती आयुष्य कहते हैं ।

आयुष्य का आधार, आयुष्य कर्म होने से आयुष्य कर्म नष्ट होने पर आयुष्य भी क्षीण हो जाता है ।

देव, नारक, चरम शरीरी, शलाका पुरुष, अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप में पैदा हुए मनुष्य-तिर्यंच, कर्म भूमि में पैदा हुए युगलिक आदि का आयुष्य अनपवर्ती होता है ।

अपवर्ती आयुष्य सोपक्रम से युक्त होता है ।

अपने मन में उत्पन्न अध्यवसायादि तथा विष-शस्त्र आदि से जीवन का जो अंत आता है, वे सब उपक्रम कहलाते हैं ।

उपक्रम के 7 भेद हैं -

1. अध्यवसाय : राग, भय और स्नेह के तीव्र अध्यवसाय के कारण भी आयुष्य खंडित हो जाता है ।

प्रिय व्यक्ति के वियोग को सहन नहीं करने के कारण अचानक Heart Fail हो जाता है ।

● कृष्ण के आगमन को जानकर, भयभीत बने शोमिल ब्राह्मण की मृत्यु हो गई थी ।

2. **दंड, शस्त्र, डोरा, अग्नि, पानी में गिरना, मल - मूत्र** के अवरोध तथा विषभक्षण से भी आयुष्य क्षीण हो जाता है ।

3. अति आहार करने से अथवा अत्यंत भूखे रहने से भी आयुष्य का नाश हो जाता है : संप्रति की आत्मा ने पूर्व भव में, भिखारी के भव में दीक्षा अंगीकार करने के बाद अति आहार कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई थी ।

4. शूल की असह्य पीड़ा, नेत्र - पीड़ा आदि के कारण भी आयुष्य समाप्त हो जाता है ।

5. दीवार, बिजली आदि के गिरने से भी आयुष्य समाप्त हो जाता है ।

6. सर्पदंश आदि से भी आयुष्य क्षीण हो जाता है ।

7. श्वासोच्छ्वास के अवरोध से भी आयुष्य क्षीण हो जाता है ।

जो आयुष्य बँधा हुआ होता है, उसमें किसी भी समय में वृद्धि नहीं हो सकती है । व्यवस्थित जीवनचर्या रखने से व्यक्ति दीर्घकाल तक जीता हैं, इसका तात्पर्य यही है कि उसके आयुष्य पर किसी प्रकार का उपघात नहीं लगा । इसी को व्यवहार भाषा में 'आयुष्य बढ़ गया' कहते हैं, परंतु वास्तव में बँधे हुए आयुष्य में कभी वृद्धि नहीं होती है ।

देवता, नारक तथा असंख्य वर्ष के आयुष्य वाले युगलिक मनुष्य व तिर्यंच अपने वर्तमान आयुष्य में छह मास बाकी रहने पर आगामी भव के आयुष्य का बंध करते हैं ।

सिर्फ चरमशरीरी आत्माएँ अपने जीवन में आयुष्य कर्म का बंध नहीं करती हैं, इनके सिवाय सभी आत्माएँ जीवन में एक बार आगामी भव के आयुष्य का बंध अवश्य करती हैं ।

चार गति में आयुष्य-प्रमाण

देव आयुष्य	जघन्य	उत्कृष्ट
1. भवनपति	10 हजार वर्ष	दो सागरोपम से कुछ अधिक
2. व्यंतर	10 हजार वर्ष	एक पल्योपम
3. ज्योतिष	पल्योपम का आठवाँ भाग	1 पल्योपम 1 लाख वर्ष अधिक
4. वैमानिक	एक पल्योपम	33 सागरोपम

नरक	जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक	10 हजार वर्ष	1 सागरोपम
दूसरी नरक	1 सागरोपम	3 सागरोपम
तीसरी नरक	3 सागरोपम	7 सागरोपम
चौथी नरक	7 सागरोपम	10 सागरोपम
पाँचवीं नरक	10 सागरोपम	17 सागरोपम
छठी नरक	17 सागरोपम	22 सागरोपम
सातवीं नरक	22 सागरोपम	33 सागरोपम

मनुष्य

मनुष्य का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आयुष्य 3 पल्योपम का है।

उत्कृष्ट आयुष्य

उत्सर्पिणी	अवसर्पिणी	उत्कृष्ट आयुष्य
छठा आरा	पहला आरा	तीन पल्योपम
पाँचवाँ आरा	दूसरा आरा	दो पल्योपम
चौथा आरा	तीसरा आरा	एक पल्योपम
तीसरा आरा	चौथा आरा	पूर्व करोड़ वर्ष
दूसरा आरा	पाँचवाँ आरा	130 वर्ष
पहला आरा	छठा आरा	बीस वर्ष

तिर्यंच गति में जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योयम है ।

	उत्कृष्ट आयुष्य
पर्याप्ता बादर पृथ्वीकाय	22 हजार वर्ष
पर्याप्ता बादर अप्‌काय	7 हजार वर्ष
पर्याप्ता बादर तेउकाय	3 अहोरात्र
पर्याप्ता बादर वायुकाय	3,000 वर्ष
पर्याप्ता बादर वनस्पतिकाय	10,000 वर्ष
पर्याप्ता बादर बेइन्द्रिय	12 वर्ष
पर्याप्ता बादर तेइन्द्रिय	49 दिन
पर्याप्ता बादर चउरिन्द्रिय	6 मास
गर्भज जलचर, उरपरिसर्प, भुज परिसर्प	पूर्व करोड़ वर्ष
गर्भज चतुष्पद	तीन पल्योपम
गर्भज खेचर	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग
संमूर्च्छिम जलचर	पूर्व करोड़ वर्ष
उरपरिसर्प	53,000 वर्ष
भूज परिसर्प	42,000 वर्ष
चतुष्पद	84,000 वर्ष
खेचर	72,000 वर्ष

28 नाम कर्म

आत्मा का मूलभूत स्वभाव अरूपी है, अर्थात् आत्मा में किसी प्रकार का रूप-आकार नहीं है । यहाँ अरूपी से तात्पर्य आत्मा में वर्ण नहीं है, गंध नहीं है, रस नहीं है, स्पर्श नहीं और शब्द नहीं है, आकार नहीं है ।

जिस प्रकार नट मंडली का नायक, अपने अधीन काम करनेवाले नटों को विविध प्रकार के वेष आदि भजने के लिए बाध्य करता है, उसी प्रकार जो कर्म आत्मा को नरक आदि विविध गतियों में विविध प्रकार के आकार आदि धारण करने के लिए बाध्य करता है, उस कर्म का नाम, नामकर्म है ।

इस कर्म के उदय से आत्मा नरक आदि गतियों में विविध प्रकार के आकार-पर्याय को धारण करती है ।

यह कर्म चित्रकार के समान है । जिस प्रकार चित्रकार अपनी मति-कल्पनानुसार विविध प्रकार के चित्र तैयार करता है, उसी प्रकार यह कर्म संसारी जीवों को विविध गति, जाति आदि के आकार प्रदान करता है ।

अपेक्षा भेद से नामकर्म के बयालीस, तिरानवै, एकसौ तीन और सडसठ भेद बताए गए हैं ।

पिंड प्रकृति का स्वरूप

गइ जाइ तणु उवंगा, बंधण संघायणानि संघयणा ।
संठाण वण्ण गंध रस, फास आणु पुव्वि विहग-गई ।।24।।

शब्दार्थ-

गइ=गति, **जाइ=**जाति, **तणु=**शरीर, **उवंगा=**उपांग, **बंधण=**बंधन, **संघायणाणि=**संघातन, **संघयणा=**संघयण, **संठाण=**संस्थान, **वण्ण=**वर्ण, **गंध=**गंध, **रस=**रस, **फास=**स्पर्श, **आणुपूव्वि=**आनुपूर्वी, **विहग-गइ=**विहायोगति ।

गाथार्थ-

गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, बंधन, संघातन, संघयण, संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी और विहायोगति ये 14 पिंड प्रकृति है ।

विवेचन-

1) गतिनाम कर्म : आत्मा का मूलभूत स्वभाव 'स्थिर' (अचल) रहने का है, परंतु गति नाम कर्म के उदय के कारण आत्मा को एक जगह से दूसरी जगह अर्थात् एक गति से दूसरी गति में जाना पड़ता है ।

2) जाति नामकर्म : अनेक व्यक्तियों में रहे समान परिणाम को जाति कहा जाता है। जैसे पृथ्वीकाय, अप्काय आदि सभी को एकेन्द्रिय कहा जाता है।

3-4) शरीर व अंगोपांग नाम कर्म : आत्मा का मूलभूत स्वभाव अशरीरी है, परंतु संसार में रहना हो तो उसे शरीर धारण करना ही पडता है। आत्मा को भिन्न भिन्न गति में अलग अलग शरीर की प्राप्ति शरीर नाम कर्म के उदय से और शरीर के अंग उपांग की प्राप्ति अंगोपांग नाम कर्म के उदय से होती है ।

5) बंधन नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से पूर्व गृहीत औदारिक आदि शरीर पुद्गलों के साथ नवीन ग्रहण किए जानेवाले पुद्गलों का संबंध हो, उसे बंधन नाम कर्म कहते हैं ।

6) संघातन नाम कर्म : उत्पत्ति स्थान में आई हुई आत्मा, शरीर नाम कर्म के उदय से, जिस आकाश प्रदेश में हो, उस आकाश प्रदेश में से शरीर योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर शरीर रूप में परिणत करती है, फिर उन पुद्गलों को अपने शरीर की लंबाई-चौडाई और मोटाई के अनुसार उसका पिंड (समूह) करती है, उसी को शास्त्रीय भाषा में संघातन कहा जाता है।

7) संघयण नाम कर्म : उत्पत्ति स्थान में रही हुई आत्मा, शरीर नाम कर्म के उदय से शरीर योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर शरीर पर्याप्ति के बल से रक्त, मांस आदि सात धातुमय शरीर बनाती है, फिर उस शरीर को मजबूत करने के लिए हड्डियों की विशिष्ट रचना होती है, जिसे संघयण कहते हैं। उस संघयण की प्राप्ति संघयण नाम कर्म के उदय से होती है ।

8) संस्थान नाम कर्म : शरीर के रूप में परिणत हुए पुद्गलों को स्वशरीर की लंबाई-चौड़ाई और मोटाई के अनुसार पुद्गल पिंड तैयार होने के बाद उसके अवयव सम और विषम आकार में बनकर अच्छी या खराब आकृति उत्पन्न होती है, उसे संस्थान कहते हैं ।

9-10-11-12) वर्ण-गंध-रस और स्पर्श नाम कर्म : संसारी जीव शरीर योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें शरीर के रूप में परिणत करता है, उस

समय उसमें विविध वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पैदा होते हैं । उन वर्ण आदि को पैदा करने का काम वर्ण आदि नाम कर्म करते हैं ।

13) आनुपूर्वी नाम कर्म : मरण स्थान से उत्पत्ति स्थान समश्रेणि में हो तो जीव ऋजुगति से उत्पत्ति स्थान में पहुँच जाता है, उस समय उसे किसी की मदद की जरूरत नहीं रहती है, परंतु उत्पत्ति स्थान से विषम गति में जाना हो तो मोड़वाले स्थान पर उसे मदद की जरूरत पड़ती है, यह आनुपूर्वी नाम कर्म उस मोड़ के स्थान पर जीव को आगे बढ़ाने में सहायक बनता है ।

14) विहायोगति : जिस कर्म के उदय से जीव की चाल शुभ अथवा अशुभ होती है, उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं ।

पिंडपयडि त्ति चउदस, परघा उस्सास आयवुज्जोयं ।
अगुरु लहु तित्थ निमिणो-वघायमिअ अट्ठ पत्तेआ ।।25।।

शब्दार्थ-

पिंडपयडि=पिंड प्रकृतियाँ, **त्ति=**इस प्रकार, **चउदस=**चौदह, **परघा=**पराघात, **उस्सास=**श्वासोच्छ्वास, **आयवुज्जोयं=**आतप-उद्योत, **अगुरुलहु=**अगुरुलघु, **तित्थ=**तीर्थंकर, **निमिणो=**निर्माण, **वघायं=**उपघात, **इअ=**इस प्रकार, **अट्ठ=**आठ, **पत्तेआ=**प्रत्येक ।

गाथार्थ-

इस प्रकार चौदह पिंड प्रकृतियाँ समझनी चाहिए । पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थंकर, निर्माण और उपघात- ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ हैं ।

विवेचन-

पराघात आदि आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ कहलाती हैं । इनका विस्तृत वर्णन आगे की गाथाओं में किया जाएगा ।

त्रस-दशक स्थावर दशक

तस बायर-पज्जत्तं, पत्तेय-थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुसराइज्ज जसं, तस दसगं थावर दसं तु इमं ।।26।।

थावर सुहुम अपज्जं, साहारण-अथिर-असुभ दुभगाणि ।
दुस्सर-णाइज्जा जसमिअ नामे सेअरा वीसं ।।27।।

शब्दार्थ-

तस=त्रस, **बायर=**बादर, **पज्जत्तं=**पर्याप्त, **पत्तेय=**प्रत्येक, **थिरं=**स्थिर, **सुभं=**शुभ, **सुभगं=**सौभाग्य, **सुसराइज्ज=**सुस्वर, आदेय, **जसं=**यश, **तसदसगं=**त्रसदशक, **थावरदसं=**स्थावर दशक, **इमं=**यह, **थावर=**स्थावर, **सुहुम=**सूक्ष्म, **अपज्जं=**अपर्याप्त, **साहारण=**साधारण, **अथिर=**अस्थिर, **असुभ=**अशुभ, **दुभगाणि=**दौर्भाग्य, **दुस्सर=**दुःस्वर, **अणाइज्ज जसं=**अनादेय, अपयश, **इअ=**इस प्रकार, **नामे=**नाम कर्म में, **सेयरा=**इतर (विरोधी) सहित, **वीसं=**बीस ।

गाथार्थ-

त्रस नाम कर्म, बादर नाम कर्म, पर्याप्त नाम कर्म, प्रत्येक नाम कर्म, स्थिर नाम कर्म, शुभ नाम कर्म, सौभाग्य नाम कर्म, सुस्वर नाम कर्म, आदेय नाम कर्म, यश नाम कर्म, ये दस, त्रस-दशक कहलाते हैं ।

स्थावर नाम कर्म, सूक्ष्म नाम कर्म, अपर्याप्त नाम कर्म, साधारण नाम कर्म, अस्थिर नाम कर्म, अशुभ नाम कर्म, दुर्भाग्य नाम कर्म, दुःस्वर नाम कर्म, अनादेय नाम कर्म, अपयश नाम कर्म, ये नाम कर्म की परस्पर विरोधी बीस प्रकृतियाँ हैं ।

विवेचन-

दस-दस प्रकृतियों के समूह को दशक कहा जाता है । त्रस दशक अर्थात् त्रस आदि दस प्रकृतियाँ ।

स्थावर दशक = स्थावर आदि दस प्रकृतियाँ ।

ये प्रकृतियाँ परस्पर विरोधी हैं । जैसे त्रस की विरोधी स्थावर है । इस प्रकार सब में समझ लेना चाहिए ।

नाम कर्म के जो 42 भेद बतलाये हैं, वे इस प्रकार होते हैं–

14 पिंड प्रकृतियाँ
8 प्रत्येक प्रकृतियाँ
10 त्रस दशक
10 स्थावर दशक
―――――
42

29 कतिपय संज्ञाएँ

तस चउ थिर छक्कं, अथिर छक्कं सुहुमतिग थावर चउक्कं ।
सुभगतिगाइ-विभासा, तयाइ संखाहिं पयडीहिं ।।28।।
वण्ण चउ अगुरुलहुचउ-तसाइ दुति चउरछक्कमिच्चाइ ।
इय अन्नावि विभासा, तयाइ संखाहि पयडीहिं ।।29।।

शब्दार्थ-

तसचउं=त्रस चतुष्क, **थिर छक्कं=**स्थिर षट्क, **अथिर छक्कं=**अस्थिर षट्क, **सुहुमतिग=**सूक्ष्म त्रिक, **थावर चउक्कं=**स्थावर चतुष्क, **सुभगतिगाइ=**सुभग त्रिक आदि, **विभासा=**विभाषाएँ, **तयाइ=**वह आदि, **संखाहिं=**संख्या द्वारा, **पयडीहिं=**प्रकृतियों से ।

वण्णचउ=वर्ण चतुष्क, **अगुरुलहुचउ=**अगुरुलघु चतुष्क, **तसाइ=**त्रस आदि, **दुति-चउर छक्कं=**द्विक, त्रिक, चतुष्क, षट्क, **इच्चाइ=**इत्यादि, **इय=**इस प्रकार, **अन्नावि=**दूसरी भी ।

गाथार्थ-

त्रस चतुष्क, स्थिर षट्क, अस्थिर षट्क, सूक्ष्मत्रिक, स्थावर चतुष्क, सुभगत्रिक आदि जो पारिभाषिक संज्ञाएँ हैं, उनमें प्रारंभ होनेवाली प्रकृति के नाम सहित आगे जो संख्या दी गई है, उतनी प्रकृति लेनी चाहिए ।

वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस द्विक, त्रस त्रिक, त्रस चतुष्क, त्रस षट्क आदि संज्ञाएँ हैं । इस प्रकार अन्य भी उन-उन प्रकृतियों के नाम गिनने से दूसरी-दूसरी संज्ञाएँ समझ लेनी चाहिए ।

विवेचन-

कर्म स्तव तथा आगम आदि ग्रंथों में ग्रंथ की लाघवता के लिए कुछ प्रकृति के नाम देकर उसके आगे दो तीन आदि संख्या बताकर कुछ संज्ञाएँ बताई गई हैं । जो इस प्रकार हैं–

1) त्रस चतुष्क-त्रस आदि चार 1) त्रस नाम 2) बादर नाम 3) पर्याप्त नाम और 4) प्रत्येक नाम ।

2) स्थिर षट्क-1) स्थिर नाम 2) शुभ नाम 3) सुभग नाम 4) सुस्वर नाम 5) आदेय नाम 6) यश नाम ।

3) अस्थिर षट्क-1) अस्थिर नाम 2) अशुभ नाम 3) दुर्भग नाम 4) दुःस्वर नाम 5) अनादेय नाम और 6) अपयश नाम ।

4) स्थावर चतुष्क-1) स्थावर नाम 2) सूक्ष्म नाम 3) अपर्याप्त नाम 4) साधारण नाम

5) सुभग त्रिक-1) सुभगनाम 2) सुस्वर नाम 3) आदेय नाम

6) वर्ण चतुष्क-1) वर्ण नाम 2) गंध नाम 3) रसनाम 4) स्पर्श नाम

7) अगुरुलघु चतुष्क-1) अगुरुलघु नाम 2) उपघात नाम 3) पराघात नाम 4) उच्छ्वास नाम

8) त्रसद्विक-1) त्रस नाम 2) बादर नाम

9) त्रसत्रिक-1) त्रस नाम 2) बादर नाम 3) पर्याप्त नाम

10) त्रस षट्क-1) त्रस नाम 2) बादरनाम 3) पर्याप्तनाम 4) प्रत्येक नाम 5) स्थिर नाम 6) शुभ नाम ।

पिंड प्रकृति के उत्तर-भेद

गइआइण उ कमसो, चउ-पण-पण-ति पण-पंच-छ-छक्कं ।
पण-दुग-पणट्ठ-चउ-दुग, इअ उत्तर भेय-पण सट्ठी ।।30।।

शब्दार्थ-

गइ आइण=गति आदि का, **कमसो**=क्रमशः, **चउ**=चार, **पण**=पाँच, **ति**=तीन, **छ**=छह, **छक्कं**=छह, **दुग**=दो, **पणट्ठ**=पाँच और आठ, **इअ**=इस प्रकार, **उत्तर भेय**=उत्तर भेद, **पण-सट्ठी**=पैंसठ ।

गाथार्थ-

पहले कही गई नाम-कर्म की 14 पिंड प्रकृतियों के क्रमशः चार, पाँच,

पाँच, तीन, पाँच, पाँच, छह, छह, पाँच, दो, पाँच, आठ, चार और दो भेद होते हैं, इन सब भेदों को जोड़ने पर कुल पैंसठ भेद होते हैं ।

विवेचन-

पिंड प्रकृति के 14 भेदों की उत्तर प्रकृतियों की संख्या का निर्देश इस गाथा में बताया गया है-

1.	गति नाम कर्म	4 भेद
2.	जाति नाम कर्म	5 भेद
3.	शरीर नाम कर्म	5 भेद
4.	अंगोपांग नाम कर्म	3 भेद
5.	बंधन नाम कर्म	5 भेद
6.	संघातन नाम कर्म	5 भेद
7.	संघयण नाम कर्म	6 भेद
8.	संस्थान नाम कर्म	6 भेद
9.	वर्ण नाम कर्म	5 भेद
10.	गंध नाम कर्म	2 भेद
11.	रस नाम कर्म	5 भेद
12.	स्पर्श नाम कर्म	8 भेद
13.	आनुपूर्वी नाम कर्म	4 भेद
14.	विहायोगति नाम कर्म	2 भेद

कुल 65 भेद हुए ।

अडवीस जुआ तिनवइ, संते वा पनरबंधणे तिसयं ।
बंधण संघायगहो, तणूसु सामण्ण-वण्णचउ ॥31॥

शब्दार्थ-

अडवीस=अट्ठाईस, **जुआ=**युक्त, **तिनवइ=**तेरानवै, **संते=**सत्ता में, **वा=**अथवा, **पनर=**पंद्रह, **बंधणे=**बंधन, **तिसयं=**एक सौ तीन, **बंधण=**बंधन,

संघायगहो=संघातन का समावेश, **तणूसु**=शरीर में, **सामण्ण**=सामान्य से, **वण्णचउ**=वर्ण आदि चार !

गाथार्थ-

पिंड प्रकृति की कुल 65 प्रकृतियों के साथ 28 प्रकृति (8 प्रत्येक + 10 त्रस + 10 स्थावर दशक) जोड़ने पर तैरानवे प्रकृति होती हैं । 15 बंधन की विवक्षा करने पर 103 होती हैं । बंधन और संघातन का शरीर में समावेश करने पर तथा सामान्य से वर्ण आदि चार ग्रहण करने पर 67 प्रकृति होती है ।

विवेचन-

सत्ता की अपेक्षा नाम कर्म की 93 और 103 प्रकृतियाँ होती हैं ।

बंधन नाम कर्म और संघातन नाम कर्म की प्रकृतियाँ शरीर के आश्रित हैं, अतः 15 बंधन तथा 5 संघातन के कुल 20 भेद तथा वर्ण-गंध-रस और स्पर्श के कुल 20 भेद के बदले चार ही भेद गिनने पर 16 भेद कम हो जाते हैं । उस प्रकार 20 + 16 = 36 प्रकृति कम हो जाने पर 103–36=67 प्रकृति ही बचती है ।

बंध, उदय और उदीरणा की अपेक्षा नामकर्म के 67 भेद हैं ।

इअ सत्तट्ठी बंधोदए अ, न य सम्ममीसया बंधे ।
बंधुदए सत्ताए, वीस-दुवीस-ड्ववण्ण सयं ।।32।।

शब्दार्थ-

इअ=इस प्रकार, **सत्तट्ठी**=सडसठ, **बंधोदए**=बंध तथा उदय में, **न**=नहीं, **य**=और, **सम्म**=सम्यग्, **मीसया**=मिश्र, **बंधुदए**=बंध और उदय में, **सत्ताए**=सत्ता में, **वीस**=बीस, **दुवीस**=बाईस, **ड्ववण्ण**=अट्ठावन, **सयं**=सौ ।

गाथार्थ-

इस प्रकार 67 प्रकृति बंध, उदय और उदीरणा में होते हैं । सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीय की प्रकृति बंध में नहीं होती है अतः बंध, उदय और सत्ता में क्रमशः 120, 122 तथा 158 प्रकृतियाँ होती हैं ।

विवेचन-

प्रति समय ग्रहण किए जा रहे कर्म-पुद्‌गलों का लोह-अग्नि अथवा क्षीर-नीर की तरह आत्मा के साथ जो संबंध होता है, उसे बंध कहते हैं ।

कर्म के फल के अनुभव को उदय कहा जाता है ।

उदय में नहीं आ रहे कर्म पुद्‌गलों को प्रयत्न विशेष द्वारा जल्दी उदय में लाकर भोगना, उसे उदीरणा कहा जाता है ।

आत्मा के साथ कर्म-पुद्‌गलों के अस्तित्व को सत्ता कहा जाता है ।

जिस प्रकार नाम कर्म के कुल 103 भेद होने पर भी बंध की अपेक्षा से 67 भेद ही हैं उसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय की अपेक्षा से 28 भेद होने पर भी बंध की अपेक्षा से 26 भेद ही हैं । क्योंकि मोहनीय कर्म की दो प्रकृति-सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय का बंध नहीं होता है । बंध तो मिथ्यात्व मोहनीय का ही होता है, परंतु सम्यक्त्व गुण के कारण उसी के जो शुद्ध पुद्‌गल होते हैं उसे सम्यक्त्व मोहनीय और जो अर्ध शुद्ध पुद्‌गल होते हैं, उन्हें मिश्र मोहनीय कहा जाता है ।

इस प्रकार आठ कर्मों की बंध योग्य कुल प्रकृतियाँ 120 हैं ।

ज्ञानावरणीय की	5
दर्शनावरणीय की	9
वेदनीय की	2
मोहनीय की	26
आयुष्य की	4
नाम की	67
गोत्र की	2
अंतराय की	5
योग	120

उदय और उदीरणा में मोहनीय कर्म की सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय को जोडने से 120 + 2 = 122 भेद होते हैं ।

सत्ता की अपेक्षा नाम कर्म की 102 प्रकृतियाँ गिनने से कुल 158 भेद होते हैं ।

बंधन के 15 भेद की जगह 5 ही भेद लिये जाँय तो 148 भेद भी होते हैं ।

गति-जाति-शरीर

निरय तिरि नर सुर गइ, इग बिअ तिअ चउ पणिंदि जाइओ ।
ओराल विउव्वाहारग-तेअ-कम्मण पण सरीरा ॥33॥

शब्दार्थ-

निरय=नारक, **तिरि=**तिर्यंच, **नर=**मनुष्य, **सुरगइ=**देवगति, **इग=**एक, **बिअ=**दो, **तिय=**तीन, **चउ=**चार, **पणिंदि=**पंचेन्द्रिय, **जाइओ=**जातियाँ, **ओराल=**औदारिक, **विउव्व=**वैक्रिय, **आहारग=**आहारक, **तेअ=**तेजस, **कम्मण=**कार्मण, **पण=**पाँच, **सरीरा=**शरीर ।

गाथार्थ-

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गतियाँ हैं, एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये पांच जातियाँ हैं, औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं ।

विवेचन-

सुख-दु:ख के उपभोग के लिए अवस्था विशेष की प्राप्ति को गति कहते है ।

1) देव गति-उग्र पुण्य के भोग के लिए जीवात्मा को देवलोक में दिव्य सुखवाली अवस्था प्राप्त होती है, उसे देवगति कहते हैं, उसका कारण देवगति नाम कर्म है ।

2) मनुष्य गति-मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से मनुष्य गति प्राप्त होती है ।

3) तिर्यंच गति-तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय से तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है ।

4) नरक गति-नरक गति नाम कर्म के उदय से आत्मा को नरक गति की प्राप्ति होती है ।

चालू भव के आयुष्य की समाप्ति के बाद अगले भव में जिस आयुष्य का उदय चालू होता है, उसी के साथ उस गतिनाम कर्म का उदय भी चालू हो जाता है ।

जैसे कोई मनुष्य मरकर देवलोक में गया हो तो देवायुष्य के प्रारंभ के साथ ही देव गति का उदय चालू हो जाता है ।

देवगति में भुवनपति से अनुत्तर तक देवों के सुख में वृद्धि होती रहती है तथा नरक गति में पहली नरक से सातवीं नरक में क्रमशः दु:ख की वृद्धि होती रहती है ।

2. जाति नाम कर्म

परस्पर समान चेतना शक्ति की अपेक्षा संसारी जीवों को पाँच भागों में बाँटा गया है ।

(2) जातिनाम कर्म : एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों में विविध प्रकार के समान परिणाम रूप सामान्य को जाति कहते हैं तथा उस जाति को प्राप्त कराने वाले कर्म को जातिनाम कर्म कहते हैं । इसके मुख्य 5 भेद हैं–

1. एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को एक ही इन्द्रिय की प्राप्ति होती है-जैसे पृथ्वीकाय, अप्काय के जीव ।

2. बेइन्द्रिय जाति नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को दो इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । जैसे-कृमि आदि ।

3. तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को तीन इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । उदाहरण-मकोड़ा आदि ।

4. चउरिन्द्रिय जाति नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को चार इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । उदाहरण-बिच्छू आदि ।

5. पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को पंचेन्द्रियपने की प्राप्ति होती है । उदाहरण-मनुष्य आदि ।

(3) शरीर नाम कर्म : संसारी आत्मा इस संसार में शरीर के बिना

नहीं रह सकती है। किसी भी गति में रही आत्मा को शरीर तो धारण करना ही पड़ता है।

यद्यपि जीवों के शरीर भिन्न-भिन्न होने पर भी कार्य-कारण आदि की सदृशता के कारण शरीर के कुल 5 विभाग किए गए हैं। इनमें तैजस व कार्मण शरीर तो जीवात्मा के साथ अनादि काल से लगे हुए हैं। इसके साथ ही जिस गति में जन्म लेना हो, उस गति के अनुरूप शरीर भी धारण करना ही पड़ता है।

देव व नरक गति में जीवों के वैक्रिय शरीर होता है, जबकि मनुष्य व तिर्यंच गति में जीवों के औदारिक शरीर होता है।

1. औदारिक शरीर-तीर्थंकर-गणधर की अपेक्षा उदार अर्थात् प्रधान तथा वैक्रिय की अपेक्षा से स्थूल वर्गणा के पुद्‌गलों से बना शरीर औदारिक शरीर कहलाता है। इस शरीर का छेदन-भेदन हो सकता है, यह शरीर अग्नि से जल भी सकता है। यह शरीर मनुष्य व तिर्यंचों के होता है।

2. वैक्रिय शरीर-विविध रूपों को धारण कर सके, उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं। देव व नारक जीवों को भवधारणीय वैक्रिय शरीर होता है, जबकि मनुष्य व तिर्यंच को लब्धि-जन्य वैक्रिय शरीर होता है। औदारिक वर्गणा की अपेक्षा यह शरीर अत्यंत सूक्ष्म होता है।

3. आहारक शरीर-आहारक लब्धिधारी चौदह पूर्वधर मुनि, तीर्थंकर की ऋद्धि देखने अथवा अपने प्रश्नों के समाधान के लिए आहारक शरीर बनाते हैं। यह शरीर आहारक वर्गणा के पुद्‌गलों से बना होता है और एक हाथ प्रमाण होता है। यहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जाकर वापस लौटने में भी इस शरीर को मात्र अन्तर्मुहूर्त ही लगता है।

4. तैजस शरीर-खाए हुए भोजन को पचाने में कारणभूत शरीर को तैजस शरीर कहते हैं। शरीर में रही जठराग्नि यह तैजस शरीर ही है। जिस प्रकार अग्नि में मिट्टी के घड़े को पकाने की शक्ति रही हुई है और आग से पकने के बाद ही वह घड़ा पानी भरने के काम में आ सकता है, उसी प्रकार यह शरीर, खाए हुए अन्न को पचाकर उन्हें रक्त आदि के रूप में परिणत करता है।

मृत्यु पाए हुए व्यक्ति के बाह्य शरीर में से तैजस शरीर के निकल जाने के साथ ही वह शरीर ठंडा पड़ जाता है। उस शरीर में से गर्मी निकल जाती है, उसके बाद उस शरीर को मृत देह घोषित किया जाता है। यह शरीर आत्मा के साथ अनादिकाल से जुड़ा हुआ है और विग्रह गति में भी यह शरीर साथ रहता है।

5. कार्मण शरीर-आत्मा के साथ लगे कर्म-परमाणुओं के समूह को ही कार्मण शरीर कहते हैं। पानी व दूध के मिश्रण की तरह ये कर्म वर्गणाएँ आत्मा के साथ एकमेक होकर रही हुई हैं। यह शरीर भी आत्मा के साथ अनादिकाल से लगा हुआ है और विग्रह गति में भी आत्मा के साथ रहता है।

इन पाँचों शरीर का प्रमाण क्रमशः सूक्ष्म-सूक्ष्मतर है, परंतु परमाणुओं की संख्या क्रमशः अधिक-अधिक ही होती है।

• औदारिक, वैक्रिय व आहारक की अपेक्षा तैजस व कार्मण शरीर अत्यंत ही सूक्ष्म होते हैं।

• औदारिक व वैक्रिय शरीर का संबंध एक भव तक होता है। मृत्यु के साथ ही उस शरीर को छोड़ना पड़ता है, जबकि तैजस व कार्मण शरीर मृत्यु के बाद भी आत्मा के साथ जुड़े रहते हैं। प्रवाह की अपेक्षा ये दोनों शरीर आत्मा के साथ अनादिकाल से हैं।

• संसारी आत्मा को एक समय में कम से कम दो व अधिकतम चार शरीर होते हैं।

• विग्रहगति में आत्मा के साथ मात्र दो, तैजस व कार्मण शरीर ही होते हैं।

• अधिक समय के लिए जीवात्मा को तैजस-कार्मण व औदारिक शरीर (मनुष्य व तिर्यंच गति में) तथा तैजस-कार्मण व वैक्रिय शरीर (देव व नारक गति में) होते हैं।

• एक साथ चार शरीर-औदारिक, वैक्रिय, तैजस व कार्मण शरीर-वैक्रिय-लब्धिधारी मनुष्य व तिर्यंच को होता है तथा औदारिक-आहारक-तैजस और कार्मण शरीर, आहारक-लब्धिधारी चौदह पूर्वी मुनि को आहारक-शरीर बनाते समय होता है।

• आहारक लब्धिवंत मुनि को वैक्रिय लब्धि भी हो सकती है, फिर भी उन दोनों लब्धियों का प्रयोग एक साथ नहीं होता है।

• देवता-नारकों को भवधारणीय वैक्रिय शरीर होता है, जब कि तिर्यंच-मनुष्यों को लब्धिजन्य ही वैक्रिय शरीर होता है।

इस प्रकार औदारिक आदि शरीर की प्राप्ति में कारणभूत यह शरीर नामकर्म है।

कार्मण शरीर और कार्मण शरीर नामकर्म में भिन्नता है।

कार्मण वर्गणा के पुद्‌गलों को ग्रहण करने में हेतु भूत कार्मण शरीर नामकर्म की एक उत्तर प्रकृति है अर्थात् जब तक कार्मण शरीर नामकर्म का उदय है तब तक आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्‌गलों को ग्रहण करती है।

आत्मा के साथ एकाकार बने आठ कर्म की अनंत वर्गणा के पिंड का नाम कार्मण शरीर है।

अंगोपांग नाम कर्म के भेद

बाहूरु पिट्ठी सिर उर, उवरंग उवंग अंगुली पमुहा।
सेसा अंगोवंगा, पढम तणु तिगस्सुवंगाणि ॥34॥

शब्दार्थ-

बाहु=भुजा, **उरु**=जंघा, **पिट्ठी**=पीठ, **सिर**=मस्तक, **उर**=हृदय, **अंग**=अंग, **उवंग**=उपांग, **अंगुली पमुहा**=अंगुली आदि **सेसा**=शेष, **अंगोवंगा**=अंग-उपांग, **पढम तणु तिगस्स**=प्रथम तीन शरीर को, **उवंगाणि**=उपांग।

गाथार्थ-

दो हाथ, दो पैर, एक पीठ, एक सिर, एक छाती और एक पेट ये आठ अंग हैं। अंगुली आदि अंगों के साथ जुड़े हुए छोटे अवयवों को उपांग और शेष अंगोपांग कहलाते हैं ये अंग आदि औदारिक आदि तीन शरीरों में ही होते हैं।

विवेचन-

4. अंगोपांग नामकर्म : दो हाथ, दो पैर, पीठ, सिर, छाती तथा पेट ये अंग कहलाते हैं तथा अंगों के साथ संलग्न अंगुली, नाक, कान आदि छोटे-

छोटे अवयवों को उपांग और अंगुली की रेखा और पर्व आदि को अंगोपांग कहते हैं ।

औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर में ही अंगोपांग आदि होने से इसके तीन मुख्य भेद हैं–

1. औदारिक अंगोपांग नामकर्म : जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर में परिणत पुद्‌गलों से अंगोपांग रूप अवयव बनते हैं, उसे औदारिक अंगोपांग नामकर्म कहते हैं ।

2. वैक्रिय अंगोपांग नामकर्म : जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर में परिणत पुद्‌गलों से अंगोपांग रूप अवयव बनते हैं, उसे वैक्रिय अंगोपांग नामकर्म कहते हैं ।

3. आहारक अंगोपांग नामकर्म : जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रूप में परिणत पुद्‌गलों से अंगोपांग रूप अवयव बनते हैं, उसे आहारक अंगोपांग नामकर्म कहते हैं ।

बंधन नाम कर्म

उरलाइ पुग्गलाणं निबद्ध-बज्झंतयाण संबंधं ।
जं कुणइ जउसमं तं, बंधणमुरलाइ तणुनामा ॥35॥

शब्दार्थ-

उरलाइ=औदारिक आदि, **पुग्गलाणं=**पुद्‌गलों का, **निबद्ध=**पहले बँधे हुए, **बज्झंतयाणं=**बँधाते हुए, **संबंधं=**संबंध, **जं=**जो **कुणइ=**करता है । **जउ समं=**लाख के समान, **तं=**वह, **बंधणं=**बंधन नाम कर्म, **उरलाइ=**औदारिक आदि, **तणु नामा=**शरीर के नाम ।

गाथार्थ-

जो कर्म लाख के समान बँधे हुए और नए बँधनेवाले औदारिक आदि शरीर के पुद्‌गलों का आपस में संबंध कराता है, उस कर्म को औदारिक आदि बंधननाम कर्म कहते हैं ।

विवेचन-

जिस प्रकार लाख, गोंद आदि चिकने पदार्थ दो वस्तुओं को परस्पर

चिपका देते हैं, उसी प्रकार यह बंधन नाम कर्म, पहले ग्रहण किए गए और वर्तमान में ग्रहण किए जा रहे औदारिक आदि शरीर के पुद्गलों को बाँध देता है। यदि यह बंधन नाम कर्म नहीं होता तो उन पुद्गलों का संबंध भी नहीं जुड़ता और वे पुद्गल हवा में ऐसे ही उड़ जाते।

उत्पत्ति स्थान में आया हुआ जीव पहले समय में जिन औदारिक आदि पुद्गलों को ग्रहण करता है, उसे सर्वबंध और दूसरे समय से लेकर मरण समय तक जिन पुद्गलों को ग्रहण करता है, उसे देशबंध कहा जाता है।

5. इस बंधन नाम कर्म के 5 भेद हैं :

1) औदारिक बंधन नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से पहले ग्रहण किए हुए औदारिक पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण किए जा रहे पुद्गलों का संबंध होता है, उसे औदारिक बंधन नाम कर्म कहते हैं।

2) वैक्रिय बंधन नाम कर्म : पहले ग्रहण किए वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण कियेजा रहे वैक्रिय वर्गणाओं के पुद्गलों का जो संबंध होता है, उसे वैक्रिय बंधन नाम कर्म कहते हैं।

3) आहारक बंधन नाम कर्म : पहले ग्रहण किए आहारक वर्गणा के पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण किए जा रहे आहारक वर्गणाओं के पुद्गलों का जो संबंध होता है, उसे आहारक बंधन नाम कर्म कहते हैं।

4) तैजस बंधन नाम कर्म : पहले ग्रहण किए गए तैजस वर्गणा के पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण किए जा रहे तैजस वर्गणा के पुद्गलों का जो संबंध होता है, उसे तैजस बंधन नाम कर्म कहते हैं।

5) कार्मण बंधन नाम कर्म : पहले ग्रहण किए कार्मण वर्गणा के पुद्गलों के साथ वर्तमान में ग्रहण किए जा रहे कार्मण पुद्गलों का जो संबंध होता है, उसे कार्मण बंधन नाम कर्म कहते हैं।

पाँच संघातन

जं संघायइ उरलाइ, पुग्गले तिण गणं व दंताली।
तं संघायं बंधणमिव तणु नामेण पंचविहं ।।36।।

शब्दार्थ-

जं=जो, **संघायइ=**इकट्ठा करते हैं, **उरलाइ=**औदारिक आदि, **पुग्गले=**पुद्गलों को, **तिण गणं=**तृण का समूह, **व=**तरह, **दंताली=**दंताली, **तं=**वह, **संघायं=**संघातन नामकर्म, **बंधणं=**बंधन, **इय=**तरह, **तणु नामेण=**शरीर के नाम से, **पंचविहं=**पाँच प्रकार का ।

गाथार्थ-

जिस प्रकार दंताली से तृण का समूह एकत्र किया जाता है, उसी प्रकार जो कर्म औदारिक शरीर आदि पुद्गलों को इकट्ठा करता है, उसे संघातन नाम कर्म कहते हैं । बंधन की तरह इसके भी औदारिक आदि पाँच शरीरों के नाम से 5 भेद होते हैं ।

विवेचन-

6. संघातन नामकर्म : दंताली द्वारा जिस प्रकार तृण समूह को इकट्ठा किया जाता है, उसी प्रकार जो कर्म औदारिक आदि शरीर-पुद्गलों को एकत्र करता है, उसे संघातन नामकर्म कहते हैं ।

पूर्व गृहीत और ग्रहण किए जा रहे पुद्गलों का परस्पर बंधन तभी संभव है, जब गृहीत और गृह्यमाण पुद्गल समीप में होंगे । अर्थात् वे दोनों एक दूसरे के निकट होंगे, तभी बंधन होना संभव है-यह संघातन नामकर्म का कार्य है ।

संघातन नामकर्म शरीर योग्य पुद्गलों को निकट में लाता है और बंधन नामकर्म के द्वारा वे सम्बद्ध होते हैं ।

संघातन नामकर्म के 5 भेद हैं :

1. औदारिक संघातन नामकर्म : जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के रूप में परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो, उसे औदारिक संघातन नामकर्म कहते हैं ।

2. वैक्रिय संघातन नामकर्म : जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रूप में परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो, वह वैक्रिय संघातन नामकर्म कहलाता है ।

3. आहारक संघातन नामकर्म : जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रूप में परिणत पुद्गलों का सान्निध्य हो, वह आहारक संघातन नामकर्म है ।

4. तैजस संघातन नामकर्म : जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर के रूप में परिणत पुद्गलों का सान्निध्य हो, वह तैजस संघातन नामकर्म है ।

5. कार्मण संघातन नामकर्म : जिस कर्म के उदय से कार्मण शरीर रूप में परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो वह कार्मण संघातन नामकर्म है ।

ओराल विउव्वाहारयाण, सग तेय कम्म जुत्ताणं ।
नव बंधणाणि इअर दु-सहियाणं तिन्नि ते सिंच ।।37।।

शब्दार्थ-

ओराल=औदारिक, **विउव्वाहारयाण=**वैक्रिय-आहारक, **सग=**सहित, **तेयकम्म=**तैजस-कार्मण, **जुत्ताणं=**युक्त, **नव=**नौ, **बंधणाणि=**बंधन, **इअर=**दूसरे, **दु=**दो, **सहियाणं=**सहित, **तिन्नि=**तीन, **तेसिं=**उन दो के साथ, **च=**और ।

गाथार्थ-

औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों का अपने नाम वाले और तैजस व कार्मण शरीर के साथ संबंध जोड़ने से बंधन नाम कर्म के नौ भेद, तैजस-कार्मण को संयुक्त रूप से उनके साथ जोड़ने से और तीन भेद और तैजस व कार्मण को अपने नामवाले व अन्य के साथ संयोग करने पर तीन भेद होते हैं, इस प्रकार इन सभी भेदों को मिलाने पर बंधन नाम कर्म के 15 भेद होते हैं ।

विवेचन-

बंधन नामकर्म : जिस प्रकार लाख, गोंद आदि चिकने पदार्थ दो वस्तुओं को परस्पर चिपका देते हैं-जोड़ देते हैं, उसी प्रकार बंधन नामकर्म, शरीर नामकर्म के बल से पहले ग्रहण किए हुए और वर्तमान में ग्रहण हो रहे औदारिक आदि पुद्गलों को बाँध देता है ।

बंधन नामकर्म के कुल 15 भेद हैं-

1. औदारिक औदारिक बंधन नामकर्म : औदारिक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे औदारिक पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

2. औदारिक तैजस बंधन नामकर्म : औदारिक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

3. औदारिक कार्मण बंधन नामकर्म : औदारिक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

4. औदारिक तैजस कार्मण बंधन नामकर्म : औदारिक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस-कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

5. वैक्रिय-वैक्रिय बंधन नामकर्म : वैक्रिय पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे वैक्रिय पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

6. वैक्रिय तैजस बंधन नामकर्म : वैक्रिय पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

7. वैक्रिय कार्मण बंधन नामकर्म : वैक्रिय पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

8. वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन नामकर्म : वैक्रिय पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस-कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

9. आहारक आहारक बंधन नामकर्म : आहारक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे आहारिक पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

10. आहारक तैजस बंधन नामकर्म : आहारक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

11. आहारक कार्मण बंधन नामकर्म : आहारक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

12. आहारक तैजस कार्मण बंधन नामकर्म : आहारक पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस-कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

13. तैजस कार्मण बंधन नामकर्म : तैजस पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

14. तैजस तैजस बंधन नामकर्म : तैजस पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे तैजस पुद्‌गलों के साथ जोड़ने का काम करता है ।

15. कार्मण कार्मण बंधन नामकर्म : कार्मण पुद्‌गलों को नए बँधे जा रहे कार्मण पुद्‌गलों के साथ जोडने का काम करता है ।

(7) छह संघयण

संघयणमट्ठिनिचओ, तं छद्धा वज्जरिसह नारायं ।
तह रिसहनारायं, नारायं अद्धनारायं ।।38।।
कीलिअ छेवट्ठं इह, रिसहो पट्टो य कीलिआ वज्जं ।
उभओ मक्कडबंधो, नारायं इममुरालंगे ।।39।।

शब्दार्थ-

संघयणं=संघयण, **अट्ठि निचओ=**हड्डी की रचना, **तं=**वह, **छद्धा=**छह प्रकार, **वज्जरिसहनारायं=**वज्रऋषभनाराच, **रिसह नारायं=**ऋषभ नाराच, **नारायं=**नाराच, **अद्धनारायं=**अर्धनाराच, **कीलिअ=**कीलिका, **छेवट्ठं=**सेवार्त, **इह=**यहाँ, **रिसहो=**ऋषभ, **पट्टो=**पट्टा, **कीलिआ=**कीली, **वज्जं=**वज्र, **उभओ=**दोनों ओर, **मक्कडबंधो=**मर्कटबंध, **नारायं=**नाराच, **इम=**यह, **उरालंगे=**औदारिक शरीर में ।

गाथार्थ-

हड्डियों की रचना विशेष को संघयण कहते हैं । इसके वज्रऋषभ नाराच, ऋषभ नाराच, अर्ध नाराच, कीलिका और सेवार्त ये छह भेद हैं । इनमें ऋषभ का अर्थ पट्ट वेष्टन, वज्र का अर्थ कील और नाराच का अर्थ दोनों ओर मर्कट बंध समझना चाहिए ।

विवेचन-

संघयण नामकर्म : हड्डियों की रचना विशेष को संघयण कहते हैं । जिस नामकर्म के उदय से हड्डियाँ आपस में जुड़ती हैं, उसे संघयण नामकर्म कहते हैं । औदारिक शरीर के अतिरिक्त अन्य शरीर में हड्‌डियाँ नहीं होती हैं, इस कारण संघयण नाम कर्म का उदय औदारिक शरीर में ही होता है ।

संघयण नाम कर्म के छह भेद हैं-

1. वज्रऋषभनाराच संघयण नामकर्म : वज्र अर्थात् कीली, ऋषभ अर्थात् वेष्टन-पट्टी और नाराच अर्थात् दोनों ओर मर्कट बंध। जिस संघयण में दोनों ओर से मर्कट बंध से बँधी हुई दो हड्डियों को भेदने वाली हड्डी पर तीसरी हड्डी की कील लगी हो उसे वज्रऋषभ नाराच कहते हैं। जिस कर्म के उदय से हड्डियों की इस प्रकार की रचना हो उसे वज्रऋषभ नाराच संघयण कहते है।

2. ऋषभनाराच संघयण : जिस रचना विशेष में दोनों ओर हड्डियों का मर्कट बंध हो, तीसरी हड्डी का पट्ट भी हो लेकिन तीनों को भेदने वाली हड्डी की कीली न हो। जिस कर्म के उदय से हड्डियों की इस प्रकार की रचना हो, उसे ऋषभ नाराच संघयण नामकर्म कहते हैं।

3. नाराच संघयण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में दोनों ओर मर्कट बंध हों लेकिन पट्ट और कील न हों उसे नाराच संघयण नामकर्म कहते हैं।

4. अर्धनाराच संघयण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में एक ओर मर्कटबंध और दूसरी ओर कील हो उसे अर्धनाराच संघयण नामकर्म कहते हैं।

5. कीलिका संघयण : जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में मर्कट बंध और पट्ट न हों किंतु कील से हड्डियाँ जुड़ी हों उसे कीलिका संघयण नामकर्म कहते हैं।

6. सेवार्त संघयण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में मर्कटबंध, वेष्टन और कील न होकर यों ही हड्डियाँ आपस में जुड़ी हों उसे सेवार्त संघयण नामकर्म कहते हैं।

(8) छह संस्थान तथा पांच वर्ण

समचउरंसं निग्गोह, साइ खुज्जाइ वामणं हुंडं ।
संठाणा वन्ना किण्हनील लोहिय हलिद्द सिया ।।40।।

शब्दार्थ-

समचउरंसं=समचतुरस्त्र, **निग्गोह**=न्यग्रोध, **साइ**=सादि, **खुज्जाइ**=कुब्ज, **वामणं**=वामन, **हुंडं**=हुंडक, **वण्णा**=वर्ण, **किण्ह**=काला, **नील**=हरा, **लोहिअ**=लाल, **हलिद्द**=पीला, **सिआ**=श्वेत !

गाथार्थ-

समचतुरस्त्र, न्यग्रोध, सादि, कुब्ज, वामन और हुंडक ये संस्थान नामकर्म के तथा कृष्ण, नील, लाल, पीला और श्वेत ये वर्ण नामकर्म के भेद है।

विवेचन-

छह संस्थान : शरीर के आकार को संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से संस्थान की प्राप्ति हो उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं। मनुष्य आदि में जो शारीरिक विभिन्नताएँ और आकृति में विविधताएँ दिखाई देती हैं, उसका कारण संस्थान नाम कर्म है।

संस्थान नामकर्म के छह भेद हैं-

1. समचतुरस्त्र संस्थान नाम कर्म : सम=समान, चतुर=चार तथा अस्त्र=कोण। पर्यंकासन में बैठे हुए पुरुष के दो घुटने का अंतर, बाएँ स्कंध व दाएँ घुटने का अन्तर, दाएँ स्कंध और बाएँ घुटने का अंतर तथा आसन और ललाट का अंतर एक समान हो उसे समचतुरस्त्र संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उद्देश्य से इस प्रकार के संस्थान की प्राप्ति हो उसे समचतुरस्त्र संस्थान नामकर्म कहते हैं।

2. न्यग्रोध परिमंडल संस्थान नामकर्म : जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति न्यग्रोध के समान हो अर्थात् शरीर में नाभि से ऊपर के अवयव पूर्ण व व्यवस्थित हों तथा नाभि से नीचे के अवयव हीन हों, उसे न्यग्रोध परिमंडल नामकर्म संस्थान कहते हैं।

3. सादि संस्थान नामकर्म : जिस कर्म के उदय से नाभि से ऊपर के अवयव हीन हों और नाभि के नीच के अवयव पूर्ण व्यवस्थित हों, उसे सादि संस्थान नामकर्म कहते हैं।

4. कुब्ज संस्थान नामकर्म : जिस कर्म के उदय से कुब्ज (कुबड़ा) शरीर प्राप्त हो, उसे कुब्ज संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

5. वामन संस्थान नामकर्म : जिस कर्म के उदय से वामन (बौना) शरीर प्राप्त हो उसे वामन संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

6. हुण्डक संस्थान नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अवयव बेडौल हों-उसे हुंडक संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

9. वर्ण नामकर्म : वर्ण नाम कर्म के उदय से शरीर में कृष्ण, गौर आदि वर्ण होते हैं । इसके पाँच भेद हैं–

1. कृष्ण वर्ण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कोयले जैसा काला होता है, उसे कृष्ण वर्ण नामकर्म कहते हैं ।

2. नील वर्ण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर तोते के पंख की तरह हरा हो, उसे नील वर्ण नामकर्म कहते हैं ।

3. रक्त वर्ण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का वर्ण सिंदूर की तरह लाल हो, उसे रक्त वर्ण नाम कर्म कहते हैं ।

4. पीत वर्ण नामक़र्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर हल्दी की तरह पीला हो, उसे पीत वर्ण नामकर्म कहते हैं ।

5. श्वेत वर्ण नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शंख की तरह सफेद हो, उसे श्वेत वर्ण नामकर्म कहते हैं ।

पांच रस और आठ स्पर्श

सुरहि दुरहि रसा पण, तित्तकडुकसाय अंबिला महुरा ।
फासा गुरुलहुमिउखर, सीउण्ह सिणिद्ध-रुक्खट्ठा ।।41।।

शब्दार्थ-

सुरहि=सुरभिगंध, **दुरहि**=दुरभिगंध, **रसा**=रस, **पण**=पाँच, **तित्त**=कड़वा, **कडु**=तीखा, **कसाय**=तूरा, **अंबिला**=अम्ल, **महुरा**=मीठा, **फासा**=स्पर्श, **गुरु**=भारी, **लहु**=हल्का, **मिउ**=मृदु, **खर**=कठोर, **सीउण्ह**=शीत-उष्ण, **सिणिद्ध**=स्निग्ध, **रुक्ख**=लूखा, **अट्ठा**=आठ ।

गाथार्थ-

सुगंध और दुर्गंध ये दो, गंधनाम कर्म के भेद हैं, तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर ये रसनाम कर्म के पाँच भेद हैं तथा गुरु, लघु, मृदु, खर, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष से स्पर्श नाम कर्म के आठ भेद हैं ।

विवेचन-

10. गंध नाम कर्म : इसके दो भेद हैं-

1. सुरभिगंध नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में कर्पूर, कस्तूरी जैसी सुगंध हो, उसे सुरभिगंध नामकर्म कहते हैं ।

2. दुरभिगंध नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में सड़े-गले पदार्थ जैसी दुर्गंध आती हो उसे दुरभिगंध नामकर्म कहते हैं ।

11. रस नाम कर्म-इसके 5 भेद हैं-

1. तिक्त रस नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सोंठ अथवा काली मिर्च की तरह चरपरा हो उसे तिक्त रस नामकर्म कहते हैं ।

2. कटुरस नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर नीम जैसा कटु हो, उसे कटुरस नामकर्म कहते हैं ।

3. कषायरस नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर आँवला, बहेडा जैसा कसैला हो, उसे कषाय रस नामकर्म कहते हैं ।

4. अम्ल रस नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर नींबु, इमली जैसा खट्टा हो, उसे अम्ल रस नामकर्म कहते हैं ।

5. मधुररस नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर मिश्री आदि मीठे पदार्थ जैसा हो उसे मधुररस नामकर्म कहते हैं ।

12. स्पर्श नामकर्म : इसके आठ भेद हैं–

1. गुरुस्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे की तरह भारी हो उसे गुरुस्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

2. लघुस्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर रुई की तरह हल्का हो उसे लघुस्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

3. मृदुस्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर मक्खन की तरह कोमल हो उसे मृदुस्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

4. कर्कश स्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कर्कश हो उसे कर्कश स्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

5. शीत स्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बर्फ की तरह ठंडा हो उसे शीतस्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

6. उष्ण स्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर आग की तरह उष्ण हो उसे उष्ण स्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

7. स्निग्ध स्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर घी की तरह स्निग्ध हो उसे स्निग्ध स्पर्श नाम कर्म कहते हैं ।

8. रुक्ष स्पर्श नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बालू की तरह रूखा हो उसे रूक्ष स्पर्श नामकर्म कहते हैं ।

नील कसिणं दुगंधं, तित्तं कडुअं गुरुं खरं रुक्खं ।
सीअं च असुह नवगं, इक्कारसगं सुभं सेसं ।।42।।

शब्दार्थ–

नील=हरा, **कसिणं**=काला, **दुगंध**=दुर्गंध, **तित्तं**=कड़वा, **कडुअं**=तीखा, **गुरुं**=भारी, **खरं**=कर्कश, **रुक्खं**=रूखा, **सीअं**=शीत, **असुह नवगं**=ये नौ अशुभ, **इक्कारसगं**=ग्यारह, **सुभं**=शुभ, **सेसं**=शेष ।

गाथार्थ-

वर्ण चतुष्क की बीस प्रकृतियों में से नील, कृष्ण, दुर्गंध, तिक्त, कटु, गुरु, कर्कश, रुक्ष और शीत ये नौ अशुभ प्रकृतियाँ हैं और इन्हें छोड़कर शेष ग्यारह प्रकृतियाँ शुभ हैं ।

विवेचन-

वर्ण, गंध, रस और स्पर्श नाम कर्म की कुल 20 उत्तर प्रकृतियाँ हैं । इनमें नौ अशुभ और 11 शुभ हैं ।

अशुभ वर्ण - कृष्ण वर्ण, नील वर्ण

अशुभ गंध - दुर्गंध

अशुभ रस - तिक्त और कटुरस

स्पर्श - गुरु, कर्कश, रुक्ष और शीत स्पर्श ।

शेष 11 शुभ प्रकृतियाँ हैं

शुभ वर्ण नामकर्म - श्वेत, पीत और लोहित

शुभ गंध नामकर्म - सुगंध

शुभ रस नामकर्म - कषाय, अम्ल, मधुर

शुभ स्पर्श नामकर्म - लघु, मृदु, स्निग्ध और उष्ण स्पर्श

(13) चार आनुपूर्वी

चउह गइव्वाणुपूव्वी, गइ पुव्वी दुगं तिगं नियाउ जुअं ।
पुव्वी उदओ वक्के, सुह-असुह वसुट्ट विहगगई ।।43।।

शब्दार्थ-

चउह=चार, **गइव्व=**गति की तरह, **अणुपुव्वी=**आनुपूर्वी, **गइ=**पुव्वी, गति और आनुपूर्वी, **दुगं=**दो, **तिगं=**तीन, **नियाउजुअं=**अपने आयुष्य सहित, **तिगं=**त्रिक, **पुव्वी उदओ=**आनुपूर्वी का उदय, **वक्के=**वक्रगति में, **सुह=**शुभ, **असुह=**अशुभ, **वसुट्ट=**वृषभ और ऊंट, **विहगगइ=**विहायोगति ।

गाथार्थ-

गति नामकर्म के अनुसार आनुपूर्वी नाम कर्म के भी चार भेद होते हैं, आनुपूर्वि का उदय सिर्फ विग्रहगति में होता है । गति और आनुपूर्वी जोड़ने से गति द्विक और उसमें आयुष्य जोड़ने से गतित्रिक संज्ञाएँ बनती हैं । बैल और ऊँट की चाल की तरह शुभ अशुभ के भेद से विहायोगति नाम कर्म के दो भेद हैं ।

विवेचन-

आनुपूर्वी नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव विग्रह गति में अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुँचता है, उसे आनुपूर्वी नामकर्म कहते हैं ।

1. मृत्यु के बाद उत्पत्ति स्थल तक पहुँचने में जीव की गति दो प्रकार की होती है-ऋजु और वक्र । ऋजु गति से स्थलांतर में जाने के लिए जीव को

किसी प्रकार का नवीन प्रयत्न करना नहीं पड़ता है, क्योंकि उसे पूर्व शरीरजन्य वेग मिलता है और वह उसी वेग से धनुष में से छूटे बाण की तरह अपने उत्पत्ति स्थान पर पहुँच जाता है, परंतु जो वक्रगति होती है, उसमें घुमाव-मोड़ होता है, विग्रह गति में रहा जीव जब गति करता है तब आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार गति करता हुआ आगे बढ़ता है, इस गति में आनुपूर्वी नामकर्म कारण है।

यदि जीव का उत्पत्ति स्थान समश्रेणी में हो तो आनुपूर्वी नामकर्म का उदय नहीं होता है अर्थात् वक्रगति में ही आनुपूर्वी नाम कर्म का उदय होता है, ऋजुगति में नहीं।

आनुपूर्वी के चार भेद हैं-**1. देवानुपूर्वी नाम कर्म :** जिस कर्म के उदय से आत्मा विग्रह गति द्वारा देव भव में जाती है उसे देवानुपूर्वी नामकर्म कहते हैं।

2. मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म : जिस कर्म के उदय से आत्मा विग्रहगति द्वारा मनुष्य भव प्राप्त करती है, उसे मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म कहते हैं।

3. तिर्यंचानुपूर्वी नामकर्म : जिस कर्म के उदय से आत्मा विग्रहगति द्वारा तिर्यंचगति में जाती है, उसे तिर्यंचानुपूर्वी नामकर्म कहते हैं।

4. नरकानुपूर्वी नामकर्म : जिस कर्म के उदय से विग्रहगति द्वारा आत्मा नरक गति प्राप्त करती है, उसे नरकानुपूर्वी नामकर्म कहते हैं।

(14.) विहायोगति : जीव की गमनागमन प्रवृत्ति में नियामक कर्म को विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं–

1. शुभ विहायोगति : जिस कर्म के उदय से जीव की चाल हाथी-बैल की तरह शुभ हो उसे शुभ विहायोगति कहते हैं।

2. अशुभ विहायोगति : जिस कर्म के उदय से जीव की चाल ऊँट-गधे आदि की तरह अशुभ हो, उसे अशुभ विहायोगति कहते हैं।

प्रत्येक-प्रकृतियाँ

परघाउदया पाणी परेसिं बलिणंपि होइ दुद्धरिसो।
उससिणलद्धि जुत्तो, हवेइ उसास नाम वसा ॥44॥

शब्दार्थ-

परघाउदया=पराघात नामकर्म के उदय से, **पाणी=**प्राणी, **परेसिं=**दूसरे, **बलिणंपि=**बलवान को भी, **होइ=**होता है, **दुद्धरिसो=**कठिनाई से जीतनेवाला, **उससिण=**श्वासोच्छ्वास, **लद्धिजुत्तो=**लब्धि से युक्त, **हवेइ=**होता है, **उसास नाम वसा=**श्वासोच्छ्वास नामकर्म के अधीन ।

गाथार्थ-

पराघात नामकर्म के उदय से जीव दूसरे बलवान व्यक्ति को भी अजेय हो जाता है और उच्छ्वास नामकर्म के उदय से जीव उच्छ्वास लब्धि युक्त होता है ।

1. पराघात नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव अपने अस्तित्व मात्र से अथवा वचन मात्र से अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डाल सकता हो, उसे पराघात नामकर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय से जीव अपने से अधिक बलवान-बुद्धिमान और विद्वानों की दृष्टि में भी अजेय दिखाई देता है, उसके प्रभाव से ही वे पराभूत हो जाते हैं ।

2. श्वासोच्छ्वास नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव श्वासोच्छ्वास लब्धि से युक्त होता है, उसे श्वासोच्छ्वास नामकर्म कहते हैं ।

लब्धि पर्याप्ता जीव को उत्पत्ति के पहले समय से प्राप्त नामकर्म का उदय चालू होता है, उसी समय से वह स्व प्रायोग्य पर्याप्ति को पूर्ण करना आरंभ कर देता है । जब जीव श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होता है, तब उसे श्वासोच्छ्वास नामकर्म का उदय चालू हो जाता है । श्वास लेने छोड़ने का कारण श्वासोच्छ्वास नामकर्म है ।

आतप-नामकर्म

रवि बिंबे उ जीअंगं, ताव जुअं आयवाउ न उ जलणे ।
जमुसिण फासस्स तहिं, लोहिअ वण्णस्स उदउत्ति ।।45।।

शब्दार्थ-

रवि बिंबे=सूर्य बिंब के विषय में, **जीअंगं=**जीव का अंग, **तावजुअं=**ताप युक्त, **आयवाउ=**आतप नामकर्म के उदय से, **न=**नही, **उ=**परंतु,

जलणे=अग्निकाय का शरीर, **जं**=क्योंकि, **उसिण फासस्स**=उष्ण स्पर्श को, **तहिं**=उसमें, **लोहिअ वण्णस्स**=लालवर्ण का, **उदउ**=उदय, **त्ति**=इस कारण ।

गाथार्थ-

आतप नाम कर्म के उदय से जीव का अंग ताप युक्त होता है, इसका उदय सूर्य मंडल के पार्थिव शरीर में होता है, परंतु अग्निकाय जीवों को नहीं होता है, उन्हें उष्ण स्पर्श और लोहितवर्ण नाम कर्म का उदय होता है ।

4. आतप नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का अपना शरीर शीत होने पर भी उष्ण प्रकाश देता हो, उसे आतप नामकर्म कहते हैं, इस आतप नामकर्म का उदय सूर्य बिंब के नीचे रहे बादर पृथ्वीकाय के जीवों को होता है, इन जीवों के सिवाय सूर्यमंडल के अन्य जीवों को आतप नामकर्म का उदय नहीं होता है ।

आतप नामकर्म का उदय अग्निकाय के जीवों को भी नहीं होता है, क्योंकि इस कर्म का उदय उन्हीं जीवों को होता है, जिनका स्वयं का शरीर ठण्डा हो और उनका प्रकाश उष्ण हो ।

उद्योत-नामकर्म

अणुसिण पयासरूवं, जियंगमुज्जोयए इहुज्जोया ।
जइ देवुत्तर विक्किय-जोइस खज्जोय माइव्व ।।46।।

शब्दार्थ-

अणुसिण=शीत, **पयासरूवं**=प्रकाश रूप, **जियंगं**=जीवों का अंग, **उज्जोयए**=उद्योत करता है, **जइ**=यति, **देवुत्तर विक्किय**=देव द्वारा किया वैक्रिय, **जोइस**=ज्योतिष, **खज्जोय**=खद्योत, **आइव्व**=आदि की तरह ।

गाथार्थ-

साधु और देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर, चंद्र, तारा आदि ज्योतिष तथा जुगनू के प्रकाश की तरह उद्योत नामकर्म के उदय से जीवों का शरीर शीत प्रकाश रूप उद्योत करता है ।

विवेचन-

5. उद्योत नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव अपने शरीर द्वारा

शीत प्रकाश फैलाता हो, उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं । इस कर्म का उदय ज्योतिषी विमान के जीवों को होता है । खद्योत व कुछ वनस्पति का शरीर भी इसी प्रकार का होता है ।

देवता तथा लब्धिधारी मुनि जब उत्तर-वैक्रिय शरीर करते हैं, तब उनके शरीर में से ठंडा प्रकाश निकलता है, उसे भी उद्योतनामकर्म का उदय समझना चाहिए ।

अगुरुलघु-तीर्थंकर नामकर्म

अंगं न गुरु न लहुअं, जायइ जीवस्स अगुरुलहु उदया ।
तित्थेण तिहुअणस्स वि, पुज्जो से उदओ केवलिणो ।।47।।

शब्दार्थ-

अंगं=अंग, **गुरु=**भारी, **लहुअं=**हल्का, **जायइ=**होता है, **जीवस्स=**जीव को, **अगुरु लहु उदया=**अगुरुलघु नामकर्म के उदय से, **तित्थेण=**तीर्थंकर नामकर्म के उदय से, **तिहुअणस्स=**तीन भुवन के, **पूज्जो=**पूज्य, **से=**उसका, **उदओ=**उदय, **केवलिणो=**केवलज्ञानी को ।

गाथार्थ-

अगुरुलघु नामकर्म के उदय से जीव का शरीर न हल्का होता है और न ही भारी होता है । तीर्थंकर नामकर्म के उदय से जीव त्रिभुवन को भी पूज्य होता है, इसका उदय केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद होता है ।

विवेचन-

1. अगुरुलघु नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव को अति भारी भी नहीं और अति हल्का भी नहीं, ऐसा शरीर प्राप्त हो उसे अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं ।

8. तीर्थंकर नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा त्रिभुवन पूज्य बनता है । तीर्थंकर बनने वाली आत्मा को ही यह कर्म उदय में आता है । इस कर्म का रसोदय केवलज्ञान की प्राप्ति के साथ होता है ।

इस कर्म का उदय होने पर आत्मा अष्ट महाप्रातिहार्य आदि से

विभूषित बनती है । समवसरण में बैठकर तीर्थंकर परमात्मा भव्य जीवों को धर्म का बोध देते हैं । देव-देवेन्द्र और चक्रवर्ती भी इनकी पूजा करते हैं ।

त्रस-दशक निर्माण-उपघात नामकर्म

अंगोवंग निअमणं, निम्माणं कुणइ सुत्तहार समं ।
उवघाया उवहम्मइ, स-तणुवयव-लंबिगाईहिं ।।48।।

शब्दार्थ-

अंगोवंग=अंगोपांग, **निअमणं**=नियमितपना, **निम्माणं**=निर्माण नामकर्म, **कुणइ**=करता है, **सुत्तहार समं**=सुथार के समान, **उवघाया**=उपघात नामकर्म के उदय से, **उवहम्मइ**=नष्ट होते हैं, **सतणु**=स्वयं का शरीर, **वयवलंबिगाइहिं**= अवयव, लंबिका आदि ।

गाथार्थ-

निर्माण नामकर्म सुथार की तरह शरीर के अंग-उपांग आदि को यथायोग्य स्थान में व्यवस्थित करता है । उपघात नाम कर्म के उदय से जीव अपने शरीर की अवयवभूता लंबिका यानी छठी अंगुली आदि से क्लेश पाता है ।

विवेचन-

शास्त्र में अंगोपांग-नामकर्म को नौकर एवं निर्माण नामकर्म को सुथार की उपमा दी है । नौकर तुल्य अंगोपांग नामकर्म अंग, उपांग और अंगोपांग तैयार कर देता है, परंतु उन अवयवों को व्यवस्थित करने का काम निर्माण नामकर्म करता है ।

स्वयं के ही अवयवों से स्वयं को ही पीड़ा हो, उसे उपघात कहते हैं, उसका कारण उपघातनाम कर्म है ।

प्रतिजिह्वा चौरदांत (ओठ के बाहर निकले हुए दाँत) लंबिका (छठी अंगुली) आदि स्वयं के अवयवों से जीव स्वयं दुःखी होता है ।

बितिचउ पणिंदिय तसा, बायरओ बायरा जिया थूला ।
निय नियपज्जतिजुया, पज्जत्ता लद्धिकरणेहिं ।।49।।

शब्दार्थ-

बि=बेइन्द्रिय, **ति**=तेइन्द्रिय, **चउ**=चउरिन्द्रिय, **पणिंदिय**=पंचेन्द्रिय, **तसा**=त्रस, **बायरओ**=बादर नामकर्म के उदय से, **बायरा**=बादर, **जीआ**=जीव, **थूला**=स्थूल, **निअ-निअ**=अपनी-अपनी, **पज्जत्ति**=पर्याप्ति, **जुआ**=युक्त, **पज्जत्ता**=पर्याप्ता, **लद्धि करणेहिं**=लब्धि और करण से ।

गाथार्थ-

त्रस नामकर्म के उदय से जीव दो इन्द्रियवाला, तीन इन्द्रियवाला, चार इन्द्रियवाला और पाँच इन्द्रियवाला बनता है । बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर बनता है । पर्याप्त नाम कर्म के उदय से स्वयोग्य पर्याप्ति से युक्त होता है । पर्याप्त जीव लब्धि और करण की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं ।

विवेचन-

जो जीव ठंडी-गर्मी आदि से बचने के लिए छाया आदि में जा सकते हैं, उन्हें त्रस कहते हैं ।

त्रस नाम कर्म : जिस कर्म के उदय से जीव को त्रसपने की प्राप्ति हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं ।

जो जीव ठंडी आदि के त्रास से बचने के लिए छाया आदि में नहीं जा सकते हों, उन्हें स्थावर कहते हैं ।

बादर नामकर्म-

जिस कर्म के उदय से जीव का एक शरीर या असंख्य शरीर का पिंड, जो आँख से देख सकते हैं, उसे बादर नामकर्म कहते हैं । जिस कर्म के उदय से असंख्य शरीर का पिंड होने पर भी जो आँख से दिखाई नहीं देता हो, उसे सूक्ष्म नामकर्म कहते हैं ।

सूक्ष्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति जीवों को सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है । यद्यपि बादर वायुकाय में अप्रगट रूप होने से असंख्य शरीर का पिंड भी आँख से दिखाई नहीं देता है, परंतु चमड़ी द्वारा उसका अनुभव कर सकते हैं, अतः उन्हें भी बादर नामकर्म का उदय समझना चाहिए ।

पर्याप्त नामकर्म

3. पर्याप्त नामकर्म : जिस शक्ति विशेष से जीव, पुद्‌गलों को ग्रहण कर उन्हें आहार आदि के रूप में परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तियाँ छह हैं-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्‌वास, भाषा और मन:पर्याप्ति। एकेन्द्रिय जीव के चार, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को पाँच तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को छह पर्याप्तियाँ होती हैं।

जिस नामकर्म के उदय से जीव स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने में सक्षम होता है, उसे पर्याप्त नामकर्म कहते हैं।

पर्याप्त जीवों के दो भेद हैं 1) लब्धि पर्याप्त और 2) करण पर्याप्त।

जो जीव अपनी अपनी योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करके ही मरते हैं, पहले नहीं, वे लब्धि पर्याप्त कहलाते हैं।

पर्याप्त नाम कर्म के उदयवाले जीव, लब्धि पर्याप्ता तथा अपर्याप्त नाम कर्म के उदयवाले जीव लब्धि अपर्याप्त कहलाते हैं।

लब्धि पर्याप्त जीव, जब तक स्व योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करते हैं, तब तक वे करण अपर्याप्ता कहलाते हैं और स्वयोग्य पर्याप्ति को जब पूरा कर लेते हैं, तब करण पर्याप्ता कहलाते हैं।

जो जीव लब्धि पर्याप्ता होते हैं, वे अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण न करे तब तक करण अपर्याप्ता और उसके बाद करण पर्याप्ता होते हैं।

2. जो जीव लब्धि अपर्याप्ता होते हैं, वे अवश्य करण अपर्याप्ता होते है।

3. जो जीव करण पर्याप्ता होते हैं, वे अवश्य लब्धि पर्याप्ता होते हैं।

4. जो जीव करण अपर्याप्ता हो वे लब्धि पर्याप्ता और अपर्याप्ता हो सकते हैं।

पत्तेय तणु पत्ते, उदयेण दंत अट्ठिमाइ थिरं।
नाभुवरि सिराइ सुहं, सुभगाओ सव्वजणइट्ठो ।।50।।

शब्दार्थ-

पत्तेयतणु=प्रत्येक शरीर, **पत्ते=**प्रत्येक नामकर्म के **उदएण=**उदय से, **दंत=**दाँत, **अट्ठिमाइ=**हड्‌डी आदि, **थिरं=**स्थिर, **नाभुवरि=**नाभि के ऊपर,

सिराइ=मस्तक आदि, **सुहं=**शुभनाम कर्म के उदय से, **सुभगाओ=**सौभाग्य नामकर्म के उदय से, **सव्वजण इट्ठो=**सभी लोगों को प्रिय !

गाथार्थ-

प्रत्येक नामकर्म के उदय से जीवों के अलग-अलग शरीर होते हैं। स्थिर नामकर्म के उदय से शरीर में दाँत, हड्डियाँ आदि स्थिर होते हैं। नाभि ऊपर के शरीर के अवयव शुभ हों, वह शुभ नामकर्म का उदय है और जिसके उदय से जीव सभी को प्रिय लगे, वह सुभग नामकर्म है।

विवेचन-

4. प्रत्येक नामकर्म : जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो, उसे प्रत्येक नामकर्म कहते हैं।

5. स्थिर नामकर्म : जिस नामकर्म के उदय से जीव के दाँत, हड्डी, ग्रीवा आदि शरीर के अवयव स्थिर हों उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

6. शुभ नामकर्म : जिस नामकर्म के उदय से जीव के शरीर में नाभि से ऊपर के अवयव शुभ प्राप्त हों, उसे शुभ नामकर्म कहते हैं।

7. सुभग नामकर्म : जिस नामकर्म के उदय से जीव किसी पर उपकार नहीं करने पर भी और किसी प्रकार का संबंध नहीं होने पर भी सभी को प्रिय लगते हों उसे सुभग नामकर्म कहते हैं।

सुसरामहुर सुह झुणी, आइज्जा सव्वलोअ गिज्झवओ।
जसओ जसकित्तीओ, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥51॥

शब्दार्थ-

सुसरा=सुस्वर नामकर्म के उदय से, **महुर=**मधुर, **सुह झुणी=**सुखदायी ध्वनि, **आइज्जा=**आदेय नामकर्म के उदय से, **सव्वलोअ=**सभी लोगों को, **गिज्झ=**ग्रहण करने योग्य, **वओ=**वचनवाला, **जसओ=**यशनाकर्म के उदय से, **जस-कित्तीओ=**यश और कीर्ति, **थावर दसगं=**स्थावर दशक, **विवज्जत्थं=**विपरीत अर्थवाला।

गाथार्थ-

सुस्वर नामकर्म के उदय से जीव मीठी और सुखदायी आवाज वाला

होता है, आदेयनामकर्म के उदय से जीव मान्य वचनवाला होता है। यशनामकर्म के उदय से यश और कीर्ति प्राप्त होती है। स्थावर दशक इससे विपरीत समझना चाहिए।

विवेचन-

8. सुस्वर नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर श्रोताओं को प्रिय लगे वैसा हो, उसे सुस्वर नामकर्म कहते हैं।

9. आदेय नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का कटु वचन भी सर्वत्र आदर पात्र बनता हो उसे आदेय नामकर्म कहते हैं।

10. यश नामकर्म : जिस कर्म के उदय से संसार में सर्वत्र यश और कीर्ति की प्राप्ति हो उसे यश नामकर्म कहते हैं।

स्थावर दशक

1. स्थावर नामकर्म : पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय स्थावर कहलाते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को स्थावरपने की प्राप्ति होती है, उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं।

5. अस्थिर नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीभ आदि अवयव अस्थिर होते हैं, उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।

6. अशुभ नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीवात्मा की नाभि के नीचे के अवयव अशुभ हों, उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

7. दुर्भग नामकर्म : जिस कर्म के उदय से दूसरों पर उपकार करने पर भी जीव अप्रिय लगता हो, दूसरे जीव वैर-भाव आदि रखते हों, उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

8. दुःस्वर नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर कर्कश और श्रोताओं को अप्रिय लगे, वैसा हो, उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं।

9. अनादेय नामकर्म : जिस कर्म के उदय से जीव का युक्ति-युक्त वचन भी अप्रिय बनता हो, उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

10. अपयश नामकर्म : जिस कर्म के उदय से अच्छा काम करने पर भी सर्वत्र अपयश मिलता हो, उसे अपयश नामकर्म कहते हैं।

30 गोत्र व अंतराय कर्म

गोअं दुहुच्च नीअं, कुलाल इव सुघड भुंभलाइअं ।
विग्घं दाणे लाभे, भोगुवभोगेसु वीरिए अ ।।52।।

शब्दार्थ-

गोअं=गोत्रकर्म, **दुह=**दो भेदवाला, **उच्चनीअं=**उच्च और नीच, **कुलालइव=**कुंभकार की तरह, **सुघड=**अच्छा घड़ा, **भुंभलाइअं=**शराब का घड़ा, **विग्घं=**अंतरायकर्म, **दाणे=**दान में, **लाभे=**लाभ में, **भोगे=**भोग में, **उवभोगेसु=**उपभोग में, **वीरिए=**वीर्य में, **अ=**तथा ।

गाथार्थ-

अच्छा घड़ा और मदिरा का घड़ा बनानेवाले कुंभकार के कार्य के समान गोत्र कर्म का स्वभाव है । इसके दो भेद हैं 1) उच्च गोत्र और 2) नीच गोत्र ।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अंतराय रूप अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं ।

विवेचन-

सातवाँ गोत्र कर्म :

गोत्र कर्म का स्वभाव कुंभकार की भाँति है । जिस प्रकार कुंभार छोटे-बड़े विविध प्रकार के घड़े तैयार करता है, उन घड़ों में से कुछ घड़े कलश के रूप में काम में आते हैं, जो अक्षत व चंदन आदि से पूजे जाते हैं, जबकि कुछ घड़ों में निंदनीय पदार्थ शराब आदि भरी जाती है ।

इसी प्रकार गोत्र कर्म के उदय से जीव उच्च गोत्र और नीच गोत्र में जन्म लेता है ।

धर्म और नीति की रक्षा के संबंध से जिस कुल ने चिरकाल से प्रसिद्धि प्राप्त की हो, वे उच्च कुल हैं, जैसे-इक्ष्वाकुवंश, हरिवंश, चन्द्रवंश आदि ।

अधर्म और अनीति करने से जिस कुल ने चिरकाल से अप्रसिद्धि व अपकीर्ति प्राप्त की हो, वे नीच कुल हैं-जैसे मद्यविक्रेता का कुल, वधक (कसाई) का कुल आदि ।

सद्धर्म की प्राप्ति में कुल का भी बड़ा महत्त्व है । उच्च कुल में सद्धर्म की प्राप्ति, सद्धर्म की आराधना, भक्ति आदि सुलभ होती है ।

तीर्थंकर परमात्मा भी उच्च कुल में अर्थात् उग्रकुल, भोग कुल, राजन्यकुल, हरिवंश कुल आदि में ही उत्पन्न होते हैं ।

प्रभु महावीर की आत्मा ने मरीचि के तीसरे भव में जाति मद करके नीच गोत्र कर्म का बंध किया था, उसी कर्म के उदय के फलस्वरूप अनेक भवों तक उन्हें ब्राह्मण आदि याचक कुल में जन्म लेना पड़ा था । अंतिम भव में भी वह कर्म संपूर्ण नष्ट नहीं हुआ होने से उनका अवतरण ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा की कुक्षी में हुआ था और 82 दिन के बाद उनका गर्भ परिवर्तन त्रिशला महारानी की कुक्षि में हुआ था ।

चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि का भी गोत्र, उच्च गोत्र कहलाता है ।

मोक्ष-मार्ग की आराधना में आगे बढ़ने के लिए बाह्य संयोगों की अनुकूलता भी अनिवार्य है । एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीव एक समान धर्म आराधना नहीं कर सकते, क्योंकि सभी के संयोग एक समान नहीं है ।

पंचेन्द्रिय अवस्था में भी धर्म आराधना के लिए सबसे अधिक अनुकूलता मनुष्य भव में है, परन्तु सभी मनुष्य भी धर्म आराधना नहीं कर पाते हैं, जो मनुष्य आर्यदेश, **उच्च गोत्र** व जैन धर्म पालने वाले **उच्च कुल** में पैदा हुए हों, जिन्हें देव-गुरु-धर्म के अनुकूल संयोग प्राप्त हुए हों, उन्हीं आत्माओं के लिए देशविरति-सर्वविरति धर्म की आराधना सुलभ होती है ।

आर्य देश में जन्म लेने पर भी जो नीच कुल में पैदा हुए हों, उन्हें सद्धर्म की आराधना दुर्लभ ही होती है ।

उच्च गोत्र में पैदा हुए बालकों में जीवदया, अभक्ष्य-त्याग, साधु पुरुषों का संग, दान, परोपकार आदि संस्कार सहज सुलभ होते हैं ।

अज्ञान दशा में भी उच्च कुल में उत्तम आचारों का अस्तित्व देखने को मिलता है । उच्च कुल के संस्कार धर्म की आराधना में सहायक होते हैं । उच्च कुल में जन्मा व्यक्ति सहजता से सद्धर्म के अभिमुख बन जाएगा ।

◆ एक नटी के पीछे पागल बने इलाचीकुमार भी कुल के संस्कारों के कारण ही एक छोटे से निमित्त को पाकर, भाव से साधु बनकर केवली बन गए थे ।

जिस प्रकार सुवर्ण द्रव्य में स्वाभाविक गुण रहे होते हैं, उसी प्रकार उच्च गोत्र में भी संस्कारों की प्राप्ति सहज होती है ।

आठ कर्मों की उपमा

सिरिहरिय समं एअं जह पडिकुलेण तेण रायाई ।
न कुणइ दाणाइयं, एवं विग्घेण जीवो वि ।।53।।

शब्दार्थ-

सिरिहरिअ समं=भंडारी के समान, **एअं**=यह, **जह**=जिस तरह, **पडिकूलेण**=प्रतिकूल हो तो, **तेण**=वह, **रायाइ**=राजा आदि **न कुणइ**=नहीं करता है, **दाणाइयं**=दान आदि, **एवं**=इस प्रकार, **विग्घेण**=अंतरायकर्म से, **जीवो**=जीव, **वि**=भी ।

गाथार्थ-

अंतराय कर्म भंडारी के समान है जिस प्रकार भंडारी के प्रतिकूल होने पर राजा दान आदि नहीं कर पाता है, इसी प्रकार अंतराय कर्म के कारण जीव दान आदि की इच्छा रखते हुए भी दान आदि नहीं कर पाता है ।

विवेचन-

अंतराय कर्म का स्वभाव भंडारी के समान है । राजा ने खुश होकर किसी याचक को दान देने की आज्ञा की हो तो भी भंडारी उसमें बहाना निकालकर विघ्न डाल सकता है ।

बस, इसी प्रकार जीव को दान आदि की इच्छा पैदा हुई हो तो भी यह अंतराय कर्म उसमें विघ्न डाल देता है ।

अंतराय कर्म के उदय से दान आदि में अंतराय खड़ा हो जाता है ।

31 ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय बंध के हेतु :

पडिणीअत्तण निह्नव, उवघाय पओस अंतराएणं ।
अच्चासायणयाए, आवरण दुगं जिओ जयइ ।।54।।

शब्दार्थ-

पडिणी अत्तण=प्रत्यनीकपना, **निह्नव=**छिपाना, **उवघाय=**नष्ट करना, **पओस=**द्वेष करना, **अंतराएणं=**अंतराय करने से, **अच्चासायणयाए=**अति आशातना करने से, **आवरण दुगं=**दोनों आवरण, **जिओ=**जीव, **जयइ=**उपार्जित करता है ।

विवेचन-

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये कर्मबंध के साधारण कारण हैं, इस गाथा में ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मबंध के विशेष हेतु बताए हैं । जिन हेतुओं से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है, उन्हीं हेतुओं से दर्शनावरणीय कर्म का भी बंध होता है ।

1) प्रत्यनीक : ज्ञान ज्ञानी और ज्ञान के साधनों के प्रति विपरीत भाव रखना, दुष्ट भाव रखना, उसे प्रत्यनीक कहते हैं ।

ज्ञान का गर्व करना, अकाल समय में स्वाध्याय करना, पढ़ने में आलस करना, स्वाध्याय आदि का अनादर करना, झूठा उपदेश देना, सिद्धांत विरुद्ध बोलना, ज्ञानी के वचन पर श्रद्धा न करना, ज्ञानी का अपमान करना आदि करने से ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म का बंध होता है ।

2) निह्नव : अभिमान के कारण ज्ञानदाता गुरु के नाम को छुपाना । जैसे 'किसी के पास अध्ययन किया हो फिर भी कहना-'मैंनें तो उनके पास अध्ययन नहीं किया है ।'

3) उपघात : ज्ञान और ज्ञान के साधनों को नष्ट करना। ज्ञानी को मार डालना, पुस्तक आदि जला देना आदि ।

4) प्रद्वेष : ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधनों के प्रति मन में तीव्र द्वेष भाव धारण करना ।

5) अंतराय : ज्ञान का अभ्यास करनेवाले को पढ़ने में अंतराय पैदा करना। कोई पढ़ रहा हो तब जोर से चिल्लाना, पढ़नेवाले को दूसरे काम में जोड़ना इत्यादि ।

6) अत्यंत आशातना : ज्ञानी की निंदा करना, उन्हें अपमानित करना, उन्हें प्राणांत कष्ट देना, इत्यादि ।

ज्ञान की अन्य आशातनाएँ-

1) पुस्तक पर बेठना ।

2) पुस्तक को फेंकना ।

3) अंगुली पर थूक लगाकर पन्ने पलटना ।

4) अखबार से मल मूत्र साफ करना ।

5) कागज को जलाना, इत्यादि ।

बहुमान भाव

माता-पिता के प्रति दिल में आदर-सम्मान व बहुमान भाव होगा तो बेटा कहेगा-
``मैं माता-पिता के साथ में रहता हूँ ।''
और माता-पिता के प्रति आदर-बहुमान का अभाव होगा तो बेटा कहेगा-
`वयोवृद्ध माता-पिता मेरे साथ रहते है ।'
माता-पिता को भारभूत मानने वाला
इस पृथ्वी पर भारभूत ही है ।

32 वेदनीय कर्म बंध के कारण

गुरुभत्ति खंति करुणा, वय जोग कसायविजय दाण जुओ ।
दढ धम्माइ अज्जइ, सायमसायं विवज्जयओ ।।55।।

शब्दार्थ-

गुरुभत्ति=गुरु की भक्ति, **खंति**=क्षमा, **करुणा**=दया, **वय**=व्रत, **जोग**=योग, **कसायविजय**=कषाय पर जय, **दाणजुओ**=दान युक्त, **दढ धम्माइ**=दृढ़धर्मी आदि, **अज्जइ**=उपार्जन करता है, **सायं**=शाता वेदनीय, **असायं**=अशातावेदनीय, **विवज्जयओ**=इससे विपरीत ।

गाथार्थ–

गुरु भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, योग, कषायविजय, दान देने और धर्म में स्थिर रहने से शाता वेदनीय का बंध होता है और इससे विपरीत प्रवृत्ति करने से अशाता वेदनीय का बंध होता है ।

विवेचन–

श्रीपाल राजा ने पूर्व भव में मुनि का अपमान आदि कर अशाता वेदनीय कर्म का बंध किया था, जिस कर्म के उदय के फलस्वरूप श्रीपाल कुँवर को बचपन में ही पिता का वियोग सहन करना पड़ा, राज्य से भ्रष्ट होना पड़ा और बचपन में ही कोढ़ रोग से ग्रस्त होना पड़ा ।

◆ मलयासुन्दरी ने पूर्व जन्म में अशाता वेदनीय कर्म का तीव्र बंध किया था । जिसके फलस्वरूप उसे अपने जीवन में अनेक बार मरणांत कष्ट सहन करने पड़े थे ।

◆ महासती कलावती ने पूर्व जन्म में पोपट के पंख काट दिये थे, जिसके परिणामस्वरूप अगले जन्म में उसे भयंकर जंगल में छोड़ हाथ काट दिए और प्रसूति की भयंकर पीड़ा सहन करनी पड़ी ।

शाता वेदनीय कर्मबंध के हेतु-

1. सद्गुरु की भक्ति करने से : शालिभद्र, धन्ना अणगार आदि ने पूर्व जन्म में तपस्वी महात्माओं को दान दिया था, परिणामस्वरूप उन्हें अपार ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि की प्राप्ति हुई थी ।

2. करुणा : दया का पालन कर मेघकुमार ने पूर्व के हाथी के भव में एक खरगोश को बचाया था, इसके फलस्वरूप शाता वेदनीय कर्म का बंध किया था, वह हाथी मरकर राजपुत्र-मेघकुमार बना ।

3. क्षमा : किसी अपराधी पर भी गुस्सा नहीं करने से और क्षमा रखने से शाता वेदनीय का बंध होता है । गुणसेन राजा की आत्मा ने अंतिम समय में मरणांत उपसर्ग में भी क्षमाभाव धारण किया था । परिणामस्वरूप गुणसेन राजा मरकर सौधर्म देवलोक में पैदा हुए थे ।

4. दान : सुपात्र में साधु-साध्वी को दान देने से, साधर्मिक की भक्ति करने से, दीन-दु:खी की सहायता करने से शाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ।

5. धर्म में स्थिर रहने से : जीवन में जो भी व्रत-पच्चक्खाण स्वीकार किया हो, उसका दृढ़तापूर्वक पालन करने से शाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ।

वंकचूल ने अपने जीवन में मात्र सामान्य चार नियमों को स्वीकार किया था, परंतु उन नियमों का उसने अत्यंत ही दृढ़ता से पालन किया था, इसके परिणामस्वरूप वह मरकर अच्युत देवलोक में देव बना था ।

अशाता वेदनीय कर्मबंध के हेतु–

शाता वेदनीय कर्मबंध के जो हेतु हैं, उनसे विपरीत अशाता वेदनीय कर्मबंध के हेतु हैं ।

गुरु की आशातना, निंदा, हीलना, तिरस्कार, अपमान, अनादर आदि करने से अशाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ।

2. जीवों की हिंसा करने से : कालसौरिक कसाई प्रतिदिन 500 भैंसों का वध करता था, इसके फलस्वरूप उसने तीव्र अशाता वेदनीय कर्म का बंध किया और मरकर 7वीं नरक में चला गया ।

3. क्रोधादि कषाय करने से : अग्निशर्मा, कंडरीक मुनि, स्कंदिलाचार्य आदि ने क्रोध कर भयंकर अशाता वेदनीय का बंध किया था, परिणामस्वरूप उन्हें अनेक भवों तक दुर्गति के भयंकर दु:ख सहन करने पड़े थे ।

4. ग्रहण किए व्रतों का भंग करने से भी अशाता वेदनीय कर्म का बंध होता है ।

वेदनीय कर्मबंध की स्थिति-

प्रज्ञापना सूत्र आदि में शाता वेदनीय की जघन्य स्थिति 12 मुहूर्त की कही गई है, वह सांपरायिक बंध जानना चाहिए ।

शाता वेदनीय का सांपरायिक बंध दसवें गुणस्थानक तक है ।

ग्यारहवें-बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में भी योगजन्य शाता वेदनीय का बंध होता है, परंतु उसकी स्थिति मात्र तीन समय की होती है ।

वेदनीय कर्म के बंध की जघन्य स्थिति 12 मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ।

सत्य भान

समय हाथ में होता है तब सत्य समझ में नहीं आता है और जब समय हाथ से निकल जाता है तब सत्य समझ में आता है जीवन की स्वस्थ अवस्था तक जीवन की क्षणभंगुरता का सही भान नहीं होता है और जब आयुष्य का दीप बुझने की तैयारी में होता है, तब सत्य का भान होता है कि **'यह जीवन क्षणभंगुर है ।'**

33 दर्शनमोहनीय बंध के हेतु

उम्मग्गदेसणा मग्ग-नासणा देवदव्व-हरणेहिं ।
दंसणमोहं जिणमुणि-चेइय-संघाइ-पडिणीओ ॥56॥

शब्दार्थ-

उम्मग्गदेसणा=उन्मार्गदेशना, **मग्गनासणा**=मार्ग का नाश **देवदव्वहरणेहिं**=देवद्रव्य का हरण, **दंसणमोहं**=दर्शन मोहनीय, **जिण**=जिनेश्वर, **मुणि**=मुनि, **चेइअ**=चैत्य, **संघाइ पडिणीओ**=संघ आदि का विरोधी ।

गाथार्थ-

उन्मार्ग का उपदेश देने तथा सन्मार्ग का नाश करने से, देवद्रव्य का हरण (चोरी) करने से, जिन, केवली, मुनि, चैत्य, संघ आदि के विरुद्ध आचरण करने से दर्शनमोहनीय कर्म का बंध होता है ।

विवेचन-

दर्शनमोहनीय कर्मबंध के हेतु

1. उन्मार्ग देशना : जिनेश्वर भगवंतों ने रत्नत्रयी की आराधना स्वरूप जो मोक्षमार्ग बतलाया है, उससे विपरीत मार्ग की देशना-उपदेश-मार्गदर्शन करने से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है ।

2. मार्ग-नाश : संसारनिवृत्ति और मोक्षप्राप्ति के मार्ग का अपलाप करना, मार्गनाश है । जैसे-जीव और मोक्ष जैसी कोई चीज नहीं है । 'खाओ, पीओ, मौज करो ।' तप कर शरीर को सुखा देना बेकार है ।

3. देव द्रव्य हरण : देव द्रव्य की चोरी करने से, देव-द्रव्य का भक्षण करने से, देव द्रव्य की उपेक्षा करने से, देव द्रव्य का दुरुपयोग करने से, देव द्रव्य की हानि करने से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है ।

4. प्रभु की निंदा करने से : जो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा है, उनकी निंदा करने से, उनका अपमान व तिरस्कार करने से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है ।

5. साधु की निंदा : पंच महाव्रतधारी, रत्नत्रयी के साधक साधु भगवंतों की निंदा करने से, उनके ऊपर झूठे आरोप लगाने से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है ।

6. चतुर्विध संघ की निंदा : साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की निंदा करने से भी दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है ।

चारित्र मोहनीय बंध के हेतु

दुविहं पि चरण मोहं, कसाय हासाइ विसय विवसमणो ।
बंधइ निरयाउ, महारंभ-परिग्गहरओ रुद्दो ।।57।।

शब्दार्थ-

दुविहं पि=दोनों प्रकार का, **चरणमोहं**=चारित्र मोहनीय, **कसाय हासाइ**=कषाय-हास्य आदि, **विसय**=विषय, **विवसमणो**=पराधीन चित्तवाला, **बंधइ**=बाँधता है, **निरयाउ**=नरक आयुष्य, **महारंभ**=महा आरंभ, **परिग्गहरओ**=परिग्रह में रत, **रुद्दो**=रौद्र ध्यानी ।

गाथार्थ-

कषाय और हास्य आदि नोकषाय के विषयों में आसक्त मनवाला दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय कर्म का बंध करता है ।

महारंभ और परिग्रह में डूबा हुआ और रौद्रध्यान वाला नरक आयुष्य का बंध करता है ।

विवेचन-

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ से आकुल मनवाला जीव अनंतानुबंधी क्रोध आदि का बंध करता है ।

उसी प्रकार अप्रत्याख्यानीय क्रोध आदि के उदयवाला अनंतानुबंधी चार को छोड़ शेष अप्रत्याख्यानीय क्रोध आदि 12 कषायों को बाँधता है ।

प्रत्याख्यानीय क्रोध आदि के उदयवाला, प्रत्याख्यानीय व संज्वलन क्रोध आदि आठ कषायों को बाँधता है ।

संज्वलन क्रोध आदि के उदयवाला संज्वलन आदि चार कषायों का बंध करता है ।

हास्य आदि छह के उदयवाला, हास्य आदि छह का तथा शब्द,

रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त मनवाला नोकषाय चारित्र मोहनीय का बंध करता है ।

4. नरक आयु बंध के कारण : महा आरंभ व परिग्रह करने वाला, धन के संग्रह में डूबा रहने वाला, रौद्र ध्यान करने वाला तथा पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध करने वाला, मांस-भक्षण करने वाला आदि जीव नरकायु का बंध करता है ।

अभिमान करने से, ईर्ष्या करने से, अति लोभ करने से, विषयों में आसक्त बनने से, महा-आरंभ, रौद्रध्यान, चोरी करने से, जिन-मुनि की हत्या करने से, व्रतभंग करने से, मदिरा-मांस का भक्षण करने से, रात्रि-भोजन करने से, गुणी-जनों की निंदा करने से तथा कृष्ण लेश्या से जीव नरक आयुष्य का बंध करता है ।

नरक आयुष्य बंध का मुख्य कारण रौद्र ध्यान है-इस रौद्र ध्यान के चार प्रकार हैं–

1. हिंसानुबंधी रौद्रध्यान : जीवों की हिंसा करने के तीव्र परिणाम को हिंसानुबंधी रौद्रध्यान कहते हैं । अपने दुश्मन आदि को मार डालने, खत्म करने व विनाश करने का विचार करना हिंसानुबंधी रौद्रध्यान है ।

2. मृषानुबंधी : असत्य बोलने के तीव्र अध्यवसाय को मृषानुबंधी रौद्रध्यान कहते हैं ।

3. स्तेयानुबंधी : चोरी करने के तीव्र अध्यवसाय को स्तेयानुबंधी रौद्रध्यान कहते हैं ।

4. संरक्षणानुबंधी : धन के संरक्षण के तीव्र अध्यवसाय को संरक्षणानुबंधी रौद्र ध्यान कहते हैं ।

परिग्रह-मूर्च्छा से तिर्यंच गति

ज्ञानी गुरु भगवंत के उपदेश का श्रवण कर एक श्राविका को दीक्षा लेने की भावना हुई । उसने अपनी भावना गुरु भगवंत के सामने व्यक्त की । उसकी वैराग्य भावना को देखकर गुरु भगवंत ने उसे दीक्षा प्रदान की ।

दीक्षा अंगीकार करते समय उसने संसार की अन्य समस्त वस्तुओं का परित्याग किया, किंतु मूल्यवान चार रत्नों के प्रति उसके दिल में तीव्र ममता होने के कारण वह उन रत्नों का त्याग नहीं कर सकी । उसने वे चार

रत्न स्थापनाचार्य की लकड़ी की खोखली डंडी में छिपा दिए । संयम जीवन की सुंदर आराधना करने पर भी वह उन बाह्य रत्नों की ममता का त्याग नहीं कर सकी, इसके परिणामस्वरूप वह मरकर गिलहरी बनी और पुनः पुनः उस स्थापनाचार्य जी के पास आने लगी ।

एक बार उस नगर में अवधिज्ञानी महात्मा का आगमन हुआ । अन्य साध्वी जी भगवंत ने जब उस गिलहरी के बारे में पृच्छा की, तब ज्ञानी गुरु भगवंत ने बतलाया कि पूर्व भव में रही रत्नों की मूर्च्छा के कारण वह साध्वी मरकर गिलहरी बनी है ।

अपने पूर्व भव को सुनने से गिलहरी को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । उसे अपने पाप का पश्चाताप हुआ । अंत में उसने भी अनशन स्वीकार किया और मरकर देवगति में उत्पन्न हुई । इस प्रकार धन की मूर्च्छा के कारण एक साध्वी भी तिर्यंच गति में पहुँच गई ।

धिक्कार हो धन की इस मूर्च्छा को !

रौद्र ध्यान से नरक गति

1. पूर्व भव में राजगृही के मम्मण सेठने त्यागी तपस्वी महामुनि को अत्यंत ही भक्तिपूर्वक मोदक बहोराया था, परंतु दान देने के बाद उसके परिणाम पतित हो गए थे, उसे अत्यंत ही पश्चाताप हो आया । इस प्रकार पश्चाताप भाव के कारण उसने अपने पुण्य कर्म को कमजोर कर दिया । इस कर्म के उदय के फलस्वरूप उसे रत्नजड़ित दो बैलों की प्राप्ति हुई । अपार संपत्ति प्राप्त होने पर भी मुनि के पास से पुनः मोदक की याचना करने के कारण उसने जिस पाप कर्म का बंध किया, उस कर्म के कारण वह अपार संपत्ति का लेश भी उपभोग नहीं कर सका ।

जीवन पर्यंत अपनी संपत्ति को बढ़ाने में ही प्रयत्नशील रहा । इस प्रकार धन की तीव्र ममता और संरक्षणानुबंधी रौद्र ध्यान के पाप के फलस्वरूप उसने नरकायु का बंध किया और वह मरकर 7वीं नरक में चला गया ।

तिर्यंच व मनुष्य आयु

तिरिआउ गूढहियओ, सढो ससल्लो तहा मणुस्साउ ।
पयईइ तणुकसाओ, दाणरुइ मज्झिमगुणो अ ।।58।।

शब्दार्थ-

तिरिआउ=तिर्यंच का आयुष्य, **गूढहियओ=**गूढ ह्रदयवाला, **सढो=**मूर्ख, **ससल्लो=**शल्य सहित, **तहा=**और, **मणुस्साउ=**मनुष्य आयुष्य, **पयईइ=**प्रकृति से, **तणुकसाओ=**मंद कषायवाला, **दाणरुइ=**दान की रुचि, **मज्झिम गुणो=**मध्यम गुणवाला।

गाथार्थ-

गूढ़ ह्रदयवाला, शठ, तथा मायावी जीव तिर्यंच आयुष्य का बंध करता हैं तथा जो स्वभाव से अल्पकषायी हो, दान-प्रिय व मध्यम गुणों का धारक हो, वह मनुष्य आयुष्य बाँधता है।

विवेचन-

'मुख में राम बगल में छुरी' रखनेवाला गूढ ह्रदयी कहलाता है। जो बाहर से अच्छा दिखता हो और मन का मैला हो, वह मायावी कहलाता है।

3. तिर्यंच आयुष्य बंध के कारण : जो शील का पालन नहीं करते हैं, दूसरों को ठगते हैं, उपदेश द्वारा रात-दिन मिथ्यात्व का पोषण करते हैं, झूठे माप-तौल द्वारा व्यापार करते हैं, माया-कपट करते हैं, झूठी साक्षी देते हैं, चोरी करते हैं, वे जीव तिर्यंच गति के आयुष्य का बंध करते हैं।

तिर्यंच आयुष्य का बंध दूसरे गुणस्थानक तक होता है और इसका उदय पाँचवें गुणस्थानक तक होता है।

2. मनुष्य आयु बंध के हेतु : प्रकृति से मंद कषायवाला, दान में रुचि रखने वाला तथा मध्यम गुण वाला जीव, मनुष्य आयु का बंध करता है।

जो व्यक्ति निरंतर परमात्मा की पूजा करता है, निरंतर शास्त्राभ्यास करता है, न्यायपूर्वक अर्थार्जन करता है, यतनापूर्वक मुनि को दान देता है और भद्रिक परिणामी होता है, दूसरों की निंदा न कर, परोपकार में रत रहता है, ऐसा व्यक्ति मनुष्य आयुष्य का बंध करता है।

मनुष्य आयु का बंध चौथे गुणस्थानक तक तथा उदय व सत्ता चौदहवें गुणस्थानक तक होती है।

संख्याता वर्ष के आयुष्य वाला मनुष्य ही मोक्ष में जा सकता है। असंख्य वर्ष के आयुष्य वाला मनुष्य न तो दीक्षा ले सकता है और न ही मोक्ष जा सकता है। मनुष्य मरकर चारों गतियों में जा सकता है।

34 देव आयुष्य-नामकर्म के हेतु

अविरयमाई सुराउ, बाल तवोऽकामनिज्जरो जयइ ।
सरलो अगार विल्लो, सुहनामं अन्नहा असुहं ॥59॥

शब्दार्थ-

अविरयमाई=अविरत आदि, **सुराउ=**देव आयुष्य, **बालतवो=**बालतपवाला, **अकाम निज्जरो=**अकाम निर्जरावाला, **जयइ=**उपार्जित करता है, **सरलो=**सरल, **अगारविल्लो=**गारव रहित, **सुहनामं=**शुभ नामकर्म, **अन्नहा=**विपरीत स्वभाववाला, **असुहं=**हंशुभ नामकर्म को ।

गाथार्थ-

अविरत सम्यग्दृष्टि आदि, बाल तपस्वी, अकाम निर्जरा करनेवाला देव आयुष्य का बंध करता है ।

विवेचन-

1. देव आयु बंध के हेतु : अविरत सम्यग्दृष्टि आदि तथा बालतप, अकामनिर्जरा करने वाला जीव, देवायु का बंध करता है ।

जो मनुष्य परमात्मा की पूजा करता है, समता रस में लीन बनकर प्रभु का ध्यान करता है, शोक-संताप दूर कर साधु-साध्वी को शुद्ध आहार का दान करता है, गुणीजन पर राग करता है, व्रत ग्रहण कर उनका पालन करता है, यतना पूर्वक वर्तन करता है, जीवों पर अनुकंपा करता है और तीन काल गुरुवंदन आदि करता है, वह व्यक्ति वैमानिक आदि देवगति के आयुष्य का बंध करता है ।

जो पंचाग्नि तप सहन करता है, वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, कष्ट सहन कर देह का दमन करता है-वह भी देवायु का बंध करता है ।

देव आयुष्य का बंध एक से सातवें गुणस्थानक तक होता है और

देवायु का उदय एक से चार गुणस्थानक तक होता है । देवायु की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थानक तक होती है, क्योंकि देवायु बंध हुआ जीव उपशम श्रेणी पर चढ़कर ग्यारहवें गुणस्थानक तक चढ़ सकता है ।

शुभ-अशुभ नामकर्म का बंध

1) जो व्यक्ति हृदय से सरल-निष्कपट होता है ।

2) जो गारव रहित होता है-गारव के 3 भेद हैं ।

ऋद्धिगारव : जो व्यक्ति धन आदि से अपने आपको बड़ा मानता हो, गर्व करता हो, वह ऋद्धि गारव है ।

रस गारव : खाने-पीने की स्वादिष्ट चीजों से जो गर्व करता हो, वह रस गारव है ।

शाता गारव : अपने आरोग्य सुख आदि का गर्व करता हो, वह शाता गारव है ।

इन तीन गारव से रहित, भवभीरु, क्षमा आदि गुणों से युक्त व्यक्ति शुभ नामकर्म का बंध करता है ।

जो व्यक्ति माया-कपट करता हो, गारव वाला हो, झूठी साक्षी देता हो, अपनी प्रशंसा व दूसरों की निंदा करता हो, माल में मिलावट कर बेचता हो, दुराचार आदि करता हो, ऐसा व्यक्ति अशुभ नामकर्म का बंध करता है ।

कठिन

काया को सदाचार में जोड़ना
आसान है परंतु मन को सद्विचार से
जोड़ना कठिन है ।
दान, शील और तप सरल हैं, क्योंकि ये
काया के विषय हैं, जबकि भावधर्म कठिन है,
क्योंकि वह मन का विषय है ।

35 गोत्र कर्म बंध हेतु

गुणपेही मयरहिओ, अज्झयण-ऽझावणारुइ निच्चं ।
पकुणइ जिणाइभत्तो, उच्चं नीअं इअरहा उ ॥60॥

शब्दार्थ-

गुणपेही=गुण देखनेवाला, **मयरहिओ=**मद रहित, **अज्झयण ज्झावणा=** अध्ययन करने और अध्यापन में, **रुइ=**रुचि, **निच्चं=**नित्य, **पकुणइ=**बाँधता है, **जिणाइ भत्तो=**जिनेश्वर आदि का भक्त, **उच्चं=**उच्च गोत्र, **नीअं=**नीच गोत्र, **इअर हा=**इससे विपरीत

गाथार्थ-

हमेशा गुणग्राही, निरहंकारी, पढ़ने-पढ़ाने में रुचिवाला, तथा जिनेश्वर प्रभु का भक्त, उच्चगोत्र कर्म का बंध करता है तथा इससे विपरीत प्रवृत्तिवाला नीच गोत्र का बंध करता है ।

विवेचन-

गुणग्राही-जो व्यक्ति हमेशा दूसरों के गुण ही देखता हो और दोषों के प्रति उपेक्षावाला हो ।

मद रहित-उत्तम जाति, कुल, ऐश्वर्य, लाभ, बल, रूप आदि किसी भी प्रकार का अभिमान नहीं करता हो ।

उच्च गोत्र बंध के हेतु-

1. सम्यक्त्व सहित व्रतों का पालन करने से, जिनेश्वर परमात्मा की पुष्पों से पूजा करने से श्रावक उच्च गोत्र का बंध करता है ।

2. जाति, कुल, बल, रूप, तप, विद्या, लाभ और ऐश्वर्य का अभिमान नहीं करने से उच्च गोत्र का बंध होता है ।

उच्च गोत्र का बंध दसवें गुणस्थानक तक होता है ।

उच्च गोत्र का जघन्य बंध आठ मुहूर्त का है और उत्कृष्ट बंध दस कोटा कोटि सागरोपम का है। और वह एक हजार वर्ष के आबाधाकाल के पूर्ण होने के बाद उदय में आता है ।

नीच गोत्र बंध के हेतु -

1. जाति, कुल, तप, बल, विद्या, रूप, वैभव, लाभ, ऐश्वर्य आदि का अभिमान करने से नीच गोत्र का बंध होता है ।

जिनागमों में अरुचि रखने से, बहुश्रुत की सेवा नहीं करने से, अध्ययन की रुचि वाले मुनियों की निंदा करने से, दूसरे के गुण छिपाकर दोष प्रगट करने से, झूठी साक्षी देने से नीच गोत्र का बंध होता है ।

योग की पूर्व सेवा

योग अर्थात् आत्मा को मोक्ष के साथ
जोड़नेवाली रत्नत्रयी की आराधना-साधना ।
योग की प्राप्ति के लिए **'पूर्व सेवा'** अनिवार्य है ।
योग की पूर्व सेवा अर्थात् गुरुदेवादि
का पूजन, सदाचार, तप और मक्ति
के प्रति अद्वेष ।
योग की पूर्व सेवा `चरमावर्त काल में ही
प्राप्त होती है' अचरमावर्त काल में चाहे
जितनी बाह्य आराधना-साधना तपश्चर्या हो,
उनका कोई मूल्य नहीं है ।

36 अंतराय कर्म के हेतु

जिणपूआ विग्घ-करो, हिंसाइ परायणो जयइ विग्घं ।
इअ कम्म-विवागोयं, लिहिओ देविंद-सूरीहिं ॥61॥

शब्दार्थ-

जिणपूआ=जिनेश्वर की पूजा, **विग्घकरो=**अंतराय करनेवाला, **हिंसाइ=**हिंसादि, **परायणो=**आसक्त, **जयइ=**बाँधता है, **विग्घं=**अंतराय कर्म, **इअ=**इस प्रकार, **कम्म विवागो=**कर्म-विपाक, **लिहिओ=**लिखा है, **देविंद सूरीहिं=**देवेन्द्रसूरि द्वारा ।

गाथार्थ-

जिनेश्वर प्रभु की पूजा में अंतराय करनेवाला, हिंसा आदि में तत्पर व्यक्ति अंतराय कर्म का बंध करता है ।

इस प्रकार यह **'कर्म विपाक'** श्री देवेन्द्रसूरि ने रचा है ।

विवेचन-

आठवाँ अंतराय कर्म

जगत् में रहे विविध प्राणियों के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें सभी प्रकार के प्राणियों के अपने-अपने कर्मों की विचित्रताओं के अनुसार, अनेक प्रकार की विचित्रताएँ देखने को मिलती हैं । जो विचित्रताएँ हमारे दिल में आश्चर्य पैदा किए बिना नहीं रहती हैं ।

1. एक सेठ के पास लाखों की संपत्ति है, उसके द्वार पर भीख माँगने के लिए अनेक व्यक्ति आते हैं, परंतु वह सेठ किसी को एक पैसा भी नहीं देना चाहता है । लोग उस सेठ को समझाने की बहुत कोशिश करते हैं, परंतु सेठ मानने के लिए तैयार नहीं है । सेठ के पास धन की कोई कमी नहीं है, परिवार के लोग भी उन्हें दान देने से रोकते नहीं हैं, फिर भी आश्चर्य है कि सेठ को दान देने की इच्छा ही नहीं होती है ।

दान देना उनके लिए मरने समान है। लोग उन्हें कृपण, मक्खीचूस आदि इल्काब देते हैं, फिर भी उसका मन पिघलता नहीं है।

सेठ की इस स्थिति को देख सबको दया आती है। सभी को अत्यंत आश्चर्य होता है, परंतु कर्मविज्ञान को समझने वाले के लिए कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि **यह तो दानांतराय कर्म का ही उदय है।** इस कर्म का उदय होने से दान देने की शक्ति होने पर और दान लेने वाले सुपात्र का संयोग होने पर भी व्यक्ति दान नहीं कर पाता है और जिस व्यक्ति को दानांतराय कर्म का क्षयोपशम होता है वह अपनी अल्पशक्ति होने पर भी दान किए बिना नही रह सकता है। ऐसा व्यक्ति अपनी भावना अनुसार दान धर्म की आराधना कर सकता है।

इससे स्पष्ट है कि दान देने के लिए धन-सामग्री ही पर्याप्त नहीं है, दान देने का भाव भी होना चाहिए। दुनिया में अनेक समृद्ध व्यक्ति दिखाई देते हैं, जिनके पास अपार संपत्ति होने पर भी वे लेश भी दान नहीं कर पाते हैं अथवा दान देने के प्रसंग को टालने की कोशिश करते हैं। यह सब दानांतराय कर्म का ही प्रभाव है।

इस जगत् में हमें एक आश्चर्य यह भी दिखाई देता है कि अमुक व्यक्ति धन कमाने के लिए रात-दिन प्रयत्न करता है, उसके पास बुद्धिबल भी होता है, फिर भी उसे व्यापार में सफलता नहीं मिल पाती है, वह जो-जो व्यापार करता है, उस व्यापार में उसे लाभ के बजाय घाटा ही होता है कई बार तो वह लाभ कमाने के बजाय अपने मूल धन को ही खो बैठता है।

पूरा-पूरा पुरुषार्थ होने पर भी व्यापार में सफलता नहीं मिल पाती है- उसका मुख्य कारण है-लाभांतराय कर्म का उदय।

लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम हो तो व्यक्ति को अल्प प्रयास में भी बड़ी भारी सफलता मिल जाती है।

दुनिया में कई लोग ऐसे दिखाई देते हैं जो मेहनत बहुत करते हैं, फिर भी उन्हें लाभ नहीं मिल पाता है और कई लोग ऐसे होते हैं जो बहुत कम प्रयास करते हैं, फिर भी उन्हें अधिक सफलता मिल जाती है। यह सब लाभातंराय कर्म के उदय व क्षयोपशम पर ही निर्भर करता है।

3. जिस वस्तु का एक ही बार भोग किया जा सकता हो, ऐसी सामग्री

को भोग्य सामग्री कहते हैं ।

दुनिया में हम देखते हैं कि कई लोगों के पास घर में खाने-पीने की भरपूर सामग्री होने पर भी वे खा नहीं सकते हैं । सामग्री होने पर भी उसका उपभोग नहीं कर पाना-यह भोगांतराय कर्म का उदय है ।

घर में खाने के लिए मिठाई तैयार की हो परंतु खाने के पहले ही व्यक्ति को अचानक घर से बाहर चला जाना पड़ता हो-यह भोगांतराय कर्म के उदय का फल है ।

4. जिस वस्तु का बारबार उपयोग किया जा सकता हो, उसे उपभोग्य सामग्री कहते हैं-मकान-स्त्री आदि उपभोग्य सामग्री कहलाती है ।

कई व्यक्तियों के पास उपभोग की पूरी-पूरी सामग्री होने पर भी उसका उपभोग नहीं कर पाते हैं-इसका कारण उपभोगांतराय कर्म का उदय है । इस कर्म का क्षयोपशम हो तभी व्यक्ति उपभोग योग्य सामग्री का उपभोग कर सकता है ।

5. दुनिया में कई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से निर्बल दिखाई देते हैं तो कई व्यक्ति अत्यंत बलवान होते हैं । कई व्यक्ति युवावस्था में ही अत्यंत कमजोर हो जाते हैं, यह सब वीर्यांतराय कर्म के उदय व क्षयोपशम का ही फल है ।

वीर्यांतराय कर्म का उदय हो तो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से अत्यंत ही कमजोर हो जाता है ।

अंतराय कर्म-बंध के हेतु-

पू. वीर विजय जी महाराज ने अंतराय कर्म निवारण पूजा में कहा है-जिनपूजा में अंतराय करने से, आगम का लोप करने से, दूसरों की निंदा करने से, विपरीत प्ररूपणा करने से, दीन-दु:खी पर करुणा का त्याग करने से, तपस्वी आदि मुनियों को नमस्कार नहीं करने से तथा जीवों की हिंसा करने से अंतराय कर्म का बंध होता है ।

गरीब पर गुस्सा करने से, किसी की गुप्त बात प्रकाशित करने से, किसी को पढ़ने में अंतराय करने से, किसी को दान देने से रोकने से, गीतार्थों की हीलना करने से, झूठ बोलने से, किसी की चोरी करने से, पशु बालक

दीन आदि को भूखा रखकर भोजन करने से, धर्म में जान बूझकर कमजोर बनने से, परस्त्री के साथ आनंद पूर्वक क्रीड़ा करने से, किसी की जमानत खा जाने से, पोपट आदि को पिंजरे में डालने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

किसी को दान में अंतराय करने से दानांतराय कर्म का बंध होता है। इस कर्म के उदयवाला कृपण व्यक्ति शास्त्र का श्रवण भी नहीं करता है, क्योंकि उसे हमेशा भय रहता है कि गुरु के पास शास्त्र श्रवण करेंगे तो कुछ खर्च करना पड़ेगा ।

जिसने दानांतराय कर्म का बंध किया हो ऐसा व्यक्ति गुरु के उपदेश से भी दान गुण को प्राप्त नहीं कर पाता है ।

कृपण व्यक्ति के घर मुनि भगवंतों का भी आगमन नहीं होता है । कृपण व्यक्ति से उसके मित्र-स्वजन भी दूर रहते हैं ।

दानान्तराय के क्षयोपशम वाली आत्मा ही अपनी संपत्ति का प्रभु पूजा आदि में उपयोग कर पाती है ।

◆ लाभांतराय कर्म के उदय से आदीश्वर प्रभु को दीक्षा लेने के बाद तेरह मास तक कल्प्य आहार की प्राप्ति नहीं हुई थी ।

◆ भोगांतराय कर्म के उदय से मयणासुन्दरी की बहिन सुरसुंदरी को अनेक कष्ट उठाने पड़े । अरिदमन राजकुमार के साथ लग्न हुआ होने पर भी उसे नटी की तरह नाचना पड़ा था ।

◆ मम्मण सेठ के पास अपार संपत्ति थी, परंतु भोग-उपभोगांतराय कर्म के उदय के कारण वह अपनी संपत्ति का लेश भी भोग-उपभोग नहीं कर सका था ।

◆ भोग-उपभोगांतराय कर्म के उदय से भीमसेन राजा को भयंकर कष्ट उठाने पड़े थे ।

◆ कर्म के विपाक रूप इस कर्मग्रंथ की रचना पू. आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म.ने की है ।

नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, निःस्पृह शिरोमणि
अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य का

तात्त्विक एवं सात्त्विक हिन्दी साहित्य

हिन्दी अनुवादक-संपादक

मरुधररत्न, हिन्दी साहित्यकार

पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

	मूल्य		मूल्य
1. महामंत्र की साधना	150	5. परम तत्त्व की साधना भाग-3	160
2. नवकार चिंतन	60	6. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1	125
3. आध्यात्मिक पत्र	60	7. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2	175
4. परम तत्त्व की साधना भाग-2	150	8. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3	150

अध्यात्मयोगी पूज्य पंन्यास **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
श्री के जीवन विषयक हिन्दी साहित्यकार

पू. आचार्य श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
आलेखित हिन्दी साहित्य

1. **बीसवी सदी के महान् योगी** **300/-**
2. **अजातशत्रु अणगार** **100/-**
3. **महायोगी पुरुष** **85/-**

प्राप्ति स्थान

दिव्य सन्देश प्रकाशन, C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स,
507-509, जे.एस.एस. रोड, चीरा बाजार,
सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-400 002.
Tel. 022-4002 0120, Mobile : 9892069330

जैन धर्म के प्राथमिक अभ्यास हेतु

मरुधर रत्न, हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा

हिन्दी भाषा में आलेखित निम्न साहित्य का

क्रमशः अभ्यास अवश्य करें–

		मूल्य
1.	पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन भाग-1)	100/-
2.	पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन भाग-2)	100/-
3.	पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन भाग-3)	125/-
4.	पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन भाग-4)	140/-
5.	जीव विचार-हिन्दी विवेचन	75/-
6.	नव तत्त्व-हिन्दी विवेचन	60/-
7.	दंडक सूत्र-हिन्दी विवेचन	50/-
8.	लघु संग्रहनी (जैन भूगोल) हिन्दी विवेचन	100/-
9.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
10.	कर्मग्रंथ भाग-1 (कर्म विज्ञान-पहला कर्मग्रंथ)	100/-
11.	कर्मग्रंथ भाग-2 (दूसरा तीसरा कर्मग्रंथ)	70/-
12.	कर्मग्रंथ भाग-3 (चौथा कर्मग्रंथ)	55/-
13.	पांचवा कर्मग्रंथ	100/-
14.	छठा कर्मग्रंथ	100/-

संस्कृत और प्राकृत भाषा सीखने के लिए अति उपयोगी प्रकाशन

1.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
2.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	70/-
3.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
4.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-

प्रवचन प्रभावक मरुधररत्न-हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

तत्त्वज्ञान विषयक	S.No.
1. जैन विज्ञान	38
2. चौदह गुणस्थान	96
3. आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें	79
4. जीव विचार विवेचन	123
5. नव तत्त्व-विवेचन	122
6. दंडक-विवेचन	135
7. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	194
8. तीन-भाष्य	127
9. पहला कर्मग्रंथ	102
10. दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	196
11. चौथा कर्मग्रंथ	197
12. पाँचवाँ कर्मग्रंथ	204
13. छठा-कर्मग्रंथ	205
14. ध्यान साधना	153

प्रवचन साहित्य	S.No.
1. मानवता तब महक उठेगी	8
2. मानवता के दीप जलाएं	9
3. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-1	18
4. महाभारत और हमारी संस्कृति-भाग-2	19
5. रामायण में संस्कृति का अमर संदेश-भाग-1-2	27-28
7. आओ ! श्रावक बनें !	45
8. सफलता की सीढ़ियाँ	53
9. नवपद प्रवचन	56
10. श्रावक कर्तव्य-भाग-1	74
11. श्रावक कर्तव्य-भाग-2	75
12. प्रवचन रत्न	78
13. प्रवचन मोती	72
14. प्रवचन के बिखरे फूल	103
15. प्रवचनधारा	67
16. आनन्द की शोध	33
17. भाव श्रावक	85
18. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	97
19. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	104
20. संतोषी नर-सदा सुखी	87
21. जैन पर्व-प्रवचन	115
22. गुणवान बनो	126
23. सुखी जीवन की चाबियाँ	137
24. पांच प्रवचन	138
25. जीवन शणगार प्रवचन	148
26. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	169
27. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	170
28. गागर में सागर	173
29. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1	176
30. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2	177
31. नवपद आराधना	182
32. प्रवचन-वर्षा	199
33. प्रेरक-प्रवचन	203

धारावाहिक कहानी	S.No.
1. कर्मन् की गत न्यारी	6
2. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	10
3. तब आंसु भी मोती बन जाते है	24
4. गौतम स्वामी-जंबूस्वामी	46
5. कर्म को नहीं शर्म	49
6. कर्म नचाए नाच	76
7. आग और पानी भाग-1-2	34-35
8. तेजस्वी सितारे	58

छोटी छोटी कहानियां	S.No.
1. प्रिय कहानियाँ	43
2. मनोहर कहानियाँ	50
3. ऐतिहासिक कहानियाँ	57
4. प्रेरक-कहानियाँ	91
5. सरस कहानियाँ	111
6. मधुर कहानियाँ	98
7. सरल कहानियाँ	142
8. आदर्श कहानियाँ	198

विधि-विधान उपयोगी	S.No.
1. आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
2. आओ ! श्रावक बनें	45
3. हंस श्राद्धव्रत दीपिका	48
4. Chaitya-Vandan Sootra	52
5. विविध-देववंदन	55
6. आओ ! पौषध करें	71
7. आओ ! पूजा पढाएँ !	88
8. Panch Pratikraman Sootra	61
9. शत्रुंजय यात्रा	36
10. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	73
11. आओ ! उपधान-पौषध करें	109
12. विविध-तपमाला	128
13. आओ ! भावयात्रा करें भाग-1	130
14. आओ ! भावयात्रा करें भाग-2	166
15. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें	136
16. जैन संघ-व्यवस्था	187

पू. पंन्यासजी म.का साहित्य	S.No.
1. वात्सल्य के महासागर	1
2. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	15
3. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव	44
4. बीसवीं सदी के महान् योगी	100
5. अजातशत्रु अणगार	161
6. महान् योगी पुरुष	201
7. महामंत्र की साधना	160
8. नवकार-चिंतन	168
9. बीसवीं सदी के महान् योगी की अमर-वाणी	101
10. आध्यात्मिक पत्र	146
11. परम-तत्व की साधना भाग-1	171
12. परम-तत्व की साधना भाग-2	178
13. परम-तत्व की साधना भाग-3	179
14. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1	183
15. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2	186
16. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3	193
17. मंत्राधिराज प्रवचन सार	207

अन्य प्रेरक साहित्य	S.No.
1. महान् ज्योतिर्धर	86
2. मिच्छामि दुक्कडम्	60
3. क्षमापना	69
4. सवाल आपके जवाब हमारे	37
5. शंका और समाधान-1	66
6. शंका-समाधान-भाग-2	118
7. शंका-समाधान-भाग-3	147
8. धरती तीरथ'री	68
9. चिंतन रत्न	114
10. महावीरवाणी	112
11. जैन शब्द कोश	157
12. नया दिन नया संदेश	158
13. तीर्थ यात्रा	159
14. रत्न संदेश भाग-1	172
15. रत्न संदेश भाग-2	174
16. बाली चातुर्मास विशेषांक	180
17. उपधान स्मृति विशेषांक	181
18. संस्मरण	190
19. विवेकी बनों !	192
20. अमृत रस का प्याला	200

वैराग्यपोषक साहित्य	S.No.
1. मृत्यु-महोत्सव	51
2. श्रमणाचार विशेषांक	54
3. सद्गुरु-उपासना	113
4. चिंतन-मोती	90
5. मृत्यु की मंगल यात्रा	16
6. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-1	13
7. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचन भाग-2	14
8. भव आलोचना	124
9. वैराग्य शतक	140
10. इन्द्रिय पराजय शतक	156
11. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	191
12. समाधि-मृत्यु	195

गुजराती साहित्य	S.No.
1. जीवन ने तुं जीवी जाण	62
2. शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	25
3. आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	63

प्रभु भक्ति प्रधान साहित्य	S.No.
1. आनंदघन चोबीसी	7
2. अंखिया प्रभुदर्शन की प्यासी	22
3. भक्ति से मुक्ति	41
4. विविध देववंदन	55
5. प्रभु दर्शन सुख संपदा	84
6. तीर्थ यात्रा	159
7. आओ ! पूजा पढाएं	88
8. विविध पूजाएं	125
9. प्रभो ! मन मंदिर पधारो !	110

चरित्र-कथाएं	S.No.
1. जिनशासन के ज्योतिर्धर	81
2. महासतियों का जीवन संदेश	93
3. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1	188
4. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2	189
5. आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	105
6. पारस प्यारो लागे	99
7. महान् चरित्र	129
8. भगवान महावीर का सचित्र जीवन	83
9. भगवान महावीर	70
10. प्रातःस्मरणीय महापुरुष-2	150
11. प्रातःस्मरणीय महापुरुष-2	150
12. प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-1	151
13. प्रातःस्मरणीय महासतियाँ-2	152
14. श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	134
15. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल	184
16. महान् ज्योतिर्धर	86
17. श्रमणशिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	119
18. बारह चक्रवर्ती	202

युवा-युवति प्रेरक	S.No.
1. युवानो ! जागो	12
2. युवा संदेश	26
3. जीवन की मंगल यात्रा	17
4. तब चमक उठेगी युवा पीढी	20
5. युवा चेतना विशेषांक	23
6. जीवन निर्माण (विशेषांक)	30
7. यौवन-सुरक्षा विशेषांक	32
8. सन्नारी विशेषांक	59
9. जैनाचार विशेषांक	47
10. आहार विज्ञान विशेषांक	39
11. माता-पिता	77
10. आहार: क्यों और कैसे ?	82
13. ब्रह्मचर्य	106
14. अमृत की बूंदें	64
15. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	80

अंग्रेजी साहित्य	S.No.
1. The Message for the Youth	31
2. How to live true life ?	40
3. The Light of Humanity	21
4. Youth will Shine then	121
5 Duties towards Parents	95
6. Pearls of Preaching	167
7. The Way of Metaphysical Life	163
8. My Parents	175
9. Celibacy	206

मराठी साहित्य	S.No.
1. राग म्हणजे आग (मराठी)	108
2. आई वडीलांचे उपकार	92
3. अध्यात्माचा सुगंध	155
4. विखुरलेले प्रवचन मोती	117
5. आई चे वात्सल्य	185

अनुवाद-विवेचनात्मक	S.No.
1. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	11
2. श्रावक जीवन-दर्शन	29
3. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन	94
4. आओ संस्कृत सीखें भाग-1	144
5. आओ संस्कृत सीखें भाग-2	145
6. श्रावक आचार दर्शक	154
7. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	164
8. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	165
9. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन)-भाग-1	107
10. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन)-भाग-2	120
11. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन)-भाग-3	132
12. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी विवेचन)-भाग-4	133

हिन्दी साहित्यकार

पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

द्वारा आलेखित उपलब्ध हिन्दी साहित्य

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	107	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-
2.	120	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-
3.	132	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-
4.	133	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-
5.	123	जीव विचार विवेचन	60/-
6.	122	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
7.	135	दंडक सूत्र	50/-
8.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
9.	127	तीन भाष्य (चैत्यवंदन भाष्य, गुरुवंदन व पच्चक्खाण)	150/-
10.	102	कर्मग्रंथ-पहला (हिन्दी विवेचन)	100/-
11.	196	कर्मग्रंथ-दूसरा-तीसरा (हिन्दी विवेचन)	70/-
12.	197	चौथा-कर्मग्रंथ (हिन्दी विवेचन)	55/-
13.	204	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	100/-
14.	205	छठा-कर्मग्रन्थ	160/-
15.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
16.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-
17.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
18.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
		वैराग्य पोषक ग्रंथ	
1.	140	वैराग्य शतक	80/-
2.	156	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
3.	191	संबोह-सित्तरि	70/-
		अध्यात्मयोगी पूं. पं. श्री पंन्यासजी म. का साहित्य	
1	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
2.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-
3.	201	महान् योगी पुरुष	85/-

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
4.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-
5.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
6.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
7.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
8.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
9.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
10.	207	मंत्राधिराज प्रवचन सार	80/-
		जीवन-उपयोगी साहित्य	
22.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना-भाग-1-2	140/-
23.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
24.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
25.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-
26.	84	प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-
27.	53	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
28.	203	प्रेरक-प्रवचन	80/-
29.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-
30.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-
31.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
32.	128	विविध-तपमाला	100/-
33.	55	विविध-देववंदन	60/-
34.	200	अमृत रस का प्याला	300/-
35.	202	बारह चक्रवर्ती	64/-
36.	190	संस्मरण	50/-
37.	206	Celibacy	70/-
38.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-
39.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
40.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
41.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
42.	134	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-

Shubhay 98338 35899